राज संन्यासी

लेखक

'धूमकेतु'

अनुवादक

श्यामू संन्यासी



वोरा एण्ड कम्पनी, पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड,

३, राउन्ड बिल्डिंग, कालबादेवी रास्ता, बम्बई–२

प्रथम संस्करण

१९५७

मूल्य रु. [redacted]

Rs 8/00

प्रकाशक
वोरा एण्ड कं०,
पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड,
३, राउन्ड बिल्डिग,
कालवादेवी रास्ता,
बम्बई–२

मुद्रक
महमद शाकिर,
सहयोगी प्रेस, १४१ मुट्ठीगंज,
अलाहाबाद–३

भूमिका

[प्रथम संस्करण से]

'चौलादेवी' का जैसा असाधारण स्वागत हुआ उससे प्रेरित होकर यह दूसरा उपन्यास उसी के प्रसंग में आगे लिखा गया है। इस उपन्यास (राज सन्यासी) के अनुसंधान में तीसरा उपन्यास 'कर्णावती' शीघ्र ही प्रकाशित होगा। उसमें क्षेमराज का राज संन्यास, अवंतीनाथ भोज, भीमदेव, दामोदर, चौला, कर्णदेव और मीनल का राजनैतिक विवाह—यहाँ तक की घटनाएँ आ जाएँगी। 'चौलादेवी' के पूर्व प्रसंग में 'वाचिनीदेवी' और 'मूलराजदेव' (बाद में यह उपन्यास 'अजीत भीमदेव' के नाम से प्रकाशित हुआ—अनु०) ये दो उपन्यास प्रकाशित होंगे।

श्री शंकरदत्त शास्त्री ने इस उपन्यास को आदि से अन्त तक देख कर इसके शब्द, अर्थ और इबारत-सम्बन्धी भूलो का इतने उत्साह, आत्मीयता और सावधानी से संशोधन किया है कि यदि उनकी यह सहायता उपलब्ध न हुई होती तो पुस्तक इतनी शुद्ध, सुन्दर और शोभायमान न बन पाती।

चौथे संस्करण के समय

यह उपन्यास पाठको द्वारा इतने रस से पढ़ा गया कि इसके दूसरे और तीसरे संस्करण बहुत थोड़े समय में प्रकाशित करने पड़े। यदि यह साहित्य के प्रति बढती हुई जनरुचि का चिन्ह है, तो सभी को इससे आनन्द ही होगा।

पाँचवें संस्करण के समय

इस उपन्यासमाला का शेष बचा खण्ड 'अजीत भीमदेव' प्रकाशित हो गया है। अब 'गुप्तयुगीन उपन्यासमाला' आरम्भ होती है।

खानपुर, अहमदाबाद

धूमकेतु

सूची

'Age and Sorrow have the gift of reading the future by the sad past.'

—C. Bingham

प्रवेश

ग्यारहवीं शताब्दी का दूसरा चरण (अर्द्धक) चल रहा था।

उस समय पाटन में बाणावली (धनुर्विद्या-विशारद) भीमदेव महाराज का शासन था। पाटन के चारों ओर शक्तिशाली राज्य-सत्ताएँ अस्तित्व में आ चुकी थीं। सिन्ध में हम्मुक था। वह पाटन की अवहेलना करता और उसे तिरस्कार की दृष्टि से देखता था; पाटन के अधीनस्थ कच्छ और वर्द्धिपंथक* पर उसके दाँत थे। महाराज भीमदेव सिन्ध पर आक्रमण करना चाहते थे; परन्तु इस ओर दूसरे दो सामन्त—नड्डूल का चौहान अणहिल और उसका युवराज बालप्रसाद तथा अर्बुद-मण्डल का धंधूक दोनों ही पाटन को सत्ता-विहीन देखने के लिए आतुर हो रहे थे।

धंधूक ने तो महाप्रतापी मालवराज भोज का आश्रय ग्रहण करने की तैयारियाँ कर पाटन की सत्ता को चुनौती ही दे दी थी।

पाटन में उस समय एक सुप्रसिद्ध नर्तकी शीलादेवी रहती थी।

उसने महाराज को आकर्षित किया। परिणामस्वरूप पाटन की राजकीय मंडली में फूट पड़ गई और दो दल बन गये। इस समाचार से अनेक प्रतिस्पर्द्धी और शत्रु राजाओं को सन्तोष हुआ।

वर्षों तक जंगल, पहाड़, नदी-नाले, खँडहर और भयंकर मरुस्थल को अपना घर बनाकर रहनेवाले महाराज वनराज की अखंड उपासना ने जिसकी स्थापना की आधारशिला रखी थी, जिसकी रक्षा के लिए महा-

---

*वढ़ियार

राज मूलराज शस्त्र-सज्जित होकर साक्षात् भैरव की नाईं अहर्निश प्रतिहार बने थे, जिसकी पवित्रता को अक्षुण्ण रखने के लिए एक अद्भुत नारी, याचिनी देवी ने, नारी-सुलभ कोमलता का परित्याग कर, अपने सगे भाई को पलक झपकाते राजगद्दी से उतार दिया था, जहाँ के रमणीक सौन्दर्य ने गजनक पर भी मोहिनी डाल दी थी, जहाँ के नागरिक समस्त भरत-खंड में समुद्र के स्वामी प्रसिद्ध थे, जहाँ के शिल्पियों ने स्वर्ग की अपरूप सुन्दरियों को सशरीर पृथ्वी तल पर उतार दिया था (उत्कीर्ण कर दिया था), उस पाटन को गृह-कलह से आच्छादित और रिपुओं से घिरा हुआ देखकर महाराज भीमदेव की अन्तरात्मा हाहाकार कर उठी। चन्द्रावती, मालवा, सिन्ध, नड्डूल, चेदि देश आदि अपने अनगिनत शत्रुओं का संहार करने के लिए उन्होंने केसरी सिंह की भाँति जस्त भरी।

चौला देवी ने कहा था—'महाराज, विजयोत्सव के बिना महान नगरियाँ ऐसी ही लगती हैं जैसी कि आभूषण-विहीना वृद्ध विधवाएँ।'

दंडनायक विमल, महामन्त्री दामोदर और महाराज भीमदेव ने स्वयं विजय प्रस्थान किया। उन्होंने सबसे पहले नड्डूल-अर्बुद को वश मे करना उचित समझा।

रणोत्साह से मतवाली पाटन नगरी सरस्वती के तट पर इस तरह खड़ी थी मानो प्रतिक्षण विदेश गये हुए सैनिकों का समाचार पाने के लिए गर्दन लम्बाकर आतुरतापूर्वक प्रतीक्षा कर रही हो।

पीठ पीछे कोई शत्रु वार न कर जाय इसलिए नागरिक सजग और सन्नद्ध हो गये थे।

घर-घर कुंकुम के चौक पूरकर, युद्ध मे गये हुए अपने पति, पिता, पुत्र, बन्धु या आप्तजनों के स्मरण में दत्तचित्त पाटन की सुन्दरियाँ रात होते ही, उत्साहपूर्ण युद्ध-गीतों से रंग-बिरंगे पाटाम्बरों की तरह रात रानी का आँचल भरती चाँदनी में इधर-उधर घूमती रहतीं; उन्हें

देखकर नभो-मण्डल में विचरण करती त्रिकाल-ज्ञान-धारिणी जगदम्बा भवानी मानों नेत्रों में मुस्कराती हुई हँसकर (प्रसन्न होकर) आशीर्वाद देती—'पुत्रियो! अपनी गीतावली से तुम्हीं कभी खँडहर को भी प्राण-पूरित कर देना।' और नारी वृन्द के किंचित् विलम्बित स्वर वातावरण में प्रसारित होते रहते—

'का ..ली कालका .. रे लो....ल !'

बाद में जब विमल मंत्रीश्वर अर्बुद मंडल मे दंडनायक हुआ, तो महामंत्री दामोदर और भीमदेव महाराज ने नड्डूल पर आक्रमण कर दिया। धंधूक और नड्डूल के चौहान दोनों को ही वश मे करने के प्रयत्न होते रहे। परिणामस्वरूप पाटन के गृह-कलह पर उस समय के लिए तो पटाक्षेप हो ही गया।

इन दोनों सामन्तों को वश में करने के बाद महाराज का विचार सिन्ध पर चढ़ाई करने का था।

महाराज के साढ़ू कच्छ के केसर मकवाणा की भी सिन्ध के सुमरा से शत्रुता थी। इसलिए दामोदर ने उसे भी अर्बुद-गिरि के युद्ध में सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया था।

विपक्ष में उस समय मालव की एक अत्यन्त कुशल वारागना प्रताप-देवी थी। पाटन, कच्छ, सिन्ध सभी प्रदेशों के समाचार प्राप्त करने के लिए वह प्रयत्न कर रही थी। दामोदर का भेजा हुआ कार्तिक स्वामी जब केसर मकवाणा से मिलने को पहुँचा तो अकस्मात् सिन्ध से चली हुई यह प्रताप देवी भी वहाँ आई हुई थी।

पिता की मरण-शय्या के समीप उपस्थित रहने के लिए केसर मकवाणा पाटन से आ रहा था।

इस कथा का सूत्र यहाँ से आगे चलता है।

१. 'प्रतिज्ञा का पालन न करूँ तो रौरव नर्क में गिरूँ !'

सायंकाल के समय थल प्रदेश के कीर्तिगढ़ की दिशा मे दृष्टि जमाये एक साँढ़नी सवार चला जा रहा था।

उसके चारों ओर बालू का महासागर फैला हुआ था। बालू के अनगिनत टीले इस समय तो शान्त और स्थिर खड़े थे। परन्तु मरुस्थल का वह अनुभवी यात्री इस बात को अच्छी तरह जानता था कि हवा के चलते ही यह रेतीला महासागर समुद्री तूफान से भी अधिक विकराल और भयंकर रूप धारण कर लेगा। उसने चारों ओर एक नजर घुमाकर देखा।

'जयदेव, रणबंकी पहुँचा तो देगी न ?' उसने अपने साँढ़नी-चालक से पूछा।

'पहुँचा देने की भली कही ! अरे, महाराज ! यह सामने ही कीर्तिगढ़ के कोट-कंगूरे नजर आ रहे हैं, देखिये तो सही।' जयदेव ने उत्तर दिया और साँढ़नी की चाल को तेज कर दिया।

'रेगिस्तानी अन्धड़ का तो कोई डर-भय नहीं, मैं तो पिताजी के लिए चिन्तित हो रहा हूँ। कहीं घड़ी-भर की देर चिरन्तन वियोग का कारण न बन जाये।'

'माता जोगमाया की कृपा हुई तो बहुत करके तो बापू चौक में ही भले-चंगे सामने मिलेंगे।' जयदेव ने कहा।

'मुझे बुला लाने के लिए तुझे भेजा तब क्या कहा था उन्होंने ?'

'मुझे बुलाकर कहा था, "जयदेव ! रणबंकी को लेकर तू पाटन

चला जा। पाटन से केसरदेव को यहाँ बुला ला। उसे देखे बिना मैं मरने का नहीं।" और उन्होंने सच ही आती हुई मौत को रोक दिया है, महाराज! मेरे विचार मे तो वह राजमहल के चौक में पलंग बिछाकर बैठे होंगे।'

जयदेव के आशा-भरे सन्देश के बावजूद केसरदेव को अपने पिता के बारे में चिन्ता हो रही थी।

इस समय तो एक-एक पल महँगी और महत्वपूर्ण हो रही थी। कहीं एक पल की भी देर हो गई, तो मृत्यु का महासागर उसके और पिता के बीच उमड़कर लहराने लगेगा—इस विचार-मात्र से वह आकुल-व्याकुल हो गया। प्रतिक्षण समीप हो रहे कीर्तिगद के कोट-कंगूरों पर उसने एक दृष्टि डाली। मानो साँढ़नी की चाल अब भी धीमी लग रही हो इस तरह वह किंचित् व्यग्रता-पूर्वक बोला, 'वाह बेटा! रण-बंकी! वाह बेटा! वाह!'

साँढ़नी अपने चालक के हाथ के संकेत को जितना नहीं समझ पाई थी उतना वह अपने स्वामी के स्वर के मर्म को पहचान गई। उसने भी तत्काल अवसर की गम्भीरता और महत्व को ताड़ लिया। वह इतनी तेजी से चलने लगी मानो समुद्र मे नौका तैर रही हो। यह केसरदेव की बड़ी ही प्यारी साँढ़नी थी। वह उसे प्रियतमा की भाँति सजाता और माँ की गोद की तरह अपने जी-जान को उसके हवाले कर देता था। आज जब रणबंकी ने केसरदेव का प्रोत्साहित करता स्वर 'वाह रण-बंकी! वाह, वाह!' सुना तो ऐसी अनेक यात्राओं की अनुभवी वह साँढ़नी अपनी रुपहली, मयूर-भंगी गर्वोन्नत गर्दन को जरा-सा खम देकर इतने वेग से उड़ चली जैसे अधर में ही उड़ी जा रही हो; मानो उसके पाँव धरती को छूते ही न हों। उसके गर्दन की रंग-बिरंगी रेशमी डोरियाँ और फूँदने चारों ओर थिरकने लगे; गले को शोभायमान करती मोतियों की मालाओं की झालर हिलने-डोलने लगी; नीचे पाँव मे पड़ी

सोने की कड़ियाँ घुँघरुओं के साथ ताल देकर नाच रही हों इस प्रकार झंकृत होती साथ दौड़ने लगीं; जिस तरह पक्षी डैने फैलाकर उड़ता है उसी प्रकार रणबंकी उड़ चली।

उसकी इस गति से घड़ी-भर में कीर्तिगढ़ के कोट-कंगूरे दिखने लगे। दूसरी घड़ी बीतते-न-बीतते कीर्तिगढ़ का सदर फाटक दिखलाई पड़ा। पलक झपकाते तो वह दरवाजा पारकर मध्य चौक में राजगढ़ के पास आ पहुँची।

राजगढ के द्वार के आगे वह बिना कहे ही झुक गई। केसरदेव इतनी फुर्ती से कूदा कि गिरते-गिरते मुश्किल से बच सका।

रणबंकी की गर्दन पर केसरदेव ने स्नेहपूर्वक एक कोमल थपकी दी और राजगढ़ में प्रवेश करने के लिए त्वरित गति से आगे बढ़ा।

राजप्रासाद की विशाल ड्योढ़ी के समीप खडे अनेक शस्त्रधारी सैनिकों ने उसे आते हुए देखा। ड्योढ़ी में प्रवेश करते समय उसकी चाल इतनी तेज हो गई थी मानो वह चल नहीं रहा हो, बल्कि दौड़ रहा हो। लगभग दौड़ते हुए ही परिचित ड्योढ़ीवानों का नाम ले-लेकर वह उनसे पूछता रहा, 'कैसे हैं पिताजी ? मल्लदेव ! रणमल ! कहाँ है भारमल्ल ? बापू (पिताजी) की तबीयत कैसी है ?'

ड्योढ़ीवान जवाब दें और उसे सुनाई पडे उसके पहले ही एक ड्योढ़ी पारकर उसने दूसरी ड्योढ़ी में प्रवेश किया।

एक के बाद दूसरी ड्योढ़ी पर नैनात सैनिक और पहरेदार पत्थर की मूक प्रतिमाओं की भाँति भाले झुकाकर और अपने सिर नवाकर खडे रह गये थे। लेकिन जैसे यह सब देखने की दृष्टि ही न हो इस प्रकार केसरदेव आगे बढता गया।

अब राजमहल के अन्दर के खंड में वह जा पहुँचा था। उसका कलेजा मुँह को आने लगा। उसे किसी की आवाज तक न सुनाई दी। किसी अनिष्ट और अमंगल की आशंका हुई। अपने पाँवों से उसे शक्ति

निकलती और टाँगें लड़खड़ाती-सी प्रतीत हुईं।

'केसरदेव! इधर आओ, इस दिशा में। बापू तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

केसर ने बोलनेवाले की ओर देखा। उसने तत्काल दोनों हाथ जोड़ भक्ति-भाव से सिर नवाकर प्रणाम किया—'मंगलशिवजी! गुरुदेव! बापू कैसे हैं? उनकी तबीयत कैसी है?' उसने व्यग्र होकर पूछा। राज्य का वृद्ध पुरोहित मंगलशिव एक पवित्र आत्मा और भविष्यवादी विख्यात था। केसरदेव के प्रश्न के उत्तर में उसने केवल आकाश की ओर अंगुली-निर्देश किया। 'उससे बड़ा कोई नहीं।' उसने कहा और राजप्रासाद के अन्दर जाने का मार्ग प्रदर्शन करता हुआ वह आगे बढ़ा। भग्न-हृदय केसर उसके पीछे हो लिया।

पटसाल (पसार) से होकर वह अभी जा ही रहा था कि किसी ने उसके कन्धे पर हाथ रखा—'केसर कुँवर! आ गया भाई! तेरा ही रास्ता देखा जा रहा है। मकवाणाजी ने मृत्यु को रोक रखा है। परन्तु देखना भैया, अब ऐन मौके पर कहीं ढीले न पड़ जाना।'

'क्यों, क्या है, चारणजी! क्या बात है?' केसर ने जल्दी से कहा और आगे बढ़ने के लिए पाँव उठाया।

'तो सुनता ही जा, भैया! अन्दर बाद में जाना। भीतर तेरी अग्नि-परीक्षा होने को है भैया!'

'है क्या! जल्दी कह डालो, चारणजी! समय नहीं ..'

'मकवाणाजी ने मृत्यु को रोक रखा है, तेरा मुँह देखने के लिए। परन्तु अपने अन्त समय में वह जो कुछ कहें, तू उसे भैया, हृदय में धारण कर लेना। माता चौंसठ भुजावाली तुझे शक्ति दें, सामर्थ्यवान करें। देखना भैया, इस महत्व की घड़ी में पाँव पीछे हटाकर, कहीं मकवाणाजी का अन्तकाल बिगाड़ न देना। अब तू जा भैया! मैं भी यह आया!'

चारणजी, आचार्य मंगलशिव और केसर तीनों ने एक साथ राजमहल के शयन कक्ष मे प्रवेश किया।

अन्दर एक कोने में पलंग पर अस्थि-पंजर जैसा मकवाणा विहियास मृत्यु से संघर्ष करता हुआ पड़ा था।

जीवनकाल में वह जितना पराक्रमी था, मृत्यु के समय भी उतना ही पराक्रमी रहा। एक भी आह-कराह उसके मुँह से निकलने न पाती थी। सब को ऐसा ही लगता था कि वह शान्ति से आँखें मूँदे पड़ा है, परन्तु वास्तव में वह जीवन-मरण के महासमर में जुटा हुआ था।

उसने दरवाजे मे प्रवेश करती हुई परछाइयाँ देखीं। उसकी आँखें दमक उठीं। उसका अन्तिम तेज मानो प्रकट हो गया—'कौन आया ? आचारज मंगलशिव !'

'बापू ! केसरदेव है।' मंगलशिव ने समीप आकर कहा।

'बापू ! केसर कुँवर आ गये हैं।' चारणजी ने अधिक ऊँचे स्वर में कहा। बूढ़े ने आवाज सुनी। 'हाँ, कौन केसर कुँवर आया ? आ गया न मेरा कुँवर बेटा—मेरा शेर !' बूढ़ा क्षण-भर के लिए जोश में आया। लेकिन उस क्षणिक जोश ने उसके शरीर को क्लान्त कर दिया। केसर को देखते ही सामन्त-मंडल खड़ा हो गया था। बूढ़े ने भी उत्साहित होकर बैठने का प्रयत्न किया, लेकिन उससे उठा न गया। प्रमुख सामन्त भारमल्ल उसे सहारा देने के लिए आगे बढ़ा। परन्तु विहियास ने उसका हाथ परे हटा दिया—'मकवाणा को सहारे की जरूरत नहीं होती, भारमल्ल ! परे हट जाओ भाई !—मकवाणा को सहारा नहीं !' और वह पुनः हाथ के सहारे बिस्तर पर गिर पड़ा। इस बीच केसर उसके बिछौने के पास आ पहुँचा था; उसने पिता का हाथ अपने हाथ में ले लिया।

'पिताजी ! यह तो मैं केसर हूँ—मैं केसर. . !' आगे उससे बोला न गया।

'आ गया, बेटे ! बहुत अच्छा किया केसर ! भैया ! तेरे लिए तो....' वृद्ध बोलने लगे, परन्तु थक गये। 'तेरे लिए तो बेटा. मैंने मौत को रोके रखा था, मेरे लाल !'

'पिताजी ! क्या है ? कौन-सा काम था ?'

वृद्ध कुछ न बोले। थोड़ी देर आँखें मूँदे चुप पडे रहे।

'पिताजी, कौन-सा काम था ?' केसर ने पुनः पूछा।

'भीमदेव महाराज क्या कर रहे हैं ?'

'पिताजी, वह तो संघ पर चढ़े आ रहे हैं ! अभी तो आबू पर घेरा डाला है।'

केसरदेव ने वृद्ध की ओर देखा। अभी तक उनकी आँखें मुँदी हुई थीं।

'पिताजी कौन-सा काम था, यह तो आपने बतलाया ही नहीं !'

'हो .. गा ? तब तो कहूँ। बड़ा तो इनकार कर ही चुका है।'

केसरदेव ने चारण शंकर की ओर देखा। चारण ने अपना मुँह वृद्ध के समीप ले जाकर कहा, 'मकवाणाजी, कैसे जाना कि नहीं होगा ? चौंसठ भुजावाली मेरी माता की छत्र-छाया जिस पर है उससे भी यदि काम न बना तब फिर किससे बनेगा ! आप तो अपने मन की बात कह दीजिये, जिसमें मन की व्यग्रता मिट सके और शान्ति हो।'

'बड़े ने तो हाथ धो डाले.. .'

'कोई चिन्ता नहीं—उसने भले ही धो डाले....'

'वशतेरा—परताप—इनका भी मन टोह लिया। इसी लिए जी पीछे हट रहा है चारणजी !'

'बापू !' केसर अपने सदा के निश्चयात्मक स्वर में बोला, 'अब मन की बात मन में रखिये मत। जो कुछ भी दिल में हो कह ही दीजिये, पिता-जी ! मैं तो बैठा ही हूँ न !'

उसने चारों ओर देखा। सामन्त-मंडल निरुत्साहित हो रहा था

दोनो बड़े भाई उसकी ओर शिकायत-भरी दृष्टि से देख रहे थे। तभी वृद्ध की आँखें जरा-सी खुलीं। वह केसर की ओर देखता रहा। केसर के स्वर की प्रतिध्वनि उसके मन में गूँज रही थी। उसने स्नेहपूर्वक केसर के कन्धे पर हाथ रखा।

'वह जो सुमरा है न, संघ का सुमरा, उसकी नाक काटना है, केसर बेटे। यह हो तभी मेरे प्राणों की गति-मुक्ति होगी, मेरे लाल ! यदि न हो सके तो इनकार कर दे, बेटे ! मुझे कीचड़ का पानी मत पिलाना, हाँ, मेरे लाल !'

फिर केसर का वही दृढ, निश्चय और युद्ध की उमंग से भरा स्वर सुन पड़ा—'पूरा, बालिश्त-भर काटना है न पिताजी !'

'हाँ, मेरे लाल ! मन की बात समझ गया मेरा बेटा ! तेरी माँ बेचारी मेरा रास्ता देख रही होगी—आज उसका जी तेरी यह वाणी सुनकर ठण्डा होगा; तेरे ऊपर तो बेटा, चौंसठ भुजावाली की छत्र-छाया ..'

'तो पिताजी, अब जो भी कुछ करने का हो, बतला दीजिये। मन में कुछ भी न रखियेगा। सब कुछ कह दीजिये। आपके वचन का अक्षर-अक्षर पालन करूँगा—न पालन करूँ, तो खारा पाट (समुद्र किनारे का खुश्की में दूर तक चला आया रेतीला प्रदेश) का पानी (अन्न-जल) हराम है; न पालन करूँ, तो रौरव नर्क में गिरूँ; न पालन करूँ, तो बुरे हवाल तीन गाँवों के तिराहे पर "पानी-पानी" करता मरूँ : बिना मुड का प्रेत बना त्रिलोक में भटकता फिरूँ !'

'अरे, अरे ! हाँ, हाँ !' चारों ओर से सुभट, सरदार और तीनों बड़े भाई पुकार उठे, 'पहले वचन तो सुन लिया होता।'

एक हाथ उठाकर 'हाँ-हाँ' करनेवालों को केसर ने चुप किया—'आप लोग कुछ न बोलें—वचन का पालन मुझे करना है। माता भवानी पालन करवायेंगी। पिताजी कहिये, सुमरा का क्या करना होगा ?'

'यह सुमरा है न, संघ का सुमरा—सुमरा हमीर.. '

'उसे यहाँ जीवित पकड़ लाना है ?' केसर ने पूछा ।

'नहीं, नहीं, जीवित क्या होगा ! उस बेचारे को बड़ा अहंकार है—अहंकार है अपने घोड़ों का, सो उसकी घुड़साल के पाँच सौ घोड़े कम करने हैं । ले आकर भाट-चारणों को बाँट देना, बेटा !'

'और कुछ, पिताजी ?'

'मेरी तेरहीं के दिन !'

'अच्छा, पिताजी ! और कुछ ? मन में कुछ न रखियेगा, हाँ !'

मकवाणा ने सिर हिलाकर कहा, 'नहीं, बस इतना ही ।'

'पिताजी ! आपकी तेरहीं के दिन पाँच सौ घोड़े हमीर सुमरा की घुड़साल से लाकर भाट-चारणों को देना है । और कुछ ?'

बूढ़ा बोल न सका, कह पाया केवल इतना ही—'शा....बा....श ! बेटे !' अन्तिम बार केसर को अच्छी तरह निहारने के लिए उसकी ओर टक लगाये देखता रहा ।

सौन्दर्य के रत्नाकर जैसे उस बेटे को देखते-देखते उसे अपनी जवानी याद हो आई ।

'मं....ग .. ' उसने कहा ।

मंगलशिव बढ़ आया—'बापू, अब प्राणों को भवानी माता के चरणों में जुड़ा दो ।'

'रा....ज.. .ति . '

मंगलशिव आधी सुनकर ही पूरी बात समझ गया । मकवाणाजी केसर को राजसिंहासन का उत्तराधिकारी नियुक्त करना चाहते थे । उसने कहा 'राजतिलक उसी का होगा, जिसके कपाल मे युद्ध की यशोरेखा होगी । यही न ?'

'बस—चारणजी !—'

'समझ गया, अन्नदाता ! समझ गया !' शंकर चारण ने कहा, 'मकवाणा की आबरू और राज्य साथ रहेंगे, दोनो अविच्छिन्न हैं । यही न

कहना चाहते हैं आप ? जो आबरू रखेगा वही राज्य लेगा !'

वृद्ध ने एक बार केसर की ओर देख लिया। सन्तोष से एक ओर सिर झुकाकर उसने आँखें मूँद लीं। चारण ने मंगलशिव को संकेत किया। मंगलशिव गीता-पाठ करने लगा—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः॥

सब उपस्थित जन गम्भीर होकर सुनते रहे।

मकवाणा की उल्टी साँस चलने लगी।

कीर्तिगढ़ का प्रतापशाली राजपूत संसार से विदा ले रहा था। सब की आँखें भीग रही थीं। जो आजीवन मृत्यु को खेल खिलाता रहा, उसी को आज मृत्यु, अपनी गोद में खिलाने के लिए, वात्सल्य-भरी माता की भाँति लिये जा रही थी।

एक घड़ी पश्चात् राजप्रासाद नारी-वृन्द के करुण क्रन्दन से भर गया। चिहियास मकवाणा संसार का परित्याग कर चला गया था।

२. दामोदर का दूत

केसर मकवाणे ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया, यह बात भाट चारण के कंठ और लोक-वाणी की शोभा के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

और थोड़े ही समय में उसके पराक्रम की यह कथा कच्छ, सिन्ध और वढ़ियार-मंडल के घर-घर में प्रचलित हो गई।

लेकिन तभी किसी भाट ने ताना मारा—'भाया, मरु-प्रदेश के राजा होकर घोड़े क्या देते हो! देना ही हो तो कीमती साँढ़नियाँ दो। सुमरा के यहाँ साँढ़नियों का टोटा भी तो नहीं!'

'यह सौदा महँगा पड़ जायेगा, बारोटजी! सुमरा की साँढ़नियाँ हाँक लाना बच्चों का खेल तो है नहीं।' किसी ने कहा।

'तब तो फिर, भाया, यूँ कहो न कि मकवाणाजी सुमरा से डरते-डरते कदम उठाते हैं! और प्रतिज्ञा पालन करने का सन्तोष भी मानते हैं। जिस दिन मकवाणाजी उसकी साँढ़नियों को हाँक लायेंगे, सुमरा का नाक उसी दिन काटा कहा जायेगा। घोड़े खोल लाने से यह थोड़े ही माना जायेगा कि बालिश्त-भर नाक काट लिया है!'

इस उड़ती बात को केसर ने भी सुना। उसने उलटकर जवाब दिया—'सभी बारोट, चारण, भाट—समस्त कवि-मंडली को खबर कर दो कि मकवाणाजी सुमरा की साँढ़नियाँ भी दे चुका। जिस प्रकार इस प्रसंग को गौरवान्वित किया उसी तरह उस प्रसंग को भी गौरवान्वित करने के लिए सभी को सादर निमन्त्रण है।'

मौत को हथेली में लेकर घूमनेवाले मकवाणा ने वचन दे दिया।

इस बात को थोड़ा समय भी हो गया। अब मकवाणा को रात-दिन यही चिन्ता लगी रहती थी कि सुमरा की सॉढ़नियाँ खोल लानी हैं, मगर उधर सुमरा भी सतर्क हो गया था। ऐसे में उसकी सॉढ़नियाँ क्योंकर लायी जा सकती थीं? मकवाणा को रात-दिन यही चिन्ता सालने लगी।

तभी दूसरी ओर से ये समाचार भी मिले कि विमल ने चन्द्रावती पर चढ़ाई की है और दामोदर आडावला* में है।

ऐसे समय यदि महाराज भीमदेव उसे आडावला के युद्ध में सम्मिलित होने के लिए सन्देशा भेजें तो की हुई प्रतिज्ञा पूरी करने में और भी विलम्ब हो जायेगा। इस बात की चिन्ता और ऊपर से थी।

एक दिन अपने नित्य नियमानुसार कीर्तिगढ़ की गढ़-प्राचीर पर चढ़कर केसरदेव सन्ध्या के समय चारों ओर के रेतीले प्रदेश को देख रहा था। उस समय उसके मन में अपनी ही प्रतिज्ञा के स्वर जोर-जोर से प्रतिध्वनित हो रहे थे। कोई सामन्त या सरदार सुमरा की सॉढ़नियों को लाने की हिम्मत नहीं करता था। दोनों बड़े भाई तो पहले ही हाथ धोये बैठे थे। अकेला और निःसंग केसर मन-ही-मन योजना बनाता गढ़-प्राचीर की छाती बराबर ऊँची रक्षा-प्राकार पर घूम रहा था।

घूमते-घूमते एक स्थल पर खड़े होकर उसने दूर-दूर तक दृष्टि दौड़ाकर देखा—दृष्टि की सीमा तक अस्तंगत सूर्य की किरणों में रेतीला पट हीरा-कणियों की तरह चमक रहा था।

'ओ-हो-हो! मेरी माता जोगमाया ने बैठने के लिए कितना बढ़िया स्थान प्रदान किया है! यह .., और, कोसों तक बालू का समुद्र लहरा रहा है। जो भी आये, वेटे की टाँगें ही रह जायें। भीमदेव महाराज को हँफानेवाले गजनीवासियों तक को इस रेतीले समुद्र ने परास्त कर

*अरावली

दिया, उन्हें भी मुँह में तिनका डालकर तौबा करनी पड़ी थी! अ हा-हा-हा! रेतीला प्रदेश कैसा शोभायमान हो रहा है!—'

उच्च स्वर में बोले गये अन्तिम शब्द अभी उसके मुँह से निकल ही रहे थे कि दूर से चली आती किसी वस्तु पर उसकी दृष्टि स्थिर हो गई। ऐसा लगता था मानो कोई साँढ़िया (साँढ़नी सवार) तेजी से चला आ रहा हो।

'इस समय कौन होगा?' केसर अभी सोच ही रहा था कि इतने में एक आदमी ने आकर खबर की—'महाराज! मन्त्रीश्वर दामोदर मेहता का एक सन्देशवाहक आया हुआ है।'

'दामोदर मेहता का? कौन आयुष तो नहीं?'

'जी नहीं।'

'फिर कौन है?'

'कार्तिक स्वामी।'

'खुद कार्तिक स्वामी!'

मकवाणा को आश्चर्य हुआ। कार्तिक स्वामी से पाटन में उसका परिचय हुआ था। अत्यधिक महत्वपूर्ण और कुशल कूटनीति के जटिल कामों में ही वह सन्देशवाहक बनाकर भेजा जाता था। यह जानकर कि दामोदर ने उसी को यहाँ भेजा है मकवाणा को आश्चर्य और खेद दोनों ही हुए। आश्चर्य इसलिए कि महाराज भीमदेव की सेना तो नड्डूल की ओर कूच कर गई थी और कार्तिक स्वामी की सेवाओं की वहीं आडावला के विकट जंगलों में अधिक आवश्यकता थी। उसके बदले वह यहाँ क्यों आया? दामोदर मेहता को सिन्ध पर चढ़ाई करनी थी। इस कार्य में कच्छ-मण्डल कितनी मदद दे सकेगा, यह जानने के लिए यदि कार्तिक को भेजा हो तो मानना होगा कि मन्त्रियों में प्रवीणतम मन्त्रीश्वर उस पर इतना अधिक अविश्वास करता है, और यही बात खेद का कारण हुई। लेकिन अभी वह अधिक सोच-विचार

भी नहीं पाया था कि कार्तिक स्वामी आ पहुँचा !

उसने आकर मकवाणा को प्रणाम किया।

'कहिये सुभटवर! कच्छ का रण देखने के लिए इधर आ निकले हैं, क्या ? आपकी ओर के समाचार क्या हैं।'

'महाराज! मन्त्रीश्वर ने मुझे आपके ही पास भेजा है।' कार्तिक ने जवाब दिया।

'किसने ? दामोदर मेहता ने ?'

'जी हाँ!"

'यह तो मैं आपको देखते ही समझ गया। परन्तु भेजने का कारण क्या है ? बतलाइए।'

'मेहता स्वयं ही आने को थे परन्तु अर्बुदपति धधूकराज का मामला अभी तक उलझा ही हुआ है, इसलिए मुझे भेजा। विहियासजी मकवाणा के दिवंगत होने के समाचार सुनकर क्षण भर के लिए तो महाराज स्तंभित ही रह गये, खबर क्या मिली, घुटने ही टूट गये। अपने पिता की मृत्यु याद हो आई। उनसे मिलने को महाराज के मन-की-मन मे रह गई। सिन्ध के सुमरा की राई-रत्ती खबर उन्हें विहियासजी से मिल जाया करती थी।'

'माता जोगमाया की आज्ञा होने के बाद कौन है जो घड़ी-भर भी यहाँ रुक सके! परन्तु मरते-मरते भी सुमरा की देखभाल करते रहने का काम हमें सौंप गये हैं!'

'उधर महाराज भीमदेव को भी यही चिन्ता लगी हुई है। अरावली का आधार लेकर बैठा हुआ नड्डूल का अणहिल चौहान, चित्रकूट* में पहाड़ों के बीच जमा हुआ अवन्तीनाथ, और इस ओर अर्बुद गिरि-शृंखला में धंधूकराज, इन तीनों को पहाड़ों का सहारा है।

*चित्तौड़ का प्राचीन नाम; उन दिनों वहाँ मालवे की सत्ता थी।

तीनों को ही हराना मुश्किल; और तीनों से निपटकर तब सिन्ध के हम्मुक से दो-दो हाथ करने के लिए आने का महाराज का इरादा था। इसी बीच महाराज को यह खबर मिली कि विहियास मकवाणा स्वर्गवासी हुए। क्षण-भर के लिए तो महाराज व्याकुल हो गये। मानो दाहिनी भुजा ही टूट गई हो।'

'यह तो जैसी काल-गति। क्या कहलवाया है मन्त्रीश्वर ने?'

'अभी तो मन्त्रीश्वर वहाँ की लड़ाई ही की मोर्चाबन्दी मे लगे है। उन्होंने कहलवाया है, कि महाराज, आडावला की लड़ाई में आपके बिना मजा नहीं आ सकता। महाराज, यहाँ का काम निपटाकर जल्दी-से-जल्दी चल दीजिये। यही कहने के लिए मैं आया हूँ।'

'लेकिन यहाँ हमारे सिर धर्म-संकट जो है, उसको क्या करें?'

'सो क्या है महाराज! कहिये।'

'पिताजी मरते-मरते सुमरा की सिपुर्दगी कर गये हैं—उसका क्या हो?'

'भीमदेव महाराज स्वयं सुमरा पर आक्रमण करनेवाले हैं। उस समय आप तो साथ रहेंगे हीं।'

'परन्तु यह तो हमारी अपनी बात है, भाई! हम ठहरे रण (रेगिस्तान) के पंछी। बड़ी-बड़ी सेनाएँ जोड़कर चढ़ाई करना और बड़ी-बड़ी विजय प्राप्त करना कुछ हमारी समझ में नहीं आता। हमारे काम तो हमारे ही जैसे छोटी औकात के होते हैं। चढ़ दौडे, छापा मारा और फिर अपने घर मे आ बैठे।'

'नर--शार्दूलों की यही रीति है, महाराज!'

'इसे आप जो भी समझ लें। पिताजी की तेरहीं के दिन सुमरा की घुड़साल में से पाँच सौ घोड़े लाकर भाट-चारणों को बाँटने थे, सो तो बाँट-बूँट दिये; परन्तु अब साँढनियाँ बाँटनी हैं और भाट-चारणों को न्योता भी दे दिया है।'

'न्योता दे दिया है ? और सोढनियाँ ? उन्हे तो अभी लाना होगा ?'

'हाँ, न्योता दे दिया है, और सोढनियाँ अभी सुमरा के यहीं हैं। अब उन सोढनियों को कैसे लाया जाये, इस बारे मे तुम कुछ सलाह दे सकते हो ? बोलो ! हमारा वहाँ चलना उसी पर निर्भर करता है।'

अन्दर के प्रकोष्ठ मे से किसी का सुन्दर मधुर स्वर सुनाई दिया—'किससे सलाह ले रहे हैं, महाराज ? और किसके आगे यह कह रहे हैं आप ? महाराज के मन को किसका सहारा मिल गया है ?'

दरवाजे में एक सुन्दर, तेजस्वी, स्वरूपवान छरहरी नारी की आकृति खड़ी दिखाई दी। कार्तिक स्वामी ने देखते ही उसे प्रणाम किया। वह पल-भर में समझ गया कि मकवाणा के शरीर में जो अद्भुत वीरता लहरा रही है उसके अंश का जन्मस्थान (औरस को कोख में धारण करनेवाली रमणी) यही है।

३. मंगलशिव ने क्या कहा ?

कार्तिक स्वामी को तो आदमियों की बड़ी परख थी। लेकिन यदि न होती तब भी सरलता से समझ में आ सकने जितनी स्पष्ट वह बात थी।

सामने केतकी की छड़ी जैसी सुन्दरी और कुछेक उत्तुंग जो तन्वंगी खड़ी थी वह मानो नारी नहीं, साक्षात् योगमाया ही मालूम पड़ती थी। उसके चेहरे पर सुन्दरता या असुन्दरता का कोई विशेष आकर्षण नहीं था। परन्तु उसकी सारी रीत-भाँति ही अद्भुत और निराली थी। उसका वह दरवाजे की चौखट में खड़े रहने का ढंग, बोली का माधुर्य, बोलते समय जो वाक्य में न हो उस विशिष्ट को भी उच्चारण-मात्र से ध्वनित करने की उसकी सामर्थ्य—इस सबसे और उसके एक ही वाक्य से, कार्तिक स्वामी पल-भर में यह समझ गया, कि रानी उदयमती की छोटी बहिन इस जयवती में, एक जुदे ही प्रकार की मोहिनी रम रही है। उसे दोनों बहिनों में आकाश-पाताल का अन्तर दिखाई दिया।

'आओ, आओ, देवी! मुझे तुम्हीं से पूछना था। लो, अब कैसे और क्या करना चाहिये, यह तुम्हीं बताओ! इन सुभटवर को तुम पहचानती हो? यह महाराज के यहाँ से आये हैं इनका नाम है कार्तिक स्वामी!'

'अच्छा! तब तो बड़ी बहिन का सन्देशा लाये होंगे!'

कार्तिक स्वामी ने सिर नवाकर पुनः प्रणाम किया।

'हाँ, और महाराज ने मुझे बुलाया है।'

'आपको ? बुलाया है ? किस लिए ?'

केसर को हँसी आ गई—'मुझे....मुझमें और तो ऐसा क्या है कि कोई बुलायेगा ? यह जो बुलाया है, सो किसी से जूझने के लिए ही।'

'धंधूकवाला मामला होगा ?'

'वह भी हैं! नड्डूल वाले हैं। भोजराज हैं। महाराज तो जीवन-पर्यन्त लड़ते रहें इतने दुश्मन हैं उनके। कितना बड़ा सौभाग्य है यह! और एक मैं अभागा हूँ। दुश्मन के नाम पर ले-देकर बस एक अकेला सुमरा!'

'परन्तु, महाराज, आपके लिए तो यह एक सुमरा ही होना चाहिए। पड़ोस में ही है। अन्यथा आपके तो दर्शन ही दुर्लभ हो जाते!' रानी ने कहा।

'इस तरह क्यों बोली ?'

'महाराज! युद्ध छेड़ा है, तो कभी युद्ध के अन्त का ध्यान आता है आपको ? पुरोहित मंगलशिव भी पाँच-पचीस बार सन्देशा भेज चुकते हैं तब कहीं एक बार आते हैं आप। अच्छा ही हुआ कि आपको पास-पड़ोस में प्रबल शत्रु मिल गया! कोई दुबला-कमजोर होता तो बेचारा कभी का संघ छोड़कर पलायन कर जाता।'

केसर जवाब देने जा ही रहा था कि उसे जयदेव आता हुआ दिखाई दिया।

'क्यो जयदेव....?' जयदेव को देखते ही केसर ने जल्दी से पूछा।

'महाराज!' जयदेव इससे अधिक कुछ न बोला। वह चुप खड़ा रहा। यह देख केसरदेव उससे मिलने के लिए बाहर चला गया।

केसरदेव के जाते ही पटसाल में से किसी की आवाज सुनाई दी—'महारानीजी, आचार्यदेव आये हैं।'

'कौन ? गुरुजी ?'

'जी हाँ!'

'अच्छा ही हुआ, मैं यह आई। सुभटवर, आज तो ठहरेंगे ?'

'जी, महारानीजी ! दो-एक दिन तो रहूँगा ही !'

कार्तिक स्वामी ने बाहर की ओर देखा। मकवाणाजी और जयदेव कहीं चले जा रहे थे। रानी भी चली गई। अब पूरे खंड में वही अकेला खड़ा था।

थोड़ी ही देर में समीपवाले प्रकोष्ठ से आता हुआ रानी का स्वर उसे सुनाई दिया। मनक से उसे लगा कि कोई अत्यन्त महत्वपूर्ण चर्चा हो रही है। पाटन के राजमहलोंवाली उसकी कूटनीतिज्ञ चेष्टा जाग्रत हो आई। वह तत्काल लपककर दीवाल से सट गया और कान लगाकर अन्दर की बातचीत सुनने लगा।

'मैंने कहा कि रानीजी को सचेत कर दूँ।' कार्तिक स्वामी वार्त्तालाप के सूत्रों को पकड़ने का प्रयत्न कर रहा था। स्वर पुरुष का था। कार्तिक स्वामी ने अनुमान लगाया कि जो गुरुजी मंगलशिव कहा जाता है वह आदमी यही होना चाहिये।

'अच्छा ही किया आचार्यजी ! परन्तु....'

'किन्तु-परन्तु क्या रानीजी ! सामन्त का धर्म तो ठीक ही है, परन्तु वंश-वृद्धि सबसे पहले !'

'आचार्यदेव ! मकवाणाजी मानेंगे भी ?'

'न माने, तो आपको उन्हें मनाना होगा। प्रतिज्ञा की है, तो उसका पालन करना चाहिये। परन्तु आडावला में जाकर प्राण देना—ऐसे विकट पहाड़ों में, जहाँ कच्छ प्रदेश का एक भी आदमी देखने को न मिले—ऐसे उस रणक्षेत्र में जाने की भला क्या आवश्यकता है ! वहाँ लड़नेवालों की ऐसी क्या कमी है ?'

कार्तिक के आश्चर्य की कोई सीमा न रही। भीमदेव महाराज तो उधर मकवाणा की मदद का भरोसा किये बैठे थे, और इधर मकवाणा को आडावला के युद्ध ही में न जाने देने के मनसूबे हो रहे थे।

'सुनिये रानीजी! एक दूसरी बात भी है। मकवाणाजी के यहाँ से हटते ही दोनों बड़े भाई अपने पाँव फैलाने लगेंगे।'

'इसकी तो आचार्यजी, महाराज को जरा भी चिन्ता नहीं। वह तो यही कहेंगे कि "जहाँ मैं और मेरी रणबंकी, वहीं हमारा राज्य—इस धरती पर राज्यों की कमी कहाँ है? लेना आये तो समस्त धरती ही अपनी है।" वह तो यहीं कहेंगे।'

'परन्तु रानीजी! यह पाटन का आदमी आया है न? उसे देखा है आपने? मेरी तो देखते ही छाती धड़कने लगी। मन ने कहा कि हो-न-हो, जरूर मकवाणाजी को बुलाने आया है, इसी लिए मैं भागा चला आया। आपके कथनानुसार मैं पिछले आठ दिनों से मकवाणाजी की जन्मपत्री पुनः-पुनः देख रहा था। प्रत्येक अंक की गणना मैंने बारम्बार करके देखी।'

'आपकी गणना में क्या दिखाई दिया मंगलदेवजी?'

आचार्य मौन हो गया। क्षण-भर तक वह कुछ न बोला।

कार्तिक स्वामी को भेद कुछ खुलता हुआ प्रतीत हुआ। वह बहुत ही सावधान होकर सुनने लगा।

'आचार्यदेव, आप कुछ बोले नहीं?' रानी ने पूछा।

'बतला दूँ, रानीजी?'

'यदि आप नहीं बतलायेंगे, तो फिर कौन बतलायेगा?'

'लेकिन सुनने के लिए वज्र-जैसा कठोर हृदय होना चाहिये। यह मानता हूँ कि जन्मपत्री बनाने में एक पल अथवा विपल की भूल हो सकती है, होती ही है और इस जन्मपत्री में भी यदि पल-विपल का अन्तर है, तो फलादेश गलत भी हो सकता है! और न यही शत-प्रतिशत कहा जा सकता है कि ऐसा ही होगा।'

'आचार्यजी, मैं रा' की बेटी हूँ। वज्र-जैसे समाचार सुनने की मेरी आदत है। आप व्यर्थ असमंजस न करें। बताइये, क्या बात है?' रानी

ने दृढ़ निश्चय-भरे स्वर मे कहा। कार्तिक स्वामी ने उसके स्वर की दृढ़ता का अनुभव किया।

'तो सुनिये रानीजी, मकवाणा की आयु अल्प है !'

'आयु अल्प है ? परन्तु कीर्ति ? कीर्ति तो अल्प नहीं है न ?' रानी की बातें सुनकर कार्तिक स्तब्ध रह गया। इस प्रकार का वज्र स्वर उसने सुना ही न था।

'कीर्ति तो दिग-दिगन्त मे फैलेगी रानीजी ! योग ऐसा ही है।' मगलशिव ने कहा।

'फिर आप यह क्यों कहते है कि आयु थोड़ी है ?' जयवती ने पूछा।

मंगलशिव उसका अभिप्राय समझ गया। उसने सिर हिलाकर कहा, 'रानीजी ! आपका.. .हृदय.. !'

'आचार्यजी, राजपूतनी ने आयु को पहचाना ही कब है ! वह तो सिर्फ कीर्ति को जानती है। उसने तो रणक्षेत्र को वरा है। राजपूतनी लज्जित होती है, हेठी पड़ती है, तो उस दिन जब अकीर्ति मे उसे हिस्सा बँटाना पड़ता है !... और वशवृद्धि ? उसके बारे में क्या है ? महाराज की जन्मपत्री मे वंशवृद्धि का योग है या नहीं ?'

मंगलशिव ने कहा, 'वंशावली तो है रानीजी; और सन्तान भी यशस्वी होगी।'

'फिर ? आपकी इस जन्मपत्री मे ऐसा क्या है, जिसे कहते हुए आप घबरा रहे हैं ? आपने आज तक कोई ऐसी जन्मपत्री भी बनाई है, जिसमे मृत्यु का योग न हो ?'

'ऐसी जन्मपत्री भला कैसे बन सकती है, रानीजी ?'

'तो फिर आपने नयी बात क्या बतलाई ? मेरे मकवाणाजी कीर्ति प्राप्त करेंगे, वंशवृद्धि भी होगी और आडावला मे मर्द की तरह युद्ध भी करेंगे। मृत्यु के भय से राजपूत घर बैठने लगे तो राजपूतनियाँ अपने सौभाग्य सिन्दूर की रक्षा कर चुकीं ! क्यों, कुछ बोल नहीं रहे आप मंगल-

शिवजी ? लम्बी आयु अर्थात् जड़ आयु को लेकर हमें करना भी क्या है ! अच्छा तो....'

कार्तिक स्वामी फुर्ती से अपने स्थान पर आ खड़ा हुआ । उसे ऐसा लगा, मानो रानी बाहर आ रही हो । उसका अनुमान सच था । थोड़ी ही देर में रानी बाहर आ गई ।

'महाराज अभी तक नहीं लौटे, सुभटवर ?' रानी ने अन्दर प्रवेश करने के साथ ही पूछा । प्रकोष्ठ में हुए महत्वपूर्ण वार्त्तालाप का प्रभाव अब भी उसके चेहरे पर विद्यमान था ।

'हाँ, हाँ ..' बाहर से आ रहे मकवाणा ने जवाब दिया, 'यह चला ही आ रहा हूँ । कार्तिक स्वामीजी, यहाँ तो बड़ी भारी बात हो गई !'

'क्या हुआ महाराज ?' कार्तिक स्वामी को ऐसा लगा मानो मकवाणा दूसरे ही क्षण कहेगा कि मैं आडावला के युद्ध में सम्मिलित नहीं हो सकूँगा ।

'अजी वह है न तुम्हारी परताप देवी—प्रताप देवी—वह कल से यहाँ आई हुई है !'

कार्तिक स्वामी को ऐसा लगा मानो किसी ने उसके सिर पर भारी मुग्दर दे मारा हो । उसे विश्वास हो गया कि दामोदर ने जो काम बनाने के लिए उसे भेजा है, वह इस औरत के अचानक आ जाने से जरूर बिगड़ जायेगा । वह मन-ही-मन मनाने लगा कि यह मुसीबत यहाँ से चलती बने तो गंगा नहाये ।

'किसने कहा, महाराज ? आपको खबर कैसे हुई ?'

'खबर दी जयदेव ने । वह नियमानुसार दरवाजे पर था । उस समय एक नया और अपरिचित साँढ़िया आया । जयदेव को शंका हुई । साँढ़िया तो धर्मशाला में जाकर रात बिताने के लिए टिक गया; परन्तु थोड़ी देर में उसके पीछे सुमरा का साँढ़नी सवार आ पहुँचा ।'

'सुमरा का साँढ़नी सवार ? वह क्यों आया ?'

'वह प्रताप देवी के पीछे लगा हुआ था, उसे पकड़ना चाहता था। इसलिए प्रताप देवी ने भागकर यहाँ शरण ली।'

'तो क्या उसे सौंप दिया है, महाराज ?' रानी ने झट से पूछा।

'उसे सौंप देता तो भला रा' की बेटी की छाँह मे भी खड़ा हो सकता था ? मुश्किल न हो जाती !'

'वाह ! मकवाणाजी, वाह ! धन्य हो मेरे नर केसरी !' बारोट शंकर अचानक वहाँ आ गया था, उसकी वाणी सुनाई दी।

'बारोटजी, अभी तो सॉढ़नियाँ आई भी नहीं हैं, आपकी विरुदावली पहले ही शुरू हो गई ?' रानी ने कहा।

'वे भी आयेंगी, महारानीजी, जरूर आयेंगी। अभी भरे दरबार में सुमरा के आदमी ने आकर कहा कि हमारा चोर तुम्हारे यहाँ है, उसे हमारे हवाले करो। बस लगे सब हकलाने। एक ने कहा—ढूँढ़ लो। दूसरे ने कहा—यहाँ नहीं है। इतने मे तो ये पहुँचे मेरे मकवाणाजी और फटाक से कह सुनाया कि जाकर कह देना सुमरा से कि कीर्तिगढ़ के कोट-कंगूरे अभी तो सही-सलामत खड़े है।'

रानी स्नेह-भरी दृष्टि से मकवाणा को निहारती रही।

'जयदेव ! अब तू जा और प्रताप देवी पर निगाह रख। उसे हिलने मत देना। उसके पास सुमरा की महत्वपूर्ण जानकारी होगी। कहाँ गई है वह, वहीं धर्मशाला में न ? कल युक्तिपूर्वक उससे बात निकलवानी होगी। देखना, कहीं भाग न जाये—गजब की औरत है। पूछ देख इन सुभटवर से। क्यों कार्तिकजी ?'

'हाँ, महाराज ! है तो गजब की !'

'और सुमरा का आदमी ? क्या वह भी वहीं है ?' मकवाणा ने जयदेव से पूछा।

'जी, वह भी वहीं दूसरी धर्मशाला मे ठहरा है !'

'देखना, कहीं कोई उत्पात न करे।'

'वहाँ चौकसी के लिए सारंग तैनात हैं।'

'और तू भी जा।'

जयदेव प्रणाम कर विदा हुआ। थोड़ी देर के बाद बारोटजी भी चले गये। अब मकवाणाजी ने कार्तिक स्वामी को भी सवेरे मिलने का कहकर विदा किया। मकवाणा शयन कक्ष की ओर मुड़ा। तभी रानी ने उसका हाथ पकड़ लिया—'महाराज! मुझे आपसे एक बात पूछना है।'

'क्या है? आज तुम्हारे नयनों मे निखिल विश्व की वारुणी क्यों छलक रही है?'

'ओहो! कहीं आप पर भी मालवराज के कवियों की छाया तो नहीं पड़ गई! परन्तु महाराज! पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिये। आपको क्या अच्छा लगता है—आयु या कीर्ति?

'मकवाणा रानी की ओर देखता रहा; उसने धीरे से उसका हाथ पकड़ लिया—'तुम्हीं बताओ। रा'—जूनागढ के रा' किसकी कामना करते हैं? और उन्हे क्या अच्छा लगता है?—कीर्ति या आयुष्य?'

जयवती ने जवाब नहीं दिया। वह केसर की आँखो में देखती रही। थोड़ी देर बाद प्रेमपूर्वक बोली, 'महाराज! जूनागढ के रा' का कुल और यह मकवाणा कुल—इन दोनों कुलों के लिए मृत्यु तो कीर्ति की परछाईं के समान है। महाराज का कुल-यश अमर हो!'

'रानीजी! अब तो इस अमरता को सहेजना भारी पड़ता जा रहा है। सुमरा की साँढनियों को कैसे लाया जाये, इसका विचार करना होगा।'

'मुझे एक तरकीब याद पड़ रही है, महाराज! क्या उससे आपका काम निकल नहीं सकता? आप उन सुभटराज से बातें कर रहे थे तब मैं वही तरकीब बतलाने के लिए इधर आई थी।'

'कौन-सी तरकीब.. ?'

'महाराज! जूनागढ पर रा' का और रा' पर जूनागढ का पारस्परिक ऋण है। जब तक गिरनार की छत्रछाया है, रा' की गादी पर कोई कच्चा-

पोचा रा' बैठ नहीं सकता और बैठ भी गया तो टिक नहीं सकता। ऐसा अविचल प्रताप है उस गादी का। वहाँ झगड़े-टंटे और लड़ाई-भिड़ाई होती ही रहती है। जब छोटी थी तब मैं भी इस तरह की लड़ाई-भिड़ाई मे कभी-कभी सम्मिलित हुआ करती थी। ऊँट के गोल को भगाना होता तो एक सॉंढनी-सवार आगे हो जाता। वह लकड़ी में एक कपड़े को अधर झंडी की तरह टॉंग लेता। वह कपड़ा सॉंढनी के खून मे तर किया हुआ होता था। उसकी गंध पाकर और लाल रंग देखकर पूरा टुल्लर उसके पीछे बगटुट भागने लगता था। क्या यह तरकीब यहाँ काम नहीं आ सकती ?'

केसर समझ गया। युक्ति निस्सन्देह मूल्यवान थी, उपयोगी भी हो सकती थी। परन्तु इस समय वह प्रेम के रंग में था।

'अच्छा... तो रानीजी! आपने चोरी के धन्धे भी कर रखे हैं।' मकवाणा ने विनोदपूर्वक कहा—तुम्हारी यह तरकीब चोर के लिए तो बहुत ही उपयोगी है। निश्चय ही तुमने चोरी . '

'लेकिन महाराज, आपसे तो कम ही हूँ। आप तो जूनागढ़ के भरे बाजार मे से हजारों लोगों के देखते-देखते मुझे चुरा लाये। और यहाँ पिंजरे में डाल रखा है।'

'तुम भी तो मुझे कैद किये हुए हो।'

'यह तो पारस्परिक है महाराज! क्या मैं भी आपकी कैद मे नहीं हूँ ?'

४. प्रताप देवी भाग गई

दूसरे दिन सवेरे जब केसर का आदमी बुलाने आया तो कार्तिक स्वामी प्रातःकर्म समाप्त कर तैयार हो गया था।

कार्तिक स्वामी राज-प्रासाद में आया। कीर्तिगढ़ में शोक की छाया व्याप्त हो रही थी। और किसी प्रकार के उत्साह का दिखाई न पड़ना भी स्वाभाविक ही था। लगता था कि गौण रूप से सब पर केसर की धाक जमी हुई है और ऐसा भी प्रतीत होता था, मानो केसर का साहस किसी को भी अच्छा नहीं लग रहा हो।

कार्तिक स्वामी सोचता रहा। कल की घटना से इतना तो उसकी समझ में आ ही गया था कि सिन्ध की आगामी लड़ाई में केसर मकवाणा की सहायता आवश्यक है। वह जिस काम के लिए आया था—मकवाणा को साथ ले जाने के लिए—वह तो अब सफल होता दिखाई नहीं दे रहा था। सोढ़नियों वाला मामला निपट जाने के बाद भी केसर तत्काल चल सकेगा या नहीं यह एक प्रश्न था। क्योंकि सुमरा से वैर मोल लिया था, इसलिए वह भी बदला चुकाने आयेगा ही।

इसलिए वह अपने दूसरे कार्य के बारे में सोचने लगा। दामोदर मेहता ने उसे एक ताम्रपत्र दिया था। उसे मकवाणा के हवाले करना था। चौला देवी ने यह ताम्रपत्र रानी उदयमती को प्रदान किया था। वही ताम्रपत्र केसर मकवाणा के पास रखना था। दामोदर मेहता तो इस बात को भूल जाना चाहता था। परन्तु रानी उदयमती के कहने से पहले चौला ने ही दामोदर से इसके बारे में कहा था। इस समय वह

मूल्यवान ताम्रपत्र कार्तिक स्वामी के पास था।

लेकिन पिछली रात रानी जयवती की बातें सुनकर उसे ऐसा लग रहा था कि ताम्रपत्र मकवाणा के बदले रानी के हवाले करना चाहिये। अपनी बुद्धि और समझ के अनुसार किया हुआ यह काम दामोदर को पसन्द आयेगा या नहीं, इस पर वह सोचने लगा। तभी उसने राज-प्रासाद के समीप, नीचे के चौक में मकवाणा को, जयदेव को और एक आगन्तुक को खडे देखा। चौक में खड़ा मकवाणा घोड़ों की परीक्षा कर रहा था।

वह आगन्तुक अपनी वेश-भूषा के कारण पहचान में आ गया—वह सिन्ध का आदमी था।

'जयदेव, यह क्या कह रहा है? रात में कोई इसकी सॉढ़नी को चुरा ले गया, यही न?' मकवाणा ने आश्चर्यचकित होकर जयदेव से पूछा। कार्तिक स्वामी भी वहाँ आकर और प्रणाम करके एक ओर चुपचाप खड़ा हो गया।

'हुआ तो ऐसा ही है महाराज!' जयदेव ने कहा।

'आखिर कौन चुरा ले गया? पता लगाओ। तुम्हारी सॉढ़नी ज्यादा कीमती थी क्या?'

सिन्ध के दूत ने कुछ उपेक्षा से कहा—'सिन्ध के सुमरा के यहाँ हजारों सॉढ़नियाँ हैं, महाराज! एक के कमोबेश होने से कोई हर्ज नहीं होता।'

'तब?'

'मकवाणा के गढ़ में चोरी हुई, आपत्ति इस बात की है। सॉढ़नी को चुरानेवाला और कोई नहीं। जरूर वही है जिसे आपने शरण दी। चोरी उसी ने की होगी। हमारा चोर अब आपका भी चोर हो गया न?'

'उससे निपटने का ढंग हमारे ध्यान में है।'

'परन्तु उसे लेकर हम्मुकराज के साथ तो आपके सम्बन्ध बिगड़ ही

गये न ? हम जाकर क्या कहेंगे ?'

'कहोगे क्या ? तुम एक बढ़िया-सी साँढ़नी हमारे यहाँ से देख-परख-कर ले जाओ।'

'और चोर—चोर तो हमारे सिपुर्द नहीं किया गया सो ?'

'शरण मे आये हुए को मकवाणा किसी दिन देता नहीं है, दूत ! जाकर यह कह देना हम्मुकराज से।'

'महाराज ! मैं तो कह दूँगा। परन्तु व्यर्थ ही वैर बढ़ाने का कारण ?'

'अरे, भलेमानुष ! वैर तो बँधते और वंश-परम्परा के साथ बढ़ते ही रहते हैं, इसमें भला कारणों का होना और न होना कैसा ? हम वैर न बढ़ायेंगे तो तुम्हीं बढ़ाओगे। अभी भी क्या जड़ोमूल से हमारी नाक काटने नहीं दौड़े आये ? शरणागत को लौटाने का कहना क्या नाक काटने की बात नहीं है ?'

'अच्छा, जैसी महाराज की मर्जी ! मैं तो इसलिए कह रहा था कि मीहरान (सिन्ध) कहीं लहरा आये तो कुरीज (कच्छ) बह न जाये।'

दूत की यह बात सुनते ही केसर का भाव-परिवर्तन हो गया। उसने कठोर होकर कहा—'अरे दूत, तू कहाँ का, सिन्ध का ही रहनेवाला है न ? देख, आज तो लौट जाने देता हूँ, लेकिन आगे कभी इस देश की ओर निगाह भी की, तो सिर धड़ पर नहीं रहेगा, यह समझ लेना !'

'तो फिर कहाँ रहेगा ?' दूत ने निडरता से पूछा।

'मेरी माता चौंसठ भुजावाली के खप्पर में, समझा ? जयदेव, इसे एक साँढ़नी ले जाने देना।'

दूत और जयदेव जाने को उद्यत हुए तभी मकवाणा ने पुनः कहा—'और देख, तेरी वह साँढ़नी मिल गई, तो भिजवा दी जायेगी। हमें वैसी साँढ़नी की न तो जरूरत है, न टोटा।'

'उस साँढ़नी को तो अब यहीं कीर्तिगढ़ के दरवाजे पर लेनेवाले लेंगे। सिन्ध का स्वामी हमारी अपेक्षा इसे अच्छी तरह जानता है कि

सोंढनी किस तरह ली जाती है।'

'तब तो ...परन्तु तेरा नाम क्या है रे ?'

'द्रुहण !'

'तो द्रुहण, सुन ! वहाँ जाकर कहना अपने राजा से—क्या कहते हो तुम उसे, राजा ही न ?' केसर ने 'युद्ध' देहि' के चुनौती-भरे स्वर में कहा।

'सिन्धुनाथ !'

'अच्छा ! उस सन्धनाथ से कह देना कि तैयार रहे। अभी तेरे यहाँ टोटडियों (सोंढ़नियों) की फसल खूब पक रही है न ?'

'बरध (ऊँटों के टुल्लर) की बहुतायत न हो तो कच्छ में छापे कैसे मारे जायें ? सोंढ़नियों की फसल तो बहार पर होनी ही चाहिये।'

'तो सुमरा से कह देना कि पाटन की सेना चढ़ी चली आ रही है।'

'सिन्धुनाथ से कुछ भी छिपा हुआ नहीं है, महाराज ! पाटन की सेना आये तो हमारे यहाँ ढंढा (कीचड़) की कोई कमी नहीं है ! परन्तु अभी तो वह सैन्यदल आडावला की घाटी में फँसा हुआ है; और चौहानराज से त्रस्त पाटन का यह दूत यहाँ सहायता माँगने आया हुआ है, पहले उसकी फिक्र कीजिये। पाटन को पहले उस मुसीबत से बचाइये !'

कार्तिक स्वामी जवाब देने जा ही रहा था कि इस बीच चौकीदार सारंग दौड़ता हुआ आ पहुँचा। वह दौड़ने के कारण हाँफ रहा था। उसका चेहरा पसीने से तर हो गया था। आते ही वह मकवाणा के पाँवों में गिर पड़ा—'महाराज ! मुझे मार डालिये, मुझे मार डालिये !'

'लेकिन हुआ क्या ?'

'व ...ह... व. .ह....कौन . क्या नाम . '

केसर समझ गया। जयदेव के चेहरे का नूर उड़ गया। कार्तिक स्वामी की छाती आशंका से धड़क उठी।

'अबे कौन, प्रताप देवी ?' कार्तिक स्वामी ने उसे नाम याद दिलाया।

'हाँ, महाराज ! वह ..रॉड़....'

'क्या हुआ उसे ?' मकवाणा ने व्यग्र होकर पूछा। सिन्ध के दूत की बात का भावार्थ अब उसकी समझ में आ रहा था।

'रॉड भाग गई।'

'भाग गई ! कब ?' केसर की आवाज फट गई थी, 'अरे, तू वहाँ पहरे पर था न ? जयदेव ने तुझे बताया नहीं था ? क्या जयदेव वहाँ नहीं था ?'

मकवाणा प्रश्न पर प्रश्न करता चला गया।

'महाराज ! सब कुछ था, सभी कुछ था। मैं था, जयदेवजी थे, पहरा भी था, सभी कुछ था !'

'फिर ?'

'महाराज ! उसे वहीं रखा था। दरवाजे पर हम सोये थे। रात में उसकी चौकसी करते रहे थे—बन्दोबस्त पूरा था।'

'फिर ?'

'कुछ भी समझ में नहीं आता, महाराज ! वह कैसे भाग गई, यह कुछ भी समझ में नहीं आता। पूछ देखिये जयदेवजी से ? क्यों जयदेवजी, कुछ समझ में आता है आपके ?'

मगर जयदेव तो चुपचाप खड़ा था—पत्थर की मूरत की तरह। 'हाँ' या 'ना' कुछ भी कहने की उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी।

यह सब देख-सुनकर सिन्धी दूत को मजा आने लगा था। केसरदेव इस बात को तत्काल ताड़ गया। 'होगी यहीं कहीं आस-पास। जयदेव अभी उसके पीछे जायेगा। जयदेव ! पहले तू सुमरा के इस आदमी को विदा कर।'

सुमरा के आदमी ने जाते-जाते कहा—'महाराज ! पाँच सौ घोड़े हाँक लाये, फिर भी सिन्धनाथ ने विशाल हृदयता का परिचय देकर मुझे भेजा, मानो कुछ न हुआ हो, परन्तु अब....'

'विशाल हृदयता का परिचय दिया है हमारे इस रेतीले प्रदेश को देखकर—यहाँ किसी के डके बज नहीं सकते—तू अब अपने जा।'

सुमरा के आदमी को लेकर जयदेव चला गया। केसर कार्तिक स्वामी की ओर मुखातिब होकर बोला—'कार्तिक स्वामी! अब तो एक पल की भी देर नहीं की जा सकती। कैसे भागी, यह तो बाद में मालूम होगा, लेकिन यदि उसे पकड़ पाये तो सिन्ध की सारी जानकारी हमें प्राप्त हो जायेगी। जयदेव के आते ही आप और वह दोनों अलग-अलग दो दिशाओं में जायें। यहाँ का जो भी काम बाकी हो उसे शीघ्र निपटा डालें। क्यों रे सारंग, वह किस ओर गई होगी?'

सारंग को तो यही नहीं सूझ रहा था कि प्रताप देवी गई तो कैसे; उसका यही खयाल था कि वह अभी यहीं होना चाहिये। उसने घबराहट-भरे स्वर में कहा—'महाराज, वह गई नहीं!'

'तो?'

'लगता है कि वह यहीं है।'

केसर को आश्चर्य हुआ। उसने सारंग को होश सँभालने का अवसर दिया।

इस बीच जयदेव सिन्धी दूत को साँढ़नी देकर और विदा करके आ पहुँचा। उसका चेहरा रुई की तरह सफेद हो रहा था। केसर ने उसे देखा।

'क्यों रे, आजकल बेंगन का भुर्ता और भैंस के दूध का दही बहुत खाता है क्या? पड़ा खर्राटे भरता रहा और उसे भाग जाने दिया।

'महाराज!' जयदेव ने कहा, 'हमारे सोते में राँड़ भागी होती तो बुरा न लगता।'

'तो क्या तुम जाग रहे थे?'

'जाग रहे थे, बातें कर रहे थे—और वह चलती बनी।'

यह सुनकर केसर को प्रतापदेवी का पाटन के श्मशानवाला प्रसंग

याद हो आया। प्रताप देवी को पकड़ने का ऋण भी उस पर था। आज हाथ आई बाजी निकल गई थी। उसे लगा कि कहीं नजरबंदी करके तो प्रताप देवी भागी न हो! लेकिन अब तो एक पल की भी देर करने का मतलब था, स्वयं होकर प्रताप देवी को दूर निकल जाने का मौका देना।

'जयदेव! रणबंकी को तैयार करो!' उसने निश्चयात्मक स्वर में कहा।

उसी समय झरोखे में से रानी की मीठी कूक सुनाई दी—'महाराज! यह तो छोटी वस्तु के लिए बड़ी वस्तु गँवाने जैसी बात हुई। आपके लिए तो कल सवेरे-ही-सवेरे भाट चारणों के दल आकर खड़े होंगे। महाराज ने सबको न्योते दे दिये हैं। और सोढ़नियाँ तो अभी सुमरा के यहीं हैं।'

'धत्तेरे की . हाँ, कार्तिक स्वामीजी, तब तो आप और जयदेव ही जाओ .'

'महाराज, रवाना तो आप भी हों। रणबंकी को तैयार करो, जयदेव! महाराज रण-प्रदेश को पार करेंगे।'

'रण-प्रदेश को पार करेंगे! यह तुम कह क्या रही हो, देवी?'

'बात यह है, महाराज, कि आप सबको यहाँ से एक साथ ही रवाना होना चाहिये। सुमरा का दूत अभी यहीं है। वह आपके पहले पहुँचकर वहाँ समाचार देगा, कि महाराज भी चोर पकड़ने के लिए गये हैं। लेकिन वास्तव में चोर पकड़ने के लिए जायेंगे ये दोनों आदमी और महाराज रण-प्रदेश पारकर पहुँचेंगे सुमरा के यहाँ। वहाँ सभी आदमी निश्चिन्त सोये पडे होंगे। और मैंने वे दो-एक चीजें तैयार करा रखी हैं, जिन्हें आपको अपने साथ ले जाना है।'

'अरे, हाँ, यही ठीक होगा। जयदेव, तू तैयारी कर और कार्तिक स्वामी '

'महाराज! साथ कौन जायेगा? और कितने आदमियों को तैयार करना होगा?'

'अरे, पगले! मैं और मेरी रणबंकी दोनों काफी है। साथ में और

किसी की क्या जरूरत ? कोई भारी किला तो तोड़ना नहीं है !'

केसर की निडरता और अडिग विश्वास का कार्तिक स्वामी पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसने अनुभव किया कि ऐसे वीरवर महाराज भीमदेव के पास हों तभी महाराज की शोभा बढ़ सकती है।

'कार्तिक स्वामी, आप ?'

'मैं तो तैयार ही हूँ, महाराज ! केवल महारानीजी का एक सन्देश रानीजी को देना है—बस. इतनी ही देर समझिये—उसके बाद मैं भी तैयार हूँ !'

'हाँ-हाँ, चलिये, जल्दी दे दीजिये। जयदेव ! मेरी रणबंकी ?'

'दासियो, बाँदियो ! कहाँ गई हो री ?' झरोखे में से रानी का स्वर सुनाई दिया—'महाराज के शुभ शकुन के लिए कुंकुम लाओ, केशर लाओ और मंगलशिवजी को बुलाओ।'

कार्तिक स्वामी रानी जयवती के पास जाकर खड़ा हो गया।

केवल क्षात्र-धर्म को जाननेवाली, उसी का वरण करनेवाली उस नारी के आगे बात कहने से पहले कार्तिक स्वामी जरा-सा काँपा। फिर धीमे से प्रणाम करके बोला—'रानीजी, मैं जिस काम के लिए आया था, और जिस काम को पूरा किये बगैर जाना मुश्किल है, वह काम आपसे होना है।'

'मुझसे होना है ? ऐसा क्या काम है ?'

कार्तिक स्वामी ने बात को बढ़ाने के हेतु से विषयान्तर किया—'युद्ध में महाराज की बाजू में शोभा प्राप्त करने के लिए मन्त्रीश्वर ने मकवाणाजी को याद किया है।'

'मकवाणाजी वहाँ जरूर जायेंगे, सुभटवर ! लेकिन यहाँ का काम निपटाने के बाद ही।'

'महारानीजी ने भी एक बात कहलाई है।'

'किसने, बहिन ने ? उदयमती ने ?'

५. दुराहा

कीर्तिगढ़ से निकलकर थोड़ी दूर पहुँचने के बाद केसरदेव ने कार्तिक स्वामी को उनका मार्ग बतलाते हुए कहा—'सुभटवर, यहाँ से मैं अपनी राह जाऊँगा। और तो कुछ कहना नहीं है आपको ? महाराज के चरणों में हमारा प्रणाम निवेदन कर उनसे कहियेगा कि मकवाणा जल्दी ही पहुँच रहा है।'

'जी, मुझे तो मन्त्रीश्वर का यही सन्देश पहुँचाना था कि आडावला का युद्ध मकवाणाजी की उपस्थिति के बिना शोभास्पद नहीं हो सकता, सो वह मैंने महाराज को दे दिया। यहाँ का काम शीघ्राति-शीघ्र निपटाकर आप उधर पहुँच जाइयेगा। और तो क्या कहूँ।'

'इस सन्देश को तो हृदयस्थ कर लिया है। और जयदेव, तू ? कब तक लौट आयेगा तू ?'

'प्रताप देवी के पकड़े जाते ही।'

'देखो; तुम दोनों को निरुत्साहित तो नहीं करना चाहता: परन्तु प्रताप देवी के पकड़े जाने या हाथ आने की आशा त्यागकर ही आगे बढ़ना।'

'ऐसा क्यों कह रहे हैं, महाराज ?'

'मैं उसे पहचानता हूँ जयदेव ! तू ही बता, पता है तुझे कि वह कैसे भागी ?'

'एक बात इस समय याद पड़ रही है महाराज ! सारी रात धर्मशाला में न तो कोई आया और न धर्मशाला के अन्दर से ही कोई बाहर गया।

सारंग और मैं दोनो जागते रहे। केवल बड़ी रात गये तक धर्मशाला का सदर फाटक खुला था—अबेर में कहीं कोई थका-माँदा मुसाफिर आ न जाये इसलिए! इस बीच अन्दर से केवल एक कुत्ता बाहर की ओर भागकर गया—सारंग ने उस पर लकड़ी भी फेंक मारी थी और वह 'स्यॉव-स्यॉव' करता भाग गया था। इसके सिवा और तो कुछ हुआ नहीं—तो आखिर प्रताप देवी भागी कैसे?'

'इसी लिए तो कह रहा हूँ कि यदि तू उसे पकड़ पाये तो तुझी को वेरा* का पद दे देंगे।

'मैं उसके पीछे लगा ही हूँ। अब देखना चाहिये कि कौन जीतता है?'

'तो सुन, यदि आडावला तक जाना पडे तो वहाँ भी जाना और उसे पकडकर मन्त्रीश्वर के सिपुर्द करके तब लौटना। ठीक है न कार्तिकजी!'

मकवाणा ने हाथ लम्बा किया। दोनों आदमियों ने उसे प्रणाम किया। रणवंकी दौड़ चली।

जयदेव और कार्तिक स्वामी उसे जाते हुए देखते रहे। पल-भर में तो वह क्षितिज पर एक बिन्दु-मात्र रह गई।

'जब तक महाराज के पास यह रणवंकी है, महाराज अजेय हैं, सुभट-चर! अभी दो घड़ी में ही सुमरा के देश पहुँचा देगी।'

प्रताप देवी कहीं दिखाई पडे तो उसे देखने के लिए दोनों आदमियों ने चारों ओर दृष्टिपात किया।

दूर, दूर, दृष्टि की सीमा तक, बालू-ही-बालू दिखाई पड़ती थी। कोई वृक्ष, पशु, पक्षी या मनुष्य कुछ भी दिखाई न देता था।

चारों ओर सतर्कता से देखते हुए वे आगे बढ़ चले। इसी तरह चलते-

*लाखा फूलाणी का अत्यन्त कुशल गुप्तचर, जो मूलराज सोलंकी के जमाने में हुआ।

चलाते वे थारा पद्र तक पहुँच गये। लेकिन अभी तक कोई पता न चल पाया था।

थारा पद्र की सीमा पर एक वट वृक्ष के नीचे घड़ी-भर सुस्ताने का उनका मन हो आया। भूख भी कडाके की लग आई थी। सारी रात का जागरण था। उनकी साँढ़नियाँ भी थक गई थीं। वहाँ खड़े एक रबारी (घुमन्तू पशु-पालक) से पूछा; परन्तु किसी साँढ़िये के उस ओर निकलकर जाने की बात मालूम न हुई।

दोनों को विश्वास हो गया कि प्रताप देवी ने अपने पीछे जरा-सी भी निशानी नहीं छोड़ी है।

बरगद की घनी छाया और पानी का सहारा देखकर उन्होंने वहाँ पेट को दो कौर चन्दी-चारा पहुँचाने का विचार किया। ज्यादा समय लगाते तो प्रताप देवी का पता लगाना मुश्किल हो जाता। इसलिए इस समय नहा-धोकर और खा-पीकर तत्काल आगे बढ़ जाने का उनका निश्चय था।

कार्तिक स्वामी ने रसोई की तैयारी की। जयदेव ईंधन के लिए लकड़ियाँ बटोर लाने गया। उसी समय इस काम को निपटाकर हो सके तो आज का पूरा दिन प्रताप देवी को पकड़ने के लिए जी-तोड़ मेहनत करने का उन्होंने निश्चय कर लिया था।

जयदेव को, जहाँ वह लकड़ियाँ बटोर रहा था, किसी साँढ़नी के पाँवों के चिन्ह दिखाई दिये। वह लकड़ियाँ बटोरते-बटोरते वहीं रुक गया।

'क्यों जयदेवजी, किसी का पड़ा मोती मिल गया है क्या ? यों रुक क्यों गये ?'

'सुभटराज ! जरा आकर देखिये तो सही—साँढ़नी को किसी ने यहाँ से दूसरे रास्ते पर मोड़ा है।'

'तब तो वही. .'

कार्तिक स्वामी भी वहाँ पहुँच गया। उसने उस जगह साँढ़नी के

पाँव के साथ घोड़े की टापों के निशान भी देखे। वह बड़ी बारीकी से देखने लगा। लेकिन उसकी समझ में कुछ न आया।

'जयदेवजी! अकेली साँढ़नी नहीं, साथ मे कोई घुड़सवार भी है; और दो-एक गधे भी मालूम पड़ते हैं। देखिये...' उसने चारों ओर के पद-चिन्हों का अन्तर समझाते हुए कहा।

'कौन होगा ?'

'क्या कहा जा सकता है ? कुछ समझ में नहीं आता। परन्तु यह क्या, खोद (जानवरों के पाँव के निशान) तो दोनों दिशाओं में जा रहे हैं।'

'हो सकता है कि प्रताप देवी यहाँ तक आई हो और यहाँ से किसी के साथ गई हो।'

'हाँ, ऐसा हो तो सकता है।'

'तो हमें कौन-सी दिशा पकड़नी चाहिये ?' कुछ देर दोनों विचार मग्न खड़े रहे। अन्त में यह तय पाया गया कि साँढ़नी के खोदवाली दिशा में जयदेव जाये और जिधर घोडे, गधे और आदमी गये थे उधर कार्तिक स्वामी।

इसके बाद उन्होंने रसोई बनाना प्रारम्भ किया। इस बीच साँढ़नियों को खुला चरने के लिए छोड़ दिया गया। थोड़ी ही देर में दोनों आदमी तैयार हो गये। रवाना होने से पहले एक बार पुनः जहाँ खोद पडे थे देखने गये।

'जयदेवजी, यहाँ तक वह आई है, इसमे तो कोई सन्देह ही नहीं....'

'क्यों, किस आधार पर आप ऐसा कहते हैं ?'

'देखिये, यह ...' कार्तिक स्वामी ने नारी का एक छोटा-सा सुन्दर पद-चिन्ह दिखलाया—'इसे देखा आपने ?'

जयदेव ने देखकर कहा, 'जी हाँ, मालूम तो वही होती है। यहाँ तक आने के बाद मानो उसने रास्ता बदला है या फिर किसी के संग हो ली है। कुछ और पद-चिन्ह भी इसी दिशा की ओर जाते हुए दिखाई

चल
पड़ रहे हैं, देखिये।'

दोनों आदमियों ने पुनः ध्यान से देखा। कुछेक स्त्री और पुरुष दोनों के पद-चिन्ह दिखाई दे रहे थे।

'आप तो चलिये सॉदनी के खोद की दिशा में—भिन्नमाल के रास्ते और मैं पकड़ता हूँ यह दूसरा मार्ग। हम दोनों आदमी चक्कर लगाकर वहाँ मिलेंगे, चन्द्रावती के पथ पर।'

'जी हाँ, यही ठीक है। बहुत करके तो इस बीच पता लग ही जायेगा। आप कुछ दूर चलकर अर्बुद-गिरि के रास्ते पर मुड़ जाइये। मैं पर्णाशा (पनास नदी) नदी का किनारा काटकर अम्बा भवानी के समीप से चन्द्रावती की ओर घूमूँगा, यद्यपि मुझे आशा नहीं है।'

'क्यों, आशा क्यों नहीं है ? कार्तिकजी, आपके ऐसा कहने का कारण क्या है ?'

'धंधूकराज के साथ युद्ध छिड़ा हो तो हम दोनों में से एक भी चन्द्रावती पहुँच नहीं सकता।'

'क्यों ?'

'रास्ते में जगह-जगह चौकियाँ पड़ी होंगी और हम लोग रोके जायेंगे। लेकिन अब तो जो भी जहाँ पहुँच जाये। इतना तो निश्चित ही है कि प्रताप देवी कोई भी रास्ता क्यों न ले, वह जायेगी चित्रकोट ही। इसलिए रास्ते तो केवल ये दो ही है। या तो आडावला पारकर किसी दर्रे की राह मेहपाट की ओर मुड़कर मरुभूमि की ओर गई होगी या अम्बाभवानी पहुँचकर चन्दावती ने रास्ते।

६. स्याना शिष्य स्थट्ट

कार्तिक स्वामी अग्रसर होता पर्णाशा नदी पारकर पूर्व की ओर मुड गया।

उसका इरादा अब जल्दी-से-जल्दी चन्द्रावती पहुँच जाने का था।

दामोदर ने उससे कई बार कहा था कि कुछ आदमी तो केवल उतना ही करते हैं जितना उनसे कहा जाता है· कुछ आदमी जो कुछ कहा जाता है उससे ठीक उलटा करते हैं; जिनमें शक्ति होती है केवल वही कहे काम के उपरान्त भी कुछ कर दिखलाते है और सभी को ऐसे लोगों की बात कान पकड़कर स्वीकार करनी पड़ती है। मन्त्रीश्वर का एक और भी प्रिय सिद्धान्त था और वह यह की युद्ध अधिक आदमियों द्वारा नहीं, थोड़े आदमियों द्वारा जीता जाता है। इस समय वह (मन्त्रीश्वर) वटेश्वर की ओर होंगे। परन्तु उनके साथ अधिक सेना नहीं थी।

दामोदर युद्ध के बिना ही विजय प्राप्त करना चाहते थे। उन्होंने कार्तिक स्वामी से कहा भी था—'यदि शत्रु की पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त कर लो तो तुम्हे लड़ाई जीतना ही रह जायेगी, लड़ना न पड़ेगा।' दामो५र के ये शब्द अभी तक उसके कानों में गूँज रहे थे। इसी लिए सबसे पहले चन्द्रावती के समाचार प्राप्त करने के उद्देश्य से कर्तिक स्वामी उस ओर चला जा रहा था।

वह यह भी जानता था कि प्रताप·देवी इस समय सेनापति सादा की सेना की ही ओर जा रही होगी।

लेकिन इसका अनुमान लगाना कठिन था कि वह किस रास्ते से जा

रही होगी। फिर उसका पीछा करने में समय गँवाना भी उचित नहीं प्रतीत हो रहा था। जयदेव तो प्रताप देवी के पीछे लगा ही था और यदि वह उसे पकड़ पाये तो क्या कहने! मन को इस तरह समझा-बुझाकर वह दूसरे महत्वपूर्ण काम की ओर अग्रसर हुआ।

चन्द्रावती के समाचार जल्दी-से-जल्दी दामोदर को पहुँचाने की आवश्यकता वह बड़ी तीव्रता से अनुभव करने लगा था।

जैसे जैसे वह आगे बढ़ता गया, सोलंकी सेना के विजय संवाद उसे प्राप्त होते गये। जगह-जगह लोग-बाग यही बातें कर रहे थे। कुछ अधिक आगे बढ़ा तो वातावरण परस्पर विरोधी समाचारों से संकुल हो रहा था। कुछ लोग कह रहे थे कि धंधूकराज भाग गया। किसी ने कहा कि वह विन्ध्या के रास्ते पर सेना का जमाव कर रहा है। एक उड़ती खबर यह भी थी कि वह चन्द्रावती में गिरफ्तार हो गया। कहीं-कहीं यह भी चर्चा थी कि विमल दंडनायक की सेना अपर्याप्त है, इसलिए महाराज भीमदेव स्वयं सेना लेकर चले आ रहे हैं। कुछ लोगों की राय में यह धंधूकराज की वीरता थी कि वह भागकर विजय प्राप्त कर सके। कितने ही उनके इस कृत्य को परमार वंश के लिए लज्जा और अपमान का कारण समझ रहे थे। सच क्या था और वास्तविकता क्या थी, इस बात का पता लगाना मुश्किल हो रहा था। सब समाचारों की छान-बीन कर कार्तिक स्वामी ने यह निष्कर्ष निकाला कि यदि प्रताप देवी को ये समाचार मिले हों तो वह सोलंकियों के विजय-प्रदेश मे आने के बदले, खेड़ब्रह्मा के रास्ते से वागड़ मे होते हुए मेदपाट पहुँच जायेगी। उसके विचारानुसार प्रताप देवी के इस प्रदेश में होने की कोई संभावना नहीं थी।

अब तो उसे इस बात की जल्दी लग रही थी कि धंधूकराज के बारे में वास्तविक जानकारी प्राप्त कर शीघ्राति-शीघ्र आडावला मे स्थित मंत्रीश्वर दामोदर को संवाद पहुँचा दे। यदि ऐसा कर सका तो मंत्रीश्वर की

योजना की शृंखला में वह भी एक महत्पूर्ण कड़ी बन जायेगा।

चन्द्रावती की ओर जानेवाला राज-मार्ग पकड़ने के लिए वह अम्बा-भवानी की पहाड़ियों की तलहटी में पहुँच गया था।

शाम हो गई थी। रास्ता कई सुन्दर पहाड़ियों के बीच होकर जाता था। लेकिन इस समय उस रास्ते पर आगे बढ़ना संकट भरा था। साथ ही अपनी साँढ़नी के बदले यदि कोई बढ़िया घोड़ा मिल सके तो उसकी छान-बीन भी यहीं पर कर लेनी थी।

मन्दिरों का नाम पूछता और पता लगाता हुआ वह पुराने समय के अपने एक साधु मित्र से मिलने के लिए चल पड़ा।

उसका वह मित्र शैव मार्ग की पाशुपत शाखा का अनुयायी था। वह साधु मंत्र-तंत्र का ज्ञाता, ज्योतिष विद्या-विशारद और शास्त्रज्ञ माना जाता था। कार्तिक स्वामी ने तो यहाँ तक सुन रखा था कि उसी के बताये हुए मुहूर्त में धंधूकराज हाथी पर सवार भी होता है।

ढूँढ़ते-खोजते अन्त में उसे वह मठ मिल ही गया। अपनी साँढ़नी के एक पाँव में फन्दा लगाकर वह मठ के दरवाजे पर पहुँचा।

'मठाधीश रुद्रराशिजी हैं?' उसने एक साधु से पूछा।

साधु ने कोई उत्तर नहीं दिया। सिर्फ अस्वीकृति-सूचक सिर हिला दिया।

कार्तिक स्वामी ने मठ के अन्दर-प्रवेश किया। वहाँ शंकर मन्दिर के समीप दो-चार शिष्यों को बैठे पंचाक्षरी मंत्र जपते हुए उसने देखा।

कार्तिक स्वामी ने मन्दिर की सीढ़ियाँ चढ़कर देवाधिदेव की भक्ति-पूर्वक वन्दना की। फिर एक खम्भे की ओट में इस तरह बैठ गया कि उसे कोई देख न सके, और स्वयं भी मंत्रोच्चार करने लगा।

पंचाक्षरी की धुन समाप्त होने पर एक शिष्य ने कहा—'स्थट्टजी! गुरुजी ने जाते समय हमसे कहा था कि इस स्थट्ट की देख-भाल करते रहना; बकवास करने की इसकी बड़ी बुरी आदत है।'

कार्तिक स्वामी समझ गया कि रुद्रराशि कहीं बाहर गया हुआ है। उजागर तो उसने शिष्यों के वार्तालाप के प्रति उपेक्षा प्रदर्शित की, लेकिन जानकारी प्राप्त करने के लिए वह कान लगाकर रसपूर्वक उनकी बातें सुनने लगा। बातूनी आदमियों को वह सदैव अपना परम मित्र समझता था।

'और जानते हो, मुझसे गुरुजी ने क्या कहा है?' स्थट्ट ने कहा।

'तुम्हीं बता दो, तुम ठहरे पट्टशिष्य, तुमसे न कहेंगे, तो भला किस से कहेंगे?'

'मुझसे कहा है कि तू इन सबकी देख-भाल करना। ये सब निरे पोथी के पंडित—पठित मूर्ख हैं। जहाँ बोलने की आवश्यकता हो वहाँ चुप रहते हैं और चुप रहने की जगह बकने लगते हैं।'

'यानी गुरुजी ने हमसे जो कुछ कहा वह गलत था, यही न?'

'नहीं, मैं यह कब कह रहा हूँ! वह भी सच और यह भी सच।'

'अच्छा बाबा, जो तुम्हे उचित लगे करना—केवल भाँग के लोटे दो-एक कम चढ़ाना'

स्थट्ट आँखें तरेरकर बोला—'देखो शिष्यो! भाँग को पचाना किसी ऐरे गैरे के बूते की बात नहीं है। भाँग के एक छोड़ दस कमण्डल चढ़ा जाओ, उसे पचाने की सामर्थ्य होनी चाहिये। कुछ लोग हैं, जो भाँग पीकर ऊलजलूल बकते हैं और कुछ हैं जो भाँग पीकर जगदम्बा के दर्शन करते हैं।'

स्थट्ट की यह बात सुनकर सभी शिष्य हँस पडे—'तभी तो उस दिन, वह उज्जैन की वारागना आई थी, उसे देखकर श्रीमान् को भगवान चन्द्रमौलीश्वर की चन्द्रिका याद आ गई थी!'

'ऐ रुद्रदत्त! तू अभी इस मार्ग की धूल को भी नहीं पहुँच पाया है, बकवाद न कर। शुद्धोच्चार तो आता नहीं, चले हैं मुँह मारने।'

'मेरा उच्चारण भले ही अशुद्ध हो, लेकिन आचरण तो. '

'यह तो पामरता की हद हो गई। रुद्रदत्त! भगवान नीलकंठ के

शिष्य को किसी भी प्रकार के आचरण का व्याघात नहीं हुआ करता, समझे ! तुम बेचारे इस पन्थ का तिनका भी नहीं पा सके, इसी लिए भोग के मर्म को समझ नहीं पाये ।'

स्थट्ट की यह गर्वोक्ति किसी भी शिष्य को अच्छी न लगी। उनमें से कोई कुछ न बोला। एक-एक कर सभी उठे और अपनी राह चलते हुए।

सब चले गये और वहाँ स्थट्ट अकेला रह गया तो कार्तिक स्वामी अपनी जगह से उठकर उसके समीप पहुँचा और दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

'स्थट्टजी नाम के पट्टशिष्य कौन हैं ? मुझे उनसे मिलना है !' कार्तिक स्वामी ने कहा।

भावी मठाधीश के लिए अपने नाम का उपयोग किये जाते देख स्थट्ट को परम सन्तोष हुआ। उसने गर्व से माथा उठाकर अपने चारो ओर देखा, लेकिन, हन्त, मंडप के निर्जीव खम्भों के सिवा उसके उस सम्मान का वहाँ कोई और साक्षी नहीं था !

'कहिये, कहाँ से पधारना हुआ ? आपको मेरे नाम का पता कैसे चला ?'

कार्तिक ने जवाब दिया—'आपके नाम का उल्लेख मठाधीश रुद्र-राशि से अनेक बार सुना है। एक जमाना था, जब वह और मैं दोनों साथ-साथ नर्मदा के तट पर रहते थे।'

'कहाँ ?'

'भेड़ाघाट के समीप चौंसठ जोगिनी के मन्दिर में।'

'अच्छा ! अरे, तब तो आप. .'

'हम दोनों बड़े पुराने धर्म-भाई हैं। मैं उन्हे और वह मुझे पहचानते है। इधर जा रहा था नारायण सरोवर की ओर—कच्छ प्रदेश मे। सोचा, बहुत दिनों से मिला नहीं हूँ, तो चलो, मिलता चलूँ।'

'आइये, पधारिये, विराजिये—मठाधीश तो वटेश्वर गये हैं।'

स्थट्ट और कार्तिक स्वामी वहाँ से चलकर मन्दिर के पीछे के हिस्से में एक साफ-सुथरे चौक में आकर बैठे। स्थट्ट का हृदय इस विचार से अभिभूत हो रहा था कि वह अपने गुरु का पट्टशिष्य है, इसलिए आगन्तुक का आदर-सत्कारकर उसे उसके मन को जीतना चाहिये।

'यहाँ कुछ निरे बछिया के ताऊ, नौसीखिये शिष्य ही हैं।'

'जी हाँ, वह तो मैं देखते ही समझ गया था। मैंने कइयों से पूछा, लेकिन किसी ने ठिकाने का जवाब नहीं दिया, सामान्य शिष्टाचार तक नहीं जानते। मन्दिर की मर्यादा के अनुकूल सत्कार-व्यवहार अकेले आपमें पाया।'

'उन बेचारों का भी कोई दोष नहीं। समय ही ऐसा आ लगा है। लेकिन समयानुकूल आचरण-व्यवहार का ज्ञान तो होना ही चाहिये। कहिये, रसोई-पानी का प्रबन्ध करेंगे?'

'जी नहीं, मैं तो एक ही बार आहार करता हूँ। नारायण सरोवर में स्नान करने के पश्चात् ही दूसरी बार भोजन किया जाये, ऐसा व्रत लेकर घर से चला हूँ। यह स्थान तो बड़ा ही रमणीक है।'

'माँ जगदम्बा की छत्र-छाया है।'

'देश पर विपत्ति न होती, तो मन चाहता है कि यहीं आकर रहूँ। मठाधीश कब तक लौटेंगे?'

'निश्चयपूर्वक कुछ कहा नहीं जा सकता। आपद-विपद तो लगी ही रहती है। देशकाल भी चलता ही रहता है। मा ने एक करवट बदली और बड़े-बड़े विजेताओं का नामोनिशान मिट जाता है।'

'हाँ जी, यह तो है ही—परन्तु माताजी ने अपने लिए स्थान बढ़िया चुना है।'

'बढ़िया, अजी साहब, अधम से अधम का यहाँ आते ही उद्धार हो जाता है। तीन दिन पहले एक आई थी!'

कार्तिक स्वामी ने सोचा, 'आई थी' कह रहा है। कौन होगी? कहीं

प्रताप देवी तो नहीं थी ?' परन्तु अपने कुतूहल का शमन करते हुए उसने प्रकटतः कहा, 'यहाँ आकर भी अधम का उद्धार नहीं होगा तो भला और कहाँ होगा ?'

'वह थी मालवा की रहनेवाली। अम्बा भवानी के लिए मिट्टी के दीये लेकर जो कुम्हार परिवार आया था उसी के साथ आई थी। परन्तु यहाँ तो उड़ती चिड़िया पहचानते हैं। वारांगना और सो भी उज्जयिनी की वारांगना कहीं यारों से छिपी रह सकती है!'

'अरे साहब, देखनेवाले तो आँख के एक इशारे में ही पहचान जाते हैं।'

'हाँ, सो तो है ही।'

तभी एक साधु भाँग के दो लोटे लेकर आ पहुँचा।

'शाबाश ले आया न! लीजिये, भोले जोगन्दर बाबा की प्रसादी पाइये।' स्थट्ट ने एक ही साँस में एक पूरा लोटा खाली कर दिया। कार्तिक स्वामी को भी उसने एक लोटा दिया।

कार्तिक स्वामी ने प्रसादी के तौर पर जरा-सी भाँग पी ली। शेष स्थट्ट के लिए छोड़ते हुए बोला—'मुझे चढ़ती बहुत है!'

'यह भगवान् भूतभावन का चरणामृत—उसकी लीला को समझने-वाले के लिए अमृत—हरि ओ३म्—' स्थट्ट ने दूसरा लोटा भी खाली कर दिया। इतने में तो एक दूसरा साधु दो लोटे और ले आया। 'बम् भोला—' स्थट्ट ने तीसरा लोटा भी खाली किया। थोड़ी देर में पहाड़ियों पर चाँदनी खिल आई। उन्होंने वहीं अपने बिस्तर लगाये। स्थट्ट की भाँग भी जम चली थी। नशा पूरी बहार पर आ रहा था। पिछले वार्त्ता-लाप के शब्दों का सिलसिला जोड़ते हुए वह बहकने लगा।

'मैंने तो कह ही दिया कि तू भले ही वारांगना हो, परन्तु देवी के चरणों में वन्दना करने से पहले उसके भक्त के पास जाकर देह शुद्धि करानी होगी। हा-हा-हा! कहिये ? कैसा बढ़िया ज्ञान सुझाया ?'

'ज्ञान उसे सूझा भी गुरुजी ?'

'सूझता क्यों नहीं ? सीधी चली आई सन्तों की शरण में। और धंधूकराज—हे हे पहचानते हो न उन्हें ?'

अब तो स्थट्ट बेसिर-पैर की बकवाद करने लगा था।

'धंधूकराज के बारे में क्या है, स्थट्टजी ?'

'तू गुप्तचर है—तू गुप्तचर है—तू गुप्तचर है। तुझे जानकारी प्राप्त करनी है तो जा .जा ..कर ...ही ले....उस मन्दिर के पीछेवाली गुफा मे धंधूकराज छिपे हुए है। जा भगत, जा, वहाँ है, जा—गुरुजी का रास्ता देख रहे हैं, जा—'

स्थट्ट थोड़ी देर चुपचाप बैठा रहा। फिर उच्च स्वर मे खिल-खिलाकर हँस पड़ा—'वारागना ! ऍ ! वारागना ! मैंने भी ससुरी को कैसा ज्ञान सुझाया, हैं ?'

थोड़ी देर चुपचाप पड़े रहने के बाद स्थट्ट उठकर नाचने लगा। उसे नाचता हुआ छोड़ कार्तिक स्वामी उसकी कही हुई बात की थाह पाने के लिए उठ खड़ा हुआ। वह धीमे-धीमे स्थट्ट की बताई हुई दिशा की ओर चलने लगा। उसे अत्यधिक आश्चर्य हुआ। स्थट्ट की बहक निरी बहक नहीं थी, उसमे सच्चाई का अंश भी था। जिस ओर वह जा रहा था उधर मन्दिरों के सिलसिले के बाद एक विशाल चौक था, जो चारों ओर छोटी-बड़ी पहाड़ियों से घिरा होने के कारण, दिखाई नहीं पड़ता था।

उस चौक में पहुँचकर कार्तिक स्वामी छिपकर एक वृक्ष के तने की ओट में खड़ा हो गया और चारों ओर देखने लगा। बिलकुल सन्नाटा था, उसे कोई आता-जाता दिखाई न दिया।

वह निःशब्द पेड़ पर चढ़ गया।

कई छोटी-बड़ी पहाड़ियों से रक्षित उस चौक का गुप्त स्थान के रूप में प्रयोग किया जा सकता था। मैदान के सिरे पर एक पहाड़ी के ठीक

नीचे एक छोटे-से मन्दिर जैसा कुछ दिखाई दे रहा था।

कार्तिक स्वामी को भी अब सन्देह होने लगा कि धंधूकराज कहीं यहीं न हो। उसे स्थट्ट के शब्द रह-रहकर याद आने लगे।

थोड़ी देर बाद उसने पहाड़ी के पार्श्ववाली पगडंडी पर किसी घुड़सवार को आते हुए देखा। एक आदमी उसे रास्ता दिखलाता आगे-आगे चला आ रहा था। 'कहाँ हैं? महाराज कहाँ है?' घुड़सवार ने मैदान में आते ही घोड़े पर से उतरते हुए जल्दी-जल्दी पूछा।

प्रत्युत्तर में उसके मार्ग-दर्शक ने पहाड़ी के पाँवों में बने हुए उस छोटे-से मन्दिर की ओर इशारा किया। कार्तिक स्वामी को अपना सन्देह सच होता हुआ प्रतीत हुआ।

'कुछ कहा है?'

'जी, यही कि पूर्णपाल पहुँचते ही तत्काल यहाँ चला आये।'

अपने घोडे को खुला छोड़ उस आदमी द्वारा बतलाये हुए मन्दिर की ओर घुड़सवार चल पड़ा। मार्ग-दर्शक वापस लौट गया। उसके लौटते ही कार्तिक स्वामी वृक्ष पर से धीरे-धीरे उतरने लगा।

७. पिता और पुत्र

कार्तिक स्वामी टक लगाये उस ओर देखता रहा, जिस ओर घुड़सवार चला जा रहा था। जैसे ही वह अदृश्य हुआ कार्तिक शीघ्रतापूर्वक अपनी जगह से आगे बढ़ा और उसके पीछे हो लिया। पहाड़ियों की परछाइयों के कारण वहाँ अँधेरा हो रहा था। अनगिनत वृक्षों से आच्छादित उस विशाल चौक में कौन कहाँ जाता है, इसकी छान-बीन करने की जैसे किसी को जरा भी परवाह न थी।

कार्तिक स्वामी सावधानीपूर्वक धीरे-धीरे चलता हुआ भवानी माता के मन्दिर के पिछाये में आ खड़ा हुआ। जहाँ वह खड़ा था वहाँ से नीचे की ओर जाती हुई कुछ सीढ़ियाँ उसे दिखाई दीं। वह आगे बढ़कर चुपचाप सीढ़ियाँ उतरने लगा। आगे चलकर सीढ़ियों ने दिशा बदली, परन्तु वे निरन्तर नीचे की ओर, पृथ्वी के अन्दर चली गई। वह ठिठक गया और कान लगाकर सुनने लगा—कोई उसके पीछे लगा तो नहीं चला आ रहा है ? नहीं, पीछे कोई नहीं आ रहा था, परन्तु ठेठ नीचे से आता हुआ स्वर सुनाई पड़ रहा था।

अब वह शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ा। बीच मे एक छोटा-सा चौक मिला। वहाँ से चारों दिशाओं को रास्ता जाता था। कार्तिक स्वामी एक रास्ते पर आगे की ओर बढा। थोड़ा आगे जाने पर कहीं से प्रकाश आता हुआ दिखाई दिया। वह चुपके से एक विशाल उत्कीर्ण स्तंभ की ओट में दुबक गया।

प्रकाश नीचे की ओर से आ रहा था, परन्तु कोई आता हुआ

दिखाई नहीं दिया। नीचे के हिस्से में रखे हुए दीये की ज्योति से वह प्रकाश फैल रहा था। कार्तिक स्वामी पुनः सतर्कता से आगे बढ़ा। रास्ता पहाडी के पार्श्व भाग मे होकर जाता था। स्थान-स्थान पर आदमी समा सके इतने बडे-बड़े आले पहाड़ी के पार्श्व को काटकर निकाले गये थे।

यहाँ तक चले आने पर स्वर अधिक स्पष्ट सुनाई पड़ने लगा था। उसकी परछाई को कोई देख न ले इस तरह वह अन्धकार मे एक खम्भे से दूसरे खम्भे की ओट लेता हुआ जा रहा था। जैसे-जैसे आगे बढ़ता गया आवाज और अर्थ दोनों ही अधिक स्पष्ट होते गये। वह वहीं ठिठककर खड़ा रह गया। ऊपर की पहाड़ी गुम्बद की तरह लग रही थी। एक चट्टान को काटकर बनाया हुआ सुविशाल स्तम्भ बीचोबीच खड़ा था। उसने उसी का सहारा लिया। जो स्थान ऊपर से छोटा-सा मन्दिर दिखाई देता था नीचे आने पर वही समूचे पहाड़ को उत्कीर्णकर अनेकों खम्भों पर टिका हुआ विशाल मंडप लग रहा था। जिस विशाल स्तम्भ की ओट में कार्तिक इस समय खड़ा था वहाँ से वह सभी को देख सकता था; परन्तु वह स्वयं किसी के द्वारा देखा नहीं जा सकता था; और बाहर से आनेवाले को भी वही पहले देखता और स्वयं भी पहले ही बाहर निकल सकता था। स्तम्भ की यह स्थिति और अपनी मोर्चा-बन्दी उसे बहुत अच्छी लगी। आगे बढ़ने के बजाय वह वहीं खड़ा हो गया और टोह लेने लगा।

मिट्टी के सकोरे में जल रहे दीये के मन्द आलोक में कुछ चिन्तित अवस्था मे बैठे हुए दो व्यक्ति उसे दीखे। उनमें से एक अधेड़ उम्र का, सशक्त और तेजस्वी पुरुष था। चिन्ता की गहरी रेखा तो थी, परन्तु उसमें से रास्ता निकालने की अनन्त आशा और श्रद्धा से भरा, कमर सीधी किये वह दांव-दाव से बैठा हुआ था। उसके चेहरे पर 'मर मिटेंगे' की वीरतापूर्ण ज्योति के बदले 'मार्ग अनेक हैं—दूसरा मार्ग लेंगे' की

चेतावनी देनेवाली आशा व्याप्त हो रही थी। चेहरे-मुहरे से वह कुछ हठी और झुकने से इनकार करनेवाला लगता था; परन्तु साथ ही समय और संयोग को देखकर पीठ देनेवाला व्यवहारकुशल और अनुभवी राजा भी यह होगा, ऐसा प्रतीत होता था। किंचित् सँकरी और छोटी आँखें और नाक तथा ओठ की बनावट उसके अस्थिर चित्त होने की सूचक होते हुए भी वह इस समय शान्त बैठा था। उसके ठीक सामने एक युवक खड़ा था। अभी आनेवाला व्यक्ति यही है तब तो निश्चयेन यही युवराज पूर्णपाल है, और सामने बैठा व्यक्ति धंधूकराज होना चाहिये। परन्तु दोनों मे अवस्था के अन्तर के अतिरिक्त स्वभाव का अन्तर भी दोनो की मुखमुद्रा मे स्पष्टतः परिलक्षित हो रहा था। देखनेवाले को यही अन्तर सबसे पहले एकदम दृष्टिगोचर होता था। कार्तिक टक लगाये देखता रहा।

युवक अत्यधिक तेजस्वी, आकर्षक और विद्युत् की रेखा की भाँति था। उसकी गरुड-जैसी उत्तुंग नासिका, पतले और लम्बे, निश्चय की दृढ़ता लिये हुए आग्रहपूर्ण ओठ और सुन्दर, विशाल, तेजोपूर्ण, कृष्ण-वर्ण पानीदार आँखें—उसके स्वभाव की विशिष्टता को और भी उजागर कर रही थीं। उसके हाथ लम्बे थे और एक लम्बी तलवार उसकी कमर से लटक रही थी। ये दोनों वस्तुएँ भी ऐसी लग रही थीं मानो उसके स्वभाव के नियामक स्वरूप को ही प्रदर्शित कर रही हों। एक ही दृष्टि मे देखनेवाले को विश्वास हो जाता कि इस युवक की झुकने में नहीं, खंड-खंड हो जाने मे आस्था है। उसका पहला बोल सुनते ही कार्तिक स्वामी को यह बात और भी साफ तौर पर समझ में आ गई। वह एकाग्र होकर सुनने लगा।

'पिताजी! दंडनायक विमल अर्बुद-मंडल पर घेरा डालता चला आ रहा हो, उस समय हमारा यहाँ से वागड के रास्ते चित्तौड़ भाग जाना मुझे तो ऐसा लगता है मानो कोई सिर पर डंडा बजा रहा हो। मेरा तो

वहीं दंताणी के रणक्षेत्र में सोने का (मर मिटने) मन होता है !'

'तेरे मन की बात मुझसे छिपी हुई नहीं है, पूर्णपाल ! हमने उन्हें अरावली के दर्रों में और बहुत समीप आ जाने पर दंताणी के रणक्षेत्र में एक नहीं अनेक बार रोका है। दंताणी का रणक्षेत्र तो हमारा कुरुक्षेत्र ही है। परन्तु हम दूसरों के भरोसे पर रह गये।'

'तो अभी भी क्या बिगड़ा है ? जिस पर माता भवानी की छत्रछाया हो उसे इस तरह सोचने-विचारने की क्या जरूरत ?'

'पाटन में दो जबर्दस्त पक्ष हो गये हैं, ये समाचार हमें मिले थे न ? हम इस बात की छानबीन कर अवसर से लाभ उठाने की सोच रहे हैं, यह भी मैंने तुझसे कहा था।'

'जी हाँ !'

'विमल मंत्रीश्वर और महाराज के बीच मनमुटाव हो जाने की बात भी हम तक पहुँची थी। महाराज भीमदेव नड्डूल पर चढाई करनेवाले हैं, इसका भी हमें पता था। इसलिए वह नड्डूल पर आक्रमण कर दें और या तो वहाँ पराजित हो जायें और यदि ऐसा न हो सका तो वापसी में धारापति के कुलचन्द्र की मदद से हम उन्हें आडावला में दबा मारें, यही हमारी रणनीति थी और उसी अवसर की हम राह देख रहे थे। लेकिन हम तो रास्ता देखते ही रह गये और दामोदर बीच में न जाने कहाँ से आ कूदा और अपना वार कर भी गया। उसकी सेना आडावला मे वटेश्वर के समीप रास्ता रोककर जम गई। विमल इधर आ पहुँचा। इस तरह दोनों ओर दुश्मन की सेनाएँ आकर हमारे दोनों पार्श्व को घेर लेंगी, यह तो कभी हमारे ध्यान में भी नहीं आया था। अब समझदारी वार करने में नहीं, दूसरी राह खोज निकालने में है। इस समय तो यहाँ से महाराज भोजराज के पास चित्रकोट चल देना चाहिये।'

'महाराज भोजराज चित्रकोट में हैं ?'

'हाँ, इस समय वह वहीं हैं और वहीं रहेंगे।'

'यानी वहाँ जाकर उनके शरणागत बनें, यही न ? धरणीवराह के वंशज की आज यह दशा ?'

प्रत्युत्तर मे धंधूकराज खुली हँसी हँसा—'अरे, पगले ! महाराज धरणीवराह ने भी हटुंडी के राठौर का आश्रय लेकर पाटनपति मूलराज सोलंकी के वार को बचाया था । हम भी त्रिभुवन नारायण* का आश्रय लेकर पाटनपति के वार को बचा रहे है। संकट-टला हजार बरस जीता है !'

'महाराज ! एक बार गौरव नष्ट हो जाने पर राजा राजा नहीं रहता ! फिर तो वह समझा जाता है हीरा माणिक का समूह । उसका जीवित रहना न रहना दोनों एक से हैं ।'

धंधूक ने अपने निकट रखा हुआ एक वस्त्रलेख दो-एक बार हाथ मे लिया और पुनः नीचे रख दिया । स्पष्टतः उसे युवराज पूर्णपाल का आग्रह अनुचित लग रहा था ।

'तो फिर क्या किया जाये ? तू ही बता !'

'भागने की अपेक्षा मरना अच्छा । एक दिन कहीं-न-कहीं और कभी न-कभी मरना ही है तो दताणी जैसा रमणीक रणक्षेत्र और मा की ऐसी गोद अन्यत्र कहाँ मिलेगी ?'

'कृष्णराज ने क्या सन्देश भेजा था, पता है ?'

'आपका खयाल है कि भोजराज हमारी रक्षा करेंगे । कृष्णराज सोचता है कि नड्डूलवाला बचायेगा, इसी लिए वह नड्डूल जाने को उतावला हो रहा है । इसके सिवा वह और कौन-सा सन्देश भेजेगा ! परन्तु मैं आपसे कहता हूँ, महाराज, कि हमे कोई बचा सकता है तो वह केवल माता अम्बा भवानी ही; बचाना होगा, तो वही बचायेंगी । जितने सैनिक जमा किये जा सकें, इकट्ठा करके आप तो दडनायक विमल पर हल्ला बोलिये और मै आडावला लाँघकर दामोदर को रोकता हूँ ।'

---

*भोजराज की एक प्रशस्ति

कार्तिक स्वामी सुन रहा था। उसे पूर्णपाल की योजना दुस्साहसपूर्ण मालूम पड़ी। विमल चन्द्रावती को चारों ओर से घेर चुका था। अब उसे रोकना मुश्किल ही था।

धंधूक ने एक हाथ सिर पर फेरा, 'बेटा!' उसने बड़ी ही स्नेह-भरी वाणी में कहा, 'तेरी सलाह तो मैंने मान ली, लेकिन हार जाने पर मुझे क्या करना होगा, इसे भी जानता है?'

पूर्णपाल कुछ न बोला। धंधूक ने अपनी बात आगे कही।

'एक बार पाटन के हाथों मेरा मान मर्दित हो चुका है। अब जो कहीं दुबारा पराजित हो गया तो जीवित जल मरना होगा। उसके सिवा मेरे दिल को शान्ति मिलने की नहीं!'

इसका उत्तर सुनने के लिए कार्तिक स्वामी की समग्र श्रवण-शक्ति कानों में आ बैठी। लेकिन पूर्णपाल कहते-कहते रुक गया।

'मुझे मृत्यु का जरा भी भय नहीं।' धंधूक का किंचित् शोकपूर्ण स्वर सुनाई दिया, परन्तु अब भी मुझे आशा है कि एक बार मैं पाटन को हरा सकता हूँ। मृत्यु का क्या, यह तो आने-जानेवाला अतिथि है। तू कहे तो मैं लड़ूँ, परन्तु मेरी यह प्रतिज्ञा है। दूसरी बार की पराजय का कलंक परमार के माथे पर लगना नहीं चाहिये। फिर हम स्वयं होकर भोजराज के आश्रय में दौड़े जा रहे हों तभी न हमारी हीनता होगी? लेकिन यह सन्देश तो स्वयं उनके मंत्रीश्वर रोहक ने भिजवाया है। देख. .'

धंधूक ने अपने पास रखा हुआ वस्त्रलेख उठाकर पूर्णपाल के सामने किया। पूर्णपाल ने वस्त्रलेख पर एक उड़ती निगाह डाली और कहा 'महाराज! क्या आप यह सोचते हैं कि दामोदर महेता आपसे लड़ेगा? वह तो वहीं मोर्चाबन्दी किये पड़ा रहेगा और आप सबको डराता रहेगा और यों अपना काम निकालकर चलता बनेगा।'

'सच्चा दुःख तो दामोदर का ही है। न तो वह लड़ता है, और न पराजित ही होता है। महाराज भीमदेव या तो इस पार या उस पार—आर-

पार निकल जाते हैं। उनसे दो-दो हाथ करने मे तो क्षत्रित्व का मजा आ जाता है। परन्तु तेरा वह दामोदर—उसकी कौन-सी बात सच है इसी का कुछ पता नहीं चल पाता। इसी लिए तो मेरा कहना है, पूर्णपाल, कि यह जो धारापति के मंत्रीश्वर रोहक ने सन्देशा भेजा है अभी वही ठीक है। फिर स्वयं हमें कहने के लिए जाना होगा।'

दोनों पिता-पुत्र एक दूसरे को ओर देखते रहे। पूर्णपाल को अब भी यही लग रहा था कि यदि आडावला को लाँघकर दामोदर पर हमला कर दिया जाये तो विमल को चन्द्रावती छोड़कर जाना पड़ेगा। और यदि नड्डूलवाला भी उसी समय आक्रमण कर दे तो सोलंकी की सेना आडा-वला में ही घुटकर रह जाये। परन्तु वह कुछ बोला नहीं। रोहक के वस्त्र-लेख को पढ़ने में वह लीन हो गया था।

८. पूर्णपाल का निश्चय

पूर्णपाल ने रोहक का सन्देश पढ़ लिया।

'क्यों ? क्या खयाल है ?'

'खयाल और तो क्या होगा ! एक का दुश्मन दूसरे का मित्र ही होगा, परन्तु धारेश्वर की ऐसी क्रीड़ा एक दिन आपको उनके अधीन कर देगी। यह भी उनकी एक क्रीड़ा' बल्कि कूटनीति ही है।

'तुम्हें लिख रहा है कि यहाँ आ जाइये—हमारे सेनापति साढा ने नड्डूल पर आक्रमण किया है, वह नड्डूल को पराजित कर आडावला के पार्श्व में होता हुआ वटेश्वर पहुँचेगा, वहाँ भीमदेव को भी रोकेगा; इस बीच आप अपनी तैयारियाँ कर लीजिये, तैयारियों के लिए यहाँ आकर रहिये—इतनी साफ बात तो लिखी है, इसमे क्रीड़ा कैसी और कूटनीति कहाँ ? और यदि कूटनीति ही हो तो हमने कहाँ अपने-आपको उसके हाथों बेच दिया है ?'

'जो नड्डूल को हरायेगा, महाराज भीमदेव को पराजित करेगा, वह आपको यों ही छोड़ देगा ? यदि माडलिक या सामन्त ही बनना हो, तो पाटन का सामन्त होना ही ज्यादा अच्छा है।'

'हमें तो केवल माता अम्बा भवानी का प्रतिहार बने रहना है, सामन्त तो किसी का भी नहीं बनना है।'

'यदि ऐसी बात है तब तो देवी का नाम लेकर युद्ध मे कूद जाइये महाराज ! जो समय पर लड़ना नहीं जानता, वह फिर किसी दिन लड़ नहीं सकता। सामन्त-पद ही ग्रहण करना हो तो मालवा की अपेक्षा पाटन

का सामन्त-पद ज्यादा अच्छा है; और कुछ न भी हो तब भी उसी की सीमा पर हम पड़े हुए हैं। जिस दिन भी बिगड़ जाये, पाटन के क़िले-कोट काँपने लगें और मालवा—मालवा में हमारी क्या हस्ती, क्या बिसात?'

'पाटन को पराजित करने की मुझे आशा है, बशर्ते कि उचित अवसर की प्रतीक्षा करने की हमारे में धीरज हो। प्रतीक्षा करना भी क्या एक प्रकार की मोर्चाबन्दी नहीं है, पूर्णपाल? और अभी समय है।'

'महाराज को भले ही वह अच्छा लगता हो। महाराज राज्य के स्वामी हैं। मैं तो अकेला ही चन्द्रावती के लिए लड़ूँगा। अपनी संगमरमर की नगरी को मैं किसी के हाथ में जाने नहीं दे सकता।'

कार्तिक स्वामी को हठात् खयाल आया कि यदि वह मूर्खाधिराज स्थट्ट होश में आ गया और उसे खोजता हुआ इधर निकल आया तब तो उसके सौ के सौ वर्ष सामन्त हो जायेंगे।

'अरि-दल घर के आँगन में पड़ा हुआ है, पूर्णपाल!' समझाने के प्रयत्न में धंधूक का स्वर कुछ अधिक विनम्र और शान्त हो गया था—'ऐसे में विजय प्राप्त हो सकेगी?'

'विजय तो नहीं होगी पिताजी! परन्तु देवी दुर्गा भवानी की मुंड-माला में स्थान तो मिलेगा! मेरे लिए इतना ही बहुत है!'

'तो फिर बुलाऊँ, मालव-अमात्य के सन्देश-वाहक को? बुलाऊँ न? कह ही देना है न?'

'जी हाँ!'

'क्या कहना होगा?'

'यही कि देवी भवानी की शरण छोड़कर अर्बुदपति किसी के आश्रय में नहीं जाते। जगज्जननी के सिवाय दूसरे किसी की मदद की आशा भी वह नहीं करते।' धनुष की टंकार की तरह पूर्णपाल का स्वर गरज उठा!

उस आवाज को सुनकर उनकी ओर आते हुए दो पाँव वहाँ से कुछ

दूर बाहर ही रुक गये। यह देख कार्तिक स्वामी चौंक पड़ा। वह नये आगन्तुक को पहचान न सका। वह खम्मे की ओट में और भी इस तरह छिप गया कि कोई उसे देख न सके।

'महाराज. . !'

'पिता और पुत्र दोनों ही चौंके। कार्तिक स्वामी को आश्चर्य हुआ। यह तो स्त्री का कण्ठ-स्वर था। कहीं महारानी अमृत देवी का स्वर तो नहीं ? महारानी का वहाँ होना उसके लिए परम अचरज की बात थी। लेकिन धंधूकराज की बात सुनकर उसकी समस्त शंकाओ और आश्चर्यों का निवारण हो गया। धंधूकराज कह रहा था—

'देवी, आओ, आओ! बड़े मौके से आई हो। हमें तुम्हारी ही सहायता की आवश्यकता है।'

'महाराज, मैं तो यह कहने आई थी कि,' अमृत देवी ने भीतर प्रवेश करते हुए कहा—'लाहिनी ने एक सवार को भेजा है—वटेश्वर से, अभी चला ही आ रहा है।'

कार्तिक स्वामी सुनता रहा। वटेश्वर मे धंधूक की पुत्री लाहिनी रहती थी। दामोदर वहीं था। वहीं से यह सवार आया था। इसलिए कोई बहुत महत्वपूर्ण बात होनी चाहिये। वह पूरी तरह ध्यान देकर सुनने लगा।

'कहाँ है ?' धंधूक ने पूछा।

'वहाँ, पहाड़ी के पीछे—उसके पास महत्वपूर्ण सन्देशा है।'

धंधूकराज ने एक ताली बजाई। प्रत्युत्तर मे पीछेवाले गुप्त दरवाजे में से एक सैनिक आकर खड़ा हो गया। उससे धधूकराज ने कहा—'वटेश्वर से एक आदमी आया है। उसे यहाँ हाजिर करो।'

कुछ देर तक चुप्पी रही। पिता और पुत्र अपने-अपने विचारों में खोये रहे। धंधूक इस समय तनिक-सा झुककर मार्ग निकालना चाहता था। पूर्णपाल राजा की मर्यादा और राज्य के गौरव को अखंड रखना चाहता था।

अन्त में अमृत देवी ने शान्ति को भंग करते हुए कहा—'बड़े! तूने जो कुछ कहा उसे मैंने सुना। क्षत्रिय के बेटे तो लड़ने के लिए जन्म लेते हैं और लड़ेंगे। परन्तु मुझे महाराज की और छोटे—कृष्णराज—की बात ही यथार्थ लगती है।'

पूर्णपाल ने एक दृष्टि मा की ओर डालकर कहा, 'माताजी, आप भी!'

'मैं तो जिस दिन तू दंताली के रणक्षेत्र को प्रयाण करेगा तेरी कमर में तलवार बाँधकर भेजूँगी, बेटा! परन्तु इस समय हमारी तैयारी नहीं है। महाराज की सेना बिखरी हुई है। लाहिनी ने जिस सवार को भेजा है वह तो कह रहा था कि चंद्रावती से चित्रकोट जाने के समस्त मार्गों को रोकने के लिए दामोदर ने आदमियों को भेज दिया है, इसलिए देर होने के पहले ही—देखो, वह आदमी स्वयं ही आ गया। अब वही कहेगा।'

सन्देशवाहक आ पहुँचा था। वह प्रणाम करके खड़ा हो गया।

'कहाँ से? वटेश्वर से आये हो?' धंधूकराज ने पूछा।

'हाँ, महाराज!'

'क्या हैं वहाँ के समाचार? क्या लाये हो? सोलंकियों की सेना आ गई है? कौन-कौन हैं?'

'महाराज भीमदेव स्वयं हैं। एक-एक पहाड़ और एक-एक रास्ते की नाकेबन्दी कर दी गई है।'

'कितने आदमी हैं? तुझे किसने भेजा है?'

'मुझे लाहिनी देवी ने भेजा है। आदमियों का तो कोई शुमार ही नहीं है, महाराज! रात में तो समझ लीजिये कि एक-एक पहाड़ जल उठता है।'

'अच्छा?'

'महाराज को चंद्रावती छोड़ना हो तो अब जल्दी-से-जल्दी चित्रकोट पहुँच जाना चाहिये। बाद मे मौका नहीं मिलेगा। दामोदर ने इस तरह चौकी-पहरों और नाकेबन्दी का इन्तजाम किया है कि चिड़िया तक पर

नहीं मार सकती।'

'कहाँ है सन्देश? ला; दे तो!'

'महाराज! सन्देश यहाँ तक सही-सलामत पहुँच सकेगा या नहीं, इसका कोई निश्चय नहीं था, आशंका इसी बात की ज्यादा थी कि बात कहीं दुश्मन के हाथ में न जा पड़े, इसलिए मुझे जबानी ही याद करा दिया था। और यह रही मुद्रा।' सन्देशवाहक ने लाहिनी देवी की मुद्रा दिखलाई। थोड़ी देर तक कोई कुछ न बोला। किसी निश्चय पर पहुँच न पाने के कारण सब-के-सब व्यग्र हो रहे थे।

लेकिन तत्काल ही बाहर से सुनाई पड़नेवाले एक वाक्य ने उनकी व्यग्रता-भरी समाधि को भंग कर दिया। मालव-अमात्य के सन्देशवाहक के ही वे शब्द थे—'महाराज! सेनापति कुलचंद्र स्वयं ही आ पहुँचे हैं और वे यहीं आ रहे हैं; लीजिये, आ ही गये!'

धंधूकराज ने आश्चर्यचकित होकर कहा—'अरे, कौन? कुलचन्द्रजी स्वयं ही? वे यहाँ कहाँ से आ गये?'

कुलचन्द्र के साथ तो उसने पाटन पर हमला करने की योजना पर कई बार विचार किया था। जब वह स्वयं यहाँ आये हैं तो परिस्थिति अवश्य ही अधिक गंभीर होनी चाहिये। धंधूकराज उठकर अपने स्थान से एक डग आगे बढ़ आया। कार्तिक स्वामी अधिक सुरक्षा के लिए पहाड़ के पार्श्व में खोदकर बनाये हुए आदमकद आले के अन्दर अच्छी तरह छिपकर खड़ा हो गया।

सामने के दरवाजे में एक गौर वर्ण, तेजस्वी और आकर्षक युवक योद्धा प्रवेश करता हुआ दिखाई दिया। उसका नख-शिख आयुधों से ढका हुआ था। देखते ही आदमी पर रोब गालिब हो जाये ऐसा गजब का तेज उसकी आँखों में था। उसकी दृष्टि ही अद्भुत थी। वह जब सामने देखता तो ऐसा लगता था, मानो अस्त्र फेंक रहा हो। उसकी ऊँचाई, शक्तिशाली देह, आजानु दृढ़ हाथ, मजबूत स्नायु-बंध और एकदम अपनी

और ध्यान खींचनेवाली गरुड़-जैसी ईरानी नाक—उसके सान्निध्य में खड़े होनेवाले मनुष्य को यही लगता था मानो वह किसी रणमूर्ति के सामने खड़ा हो।

'ओहो, आइये-आइये, कुलचन्द्रजी! आप स्वयं आये हैं, हम इसका क्या अर्थ लगायें?'

कुलचन्द्र ने दोनों हाथ जोड़कर धंधूकराज को नमस्कार किया। और नमस्कार करने के साथ ही समूचे परिवार को वहाँ सम्मिलित देखकर उसने परिस्थिति को भी ताड़ लिया।

'महाराज! मुझे महा-अमात्य ने भेजा है। उनका भेजा सन्देश आपको मिल ही गया होगा!'

'जी हाँ, सन्देश तो मिल गया।'

'तो अब जितनी देर विलम्ब होता है, महाराज, हमारा संकट भी उतना ही बढ़ता जाता है। क्यों पूर्णपालजी, आप इतने उदास क्यों हैं?'

'हम पृथ्वी के पालकों को आज दूसरों की शरण लेने की नौबत आई।' पूर्णपाल के मन में जो था, वह उसने कह सुनाया।

'शरण? किसकी शरण, युवराज?'

'वहाँ जाने के बाद धारापति के शरणागत ही तो होंगे।'

प्रत्युत्तर में समस्त पहाड़ के गुम्बद को गुँजानेवाली जोरदार हँसी हँसकर मालव-सेनापति कुलचन्द्र आगे बढ़ा। उसने पूर्णपाल के कन्धे पर अपना हाथ रखा। आँखों से आँखें मिलाईं। उसे समझते देर न लगी कि इस आदमी का दृढ़ निश्चय ही चंद्रावती का परित्याग करने में बाधक हो रहा है। धंधूकराज चित्तौड़ जायें और मालवपति के शरणागत हों इसमें मालवा की राजनीति की जीत थी। इसी लिए दामोदर या विमल धंधूक के साथ समाधान कर उसे अपने पक्ष में ले सके उसके पहले ही वह धंधूकराज को चित्तौड़ ले उड़ना चाहता था। पूर्णपाल की वीरता को भी उसने नाप लिया। अवसर की गम्भीरता का अन्दाज भी उसने लगा लिया।

यह बोला—'युवराज ! इसे शरण में जाना नहीं कहते। यह तो एक तरह की मोर्चाबन्दी हुई। हथियारों की लड़ाई की तैयारी-भर है। भंडारा-वार करते समय क्या आप एक डग पीछे नहीं हट जाते ?'

'एक बार आदमी का गौरव नष्ट हो जाने के बाद पुनः गौरवान्वित होते सुना है कभी ? हजार पराक्रमों से भी इस पलायन का कलंक धुल सकेगा ?'

'तो आप क्या उपाय सुझाते हैं ?'

'लड़ मरना !' पूर्णपाल ने दृढ़ता-भरे स्वर में जवाब दिया।

'आपके पास सेना कितनी है ?' कुलचन्द्र ने व्यावहारिक कुशलता से प्रश्न किया।

'पहाड़ जितनी। जितने पहाड़ उतनी ही हमारी सेना है।'

'ओह, मेरे पगले युद्ध-प्रेमी युवराज ! क्या यह बात मैं जानता नहीं ? इतना तो मुझसे भी छिपा नहीं कि आप लोगों को पहाड़ों का सहारा है; वहाँ कोई आपका मुकाबला नहीं कर सकता। परन्तु आज जब कि विमल की सेना सीमा पर डेरा डाले पड़ी हो तब क्या ये पहाड़ रक्षा कर सकते हैं। आज की संकटापन्न स्थिति में तो मालव के महा अमत्य का बतलाया हुआ मार्ग ही सही मार्ग है।'

'अर्थात् पलायन, यही न ?'

'जी नहीं; युद्ध की आवश्यक तैयारियों के लिए कुछ समय तक एकान्त में रहना, यहाँ से हट जाना। आपकी शुभ्र स्फटिक नगरी में कोई न रहे, नाम के लिए भी कोई न हो, एक दुम कटा कुत्ता तक देखने को न मिले, तो पूर्णपालजी, सोलंकियों का इतना जरा-सा मुँह निकल आयेगा, अपने वार से आप ही घायल हो जायेंगे; उनकी जीत उन्हीं को खा जायेगी !

रणोन्मत्त पूर्णपाल के मन पर नगर में किसी के न होने की कल्पना का जादू-जैसा असर हुआ। कुलचन्द्र उस प्रभाव को ताड़ गया।

'हमारी योजना तो यह है कि महाराज धंधूकराज के नगरी परित्याग करते ही बचे-खुचे समस्त सैनिक और नागरिक आदि भी शहर खाली कर दें। सारा शहर खाली हो जाये। रह जायें केवल बुड्ढे-ठुड्डे और अपंग-अज्ञान। उनके सिवा कोई न रहे।'

'तब नगरी में क्या रह जायेगा? और शहर की सार-सँभाल कौन करेगा?

'सार-सँभाल कौन करे? मजा तो तब है कि विमल नगर में प्रवेश करे और नगर उसे एकदम खाली मिले। ऐसा सन्नाटा और सूनापन हो कि एक बार विमल का हृदय भी विचलित हो जाये। शहर के स्फटिक प्रासाद सभी सूने पड़े हों। जन-हीन धरती ऊजड़ पड़ी सिर धुन रही हो। नगरी को तो इस तरह छोड़कर जाना है, पूर्णपालजी! यह नहीं कि उठे और भरी-पूरी नगरी छोड़कर चल दिये।' कुलचन्द्र ने अपनी कल्पना को अधिक प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत किया। इस कल्पना के वीरत्वपूर्ण पहलू ने पूर्णपाल को भी आकर्षित किया।

धंधूकराज ने पूछा—'सारी नगरी खाली?'

'जी हाँ, महाराज!' कुलचन्द्र ने जवाब दिया—'लोगों से खाली और साज-सामान से खाली चन्द्रावती नगरी मन्त्री विमल की विजय-यात्रा पर ऐसा व्यंग होगी कि उसे वहाँ से भागते ही बनेगा। उसे यही लगेगा मानो समस्त अर्बुदाचल उसकी खिल्ली उड़ा रहा हो।' पूर्णपाल पर होते हुए प्रभाव को लक्ष्य कर कुलचन्द्र अधिक उत्साह से कहने लगा—'आप लड़ें और पराजित हो जायें तो दुश्मन को एक बात का निश्चय हो जाता है। लेकिन आप न लड़ें, न पराजित हों, न पकड़े जायें तो वह क्या करेगा? आखिर कब तक आपके खिलाफ टक्करें मारता रहेगा? उसे भी तो पाटन की फिक्र होगी न? चन्द्रावती में वह प्रवेश करेगा, परन्तु चन्द्रावती को अपनी खिल्ली उड़ाते देख वहाँ से उल्टे पाँवों लौट जायेगा। आपकी संगमरमर की नगरी बच जायेगी; लेकिन यदि अभी आपने युद्ध

या तो नगरी का सत्यानाश ही हो जायेगा।'

'अच्छी बात है; पिताजी खुशी-खुशी मालवराज का आश्रय-ग्रहण कर सकते हैं।' पूर्णपाल को शहर खाली करने की बात पसन्द आ गई थी।

'और आप ?'

'मैं ? मैं तो जगदम्बा के सिवाय कभी किसी का आश्रय ग्रहण नहीं करता, यह मेरी प्रतिज्ञा है।'

'परन्तु मैं तुमसे कहती जो हूँ, पूर्णपाल !' अमृत देवी ने कहा।

'आप तो जन्म देनेवाली माता हैं। लेकिन एक मा और है—माता जगदम्बा। जब-जब विपत्ति पड़ी मैंने उसको याद किया और उसने मेरी रक्षा भी की।'

'अब आप क्या करेंगे ?'

'मैं ? मैं चन्द्रावती जाऊँगा। वहाँ शेष बचे प्रजाजनों और सभी ों को बाहर भेज दूँगा। सारी नगरी खाली हो जायेगी। एक कुत्ता नहीं रहने पायेगा। उसके बाद मैं मा जगदम्बा का नाम लेकर उसी सरे-भरोसे पहाड़ियों की ओर निकल जाऊँगा। जब तक अरावली विन्ध्याचल की गिरि-शृंखलाएँ हैं, जब तक इन पर्वतमालाओं में फैले जंगल हैं तब तक परमार को किसी के सहारे की जरूरत नहीं। ये ड़ मेरा पालन करेंगे। मैं इन पहाड़ों की हिफाजत करूँगा।'

अब धंधूकराज को यहाँ से शीघ्रातिशीघ्र ले जाने की आवश्यकता चन्द्र को प्रतीत होने लगी। युवराज के कथन से सहमति प्रकट करने लिए एक डग आगे बढ़कर उसने पूर्णपाल के कन्धे पर अपना हाथ दिया और कहने लगा—'वाह ! मेरे नर-नाहर, वाह ! मैंने भी इसी सोचा था। तो यही तय रहा कि महाराज अवस्था के कारण अभी रे यहाँ आतिथ्य ग्रहण कर मोर्चाबन्दी करें और आप चारों ओर घूम-कर सैनिकों में जोश भरते और उनकी जत्थेबन्दी करते रहें। सोलंकी हृदय में शूल खटकाते रहने की बात कही है आपने। इससे बढ़िया

सदस्य चले गये थे। कार्तिक को विश्वास हो गया कि कुलचन्द्र की योजना के अनुसार शहर खाली किया जा रहा है। उसका विश्वास सही भी था। धंधूकराज और कृष्णराज जब चित्तौड़ की ओर चले गये तो पूर्णपाल ने नगर के अन्दर जाकर और घूम-फिरकर एक-एक कोने की अच्छी तरह देख-भाल की। नगरी की दशा देखकर उसके दृढ मनोबल को भी चोट लगी। कहीं-कहीं जर्जर-बूढ़े और अपंग पडे हुए थे। कहीं कुत्ते लोट रहे थे—वे उच्च स्वर मे रोते और प्रेत-बाधा से चौंके हुए की तरह घबरा-कर इधर-उधर चक्कर काटते और बाहर की ओर दौड़ पड़ते थे। पूर्ण-पाल राजमहल की ओर जा रहा था। रास्ते में उसने प्रत्येक मुहल्ले मे डौंडी पीटकर लोगों को सजग करते हुए एक डौंडीवान का स्वर सुना—'सुनो, लोगो! सुनो! जिसे सोलंकी की दासता स्वीकार न हो वह तत्काल नगर खाली करके चला जाये। धंधूकराज महाराज आडावला चले गये हैं। राजमहल खाली हो गया है। सब लोग पहाड़ों मे चारों ओर बिखर जायें। कोई भी चन्द्रावती में न रहे! ढम-ढम-ढम।'

पूर्णपाल अपने घोड़े पर सवार राजमहल के समीप पहुँच गया।

जहाँ घोड़ों की टापों से उड़ी हुई धूल के कारण राजमुकुट धुँधले पड़ जाते थे और हाथियों की चिंघाड़ का घोष स्फटिक महलों से प्रतिध्वनित होता रहता था वहाँ आज साँय-साँय कर रहा था।

क्षण-भर वह वहीं-का-वहीं अवसन्न खड़ा रहा। फिर देश-निकाला दिये हुए राजकुमार की तरह उसने राजमहल और नगरी को प्रणाम किया और अपने घोड़े की बाग मोड़ दी।

ठीक उसी समय राजमहल के सिंहपौर पर उसे मशाल का उजाला फैलता हुआ दिखाई दिया।

पूर्णपाल को आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा—'यहाँ, राजमहल में मशाल का प्रकाश कहाँ से आया?'

'कौन?' भीतर से पहाड़ की कन्दरा में से गूँजती हुई ध्वनि-जैसा स्वर

सुनाई दिया।

'तू कौन है ?' पूर्णपाल ने कठोरतापूर्वक पूछा, 'पता नहीं, नगरी सारी खाली हो गई है ? किसी को रहने की इजाजत नहीं है। महाराज का ऐसा ही हुक्म है !'

सिंहपौर पर एक बूढ़ा चौकीदार दिखाई दिया। उसने मशाल को एक ओर रख दिया। उसने पुनः पूछा—'कौन है यह ?'

पूर्णपाल की आँखें भीग आईं। राजमहल का सबसे पुराना प्रतिहार वहाँ खड़ा था। उसने उसकी आवाज सुनकर उसे पहचाना।

'दंड परमार ! समूचा शहर खाली हो गया है। राजमहल भी खाली पड़ा है। तुम भी जहाँ जाना चाहो, जा सकते हो। मैं इजाजत देता हूँ।'

'कौन है जो मुझे चौकी छोड़कर जाने के लिए कह रहा है ?' दंड परमार ने आगे बढ़कर कहा, 'दंड परमार की राजमहल की अखंड चौकी सात-सात पीढ़ियों से चली आ रही है।' और वह पूर्णपाल के समीप आ गया।

पूर्णपाल ने बूढ़े प्रतिहार के सिर पर स्नेहपूर्वक हाथ फेरकर कहा, 'परमार, यह तो मैं पूर्णपाल हूँ। यहाँ तुम्हें अकेलापन अखरेगा। तुम भी पास-पड़ोस के किसी गाँव में चले जाओ। चलो, मैं पहुँचा आऊँ !'

दंड परमार ने युवराज का स्वर पहचान लिया। उसने हाथ जोड़कर कहा, 'जी नहीं, अन्नदाता ! मेरी सात पीढ़ी की अखंड चौकी खंडित नहीं हो सकती !'

'लेकिन कोई है जो नहीं !'

'किसने कहा कि कोई नहीं ? संगमरमर के महल हैं। माताजी की बैठक है। परमारराज जगदम्बा की बैठक के चौकीदार हैं। मैं उनका चौकीदार हूँ। कौन कहता है कि कोई नहीं ? अभी तो यहाँ सारा राजमहल विद्यमान है। इस राजमहल में धरणीवराह महाराज से लेकर उनके सभी वंशजों के स्वर गूँज रहे हैं। मैं तो अपने पहरे पर तैनात रहूँगा। मैं कहीं जाने

और योजना इस समय हो ही नहीं सकती। महाराज! मैं तो इस योज पर मुग्ध हो गया हूँ। यदि अनुमति हो . .'

'मेरा क्या है, भाई! मैं तो खुद इसी राय का हूँ। न तो लड़ना अ न लड़ाई को बन्द करना, इससे उत्तम और क्या हो सकता है!'

थोड़ी देर के बाद वे सब वहाँ से बाहर निकले। सब-के-सब पहा पर चढ़कर पीछेवाली तलहटी में उतर आये और रवानगी के लि तैयार हो गये। यह देखकर कि सब लोग बाहर चले गये हैं, कार्ति स्वामी भी अपने छिपने की जगह से आगे आया और चारों ओर सत दृष्टि डालता हुआ बाहर निकला। बाहर आकर वह भी सबके पीछे-पी पहाड़ी पर चढ़ने लगा था; इतने में एक चौकीदार ने, जो कहीं से नी वाले मैदान में आ गया था, उसे टोका—'कौन है?'

'मैं हूँ।'

'मैं कौन?'

'महाराज सत्यदेव परमार का सन्देशवाहक. .' कार्तिक ने अविल उत्तर दिया।

'कहाँ से आ रहे हो? वागड से?'

'हाँ!'

'क्या है? किससे काम है?'

'मुझे महाराज धंधूकराज से मिलना है। बड़ा महत्वपूर्ण सन्देशा है।'

चौकीदार को जरा-सी शंका हुई। लेकिन महाराज वागड की ओ जानेवाले हैं यह उसे मालूम था। उसने सोचा, हो सकता है, वागड वालों का कोई सन्देश लाया हो।

'महाराज को सन्देशा देना है? दौड़-दौड़! नीचे तलहटी की ओ उतर जा। महाराज जाने की तैयारियाँ कर रहे होंगे।'

कार्तिक स्वामी उसके कथनानुसार ऊपर की ओर जाती हुई पगड पर चढ़ने लगा। थोड़ी ही देर में वह चोटी पर पहुँच गया। ले

पहुँचते-पहुँचते हाँफने लगा था। नीचे तलहटी में से आता कोलाहल उसे सुनाई दे रहा था। नीचेवाले कहीं देख न लें, इस विचार से वह कुछ समय तक वहीं पड़ा रहा। नीचे का कलरव धीरे-धीरे दूर जाता हुआ प्रतीत हुआ। वह उठा और तलहटी की ओर चल पड़ा। ऐसा आभासित हो रहा था कि धंधूकराज ने वागड की ओर होकर जाने का ही निश्चय किया है। आगेवाले हाथी पर दो व्यक्ति सवार होकर जा रहे थे, उनके पीछे एक घुड़सवार था। परे हटकर दूसरे बहुत-से घुड़सवार रक्षणार्थ पीछे-पीछे जाते हुए दिखाई दे रहे थे।

कार्तिक धीरे-धीरे पहाड़ी उतरने लगा।

तलहटी में पहुँचने के बाद कार्तिक स्वामी थोड़ी देर तक इधर-उधर घूमता-फिरता रहा। यहाँ उसे किसी गुप्त स्थान या धंधूकराज की चौकी आदि होने के कोई लक्षण दिखाई न दिये। तब सीधे रास्ते पहाड़ियों की परिक्रमा करता हुआ वह मन्दिर में पहुँच गया। स्थट्ट अभी तक वहीं पड़ा खर्राटे भर रहा था। वह भी उसकी बगल में ही बिस्तरे पर लेट गया।

दूसरे दिन सवेरे वह उठा। देखता क्या है कि चारों ओर के रास्ते आदमियों से भर रहे हैं। स्थट्ट से पूछा—'यह क्या माजरा है?'

'कहते हैं कि धंधूकराज नगरी खाली करवाकर पलायन कर गये हैं।'

'कहाँ?'

'अभी खबर तो यह है कि चित्रकोट की ओर गये हैं।'

दो ही दिन में तो कार्तिक स्वामी ने देखा कि पहाड़ों का एक-एक दर्रा और एक-एक रास्ता गाड़ियों, घोड़ों, आदमियों, ऊँटों, गायों, भैंसों' गधों और बकरे-बकरियों से भर गया था।

चींटियों की पाँतों की तरह लोग-बाग चल निकले थे। जिसको जहाँ ठीक लगा—पास के गाँव में, खेड़े मे, बगीचों में, बाड़ियों में, खेतों में, बावलियों पर रहने के लिए चला जा रहा था।

यह खबर भी उड़ रही थी कि राज-कुटुम्ब और राज-परिवार के अन्य

सदस्य चले गये थे। कार्तिक को विश्वास हो गया कि कुलचन्द्र की योजना के अनुसार शहर खाली किया जा रहा है। उसका विश्वास सही भी था। धंधूकराज और कृष्णराज जब चित्तौड़ की ओर चले गये तो पूर्णपाल ने नगर के अन्दर जाकर और घूम-फिरकर एक-एक कोने की अच्छी तरह देख-भाल की। नगरी की दशा देखकर उसके दृढ़ मनोबल को भी चोट लगी। कहीं-कहीं जर्जर-बूढे और अपंग पडे हुए थे। कहीं कुत्ते लोट रहे थे—वे उच्च स्वर में रोते और प्रेत-बाधा से चौंके हुए की तरह घबराकर इधर-उधर चक्कर काटते और बाहर की ओर दौड़ पड़ते थे। पूर्णपाल राजमहल की ओर जा रहा था। रास्ते में उसने प्रत्येक मुहल्ले मे डौंडी पीटकर लोगों को सजग करते हुए एक डौंडीवान का स्वर सुना—'सुनो, लोगो! सुनो! जिसे सोलंकी की दासता स्वीकार न हो वह तत्काल नगर खाली करके चला जाये। धंधूकराज महाराज आडावला चले गये हैं। राजमहल खाली हो गया है। सब लोग पहाड़ों मे चारों ओर बिखर जायें। कोई भी चन्द्रावती में न रहे! ढम-ढम-ढम।'

पूर्णपाल अपने घोड़े पर सवार राजमहल के समीप पहुँच गया।

जहाँ घोड़ों की टापों से उड़ी हुई धूल के कारण राजमुकुट धुँधले पड़ जाते थे और हाथियों की चिंघाड़ का घोष स्फटिक महलों से प्रतिध्वनित होता रहता था वहाँ आज सॉय-सॉय कर रहा था।

क्षण-भर वह वहीं-का-वहीं अवसन्न खड़ा रहा। फिर देश-निकाला दिये हुए राजकुमार की तरह उसने राजमहल और नगरी को प्रणाम किया और अपने घोड़े की बाग मोड़ दी।

ठीक उसी समय राजमहल के सिंहपौर पर उसे मशाल का उजाला फैलता हुआ दिखाई दिया।

पूर्णपाल को आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा—'यहाँ, राजमहल में मशाल का प्रकाश कहाँ से आया?'

'कौन?' भीतर से पहाड़ की कन्दरा में से गूँजती हुई ध्वनि-जैसा स्वर

सुनाई दिया।

'तू कौन है ?' पूर्णपाल ने कठोरतापूर्वक पूछा, 'पता नहीं, नगरी सारी खाली हो गई है ! किसी को रहने की इजाजत नहीं है। महाराज का ऐसा ही हुक्म है !'

सिंहपौर पर एक बूढ़ा चौकीदार दिखाई दिया। उसने मशाल को एक ओर रख दिया। उसने पुनः पूछा—'कौन है यह ?'

पूर्णपाल की आँखें भीग आईं। राजमहल का सबसे पुराना प्रतिहार वहाँ खड़ा था। उसने उसकी आवाज सुनकर उसे पहचाना।

'दंड परमार ! समूचा शहर खाली हो गया है। राजमहल भी खाली पड़ा है। तुम भी जहाँ जाना चाहो, जा सकते हो। मैं इजाजत देता हूँ।'

'कौन है जो मुझे चौकी छोड़कर जाने के लिए कह रहा है ?' दंड परमार ने आगे बढ़कर कहा, 'दंड परमार की राजमहल की अखंड चौकी सात-सात पीढ़ियों से चली आ रही है।' और वह पूर्णपाल के समीप आ गया।

पूर्णपाल ने बूढ़े प्रतिहार के सिर पर स्नेहपूर्वक हाथ फेरकर कहा, 'परमार, यह तो मैं पूर्णपाल हूँ। यहाँ तुम्हें अकेलापन अखरेगा। तुम भी पास-पड़ोस के किसी गाँव में चले जाओ। चलो, मैं पहुँचा आऊँ !'

दंड परमार ने युवराज का स्वर पहचान लिया। उसने हाथ जोड़कर कहा, 'जी नहीं, अन्नदाता ! मेरी सात पीढ़ी की अखंड चौकी खंडित नहीं हो सकती !'

'लेकिन कोई है जो नहीं !'

'किसने कहा कि कोई नहीं ? संगमरमर के महल हैं। माताजी की बैठक है। परमारराज जगदम्बा की बैठक के चौकीदार हैं। मैं उनका चौकीदार हूँ। कौन कहता है कि कोई नहीं ? अभी तो यहाँ सारा राजमहल विद्यमान है। इस राजमहल में धरणीवराह महाराज से लेकर उनके सभी वंशजों के स्वर गूँज रहे हैं। मैं तो अपने पहरे पर तैनात रहूँगा। मैं कहीं जाने

का नहीं।'

पूर्णपाल को प्रणाम करके वह तत्काल लौट गया। अपने स्थान पर जाकर मुस्तैदी से खड़ा हो गया; और मानो धंधूकराज महल में ही हों इस प्रकार प्रतिहारी वाणी में पुकार लगाई—'पहला प्रहर—महाराज अर्बुद-पति की जय। भवानी माता रक्षा करें!'

पूर्णपाल ने यह सब देखा। वृद्ध प्रतिहार की असीम राजभक्ति देखकर उसकी आँखों में आँसू छलक आये। हौले से अपने घोड़े की वाग मोड़कर वह नगर-प्राचीर के बाहर निकल आया और पहाड़ों में भटकने के लिए चल दिया।

९. संगमरमर की नगरी

कार्तिक स्वामी को चन्द्रावती जाना था। वह पहाड़ों के टेढ़े मेढ़े रास्ते में चन्द्रावती की ओर चल पड़ा। मार्ग में बागड के एक सिपाही से उसने अपनी साँढ़नी के बदले में घोड़ा ले लिया। घोड़ा अड़ियल था और साँढ़नी चलने से कतराती थी, इसलिए यह बतलाना मुश्किल है कि किसने किसको छकाया।

ज्यों-ज्यों वह चन्द्रावती की ओर बढ़ता गया, सोलंकियों के चौकी-पहरे का प्रबन्ध कड़ा होता गया।

लेकिन महाराज भीमदेव की मुद्रा दिखलाकर वह अपने लिए रास्ता पा लेता था।

चन्द्रावती के चारों ओर घेरा डालकर दंडनायक विमल ने चक्रव्यूह की रचना की थी और प्रत्येक पहाड़ी पर सोलंकी की चौकी तैनात कर दी थी। उसे समाचार मिल चुके थे कि धंधूकराज भाग गये हैं और नगरी से निवासी भी इधर-उधर चले गये हैं। वह अपने घेरे को घना करता और कसता हुआ चला आया। जब चन्द्रावती के कोट-कंगूरे दिखने लगे तो उसने नगरी को चारों ओर से घेर लिया। कार्तिक स्वामी विमल की छावनी में पहुँचा, उस समय विमल नगरी के चारों ओर की पहाड़ियों पर मर्कटी यंत्र (पत्थर फेंकने का यंत्र) चढ़ाकर शहर में पत्थर फेंकने की तैयारियाँ कर रहा था। उसे इस बात पर बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि अभी तक सोलंकी सेना को कहीं किसी ने रोकने का रंच-मात्र प्रयत्न क्यों नहीं किया!

कार्तिक स्वामी चारों ओर देख रहा था, उसी समय विमल ने अकस्मात् उसे देख लिया।

एक सैनिक को भेजकर विमल ने उसे तत्काल अपने पास बुला लिया। कार्तिक ने मन-ही-मन सोचा कि यदि दंडनायक विमल, दामोदर और महाराज भीमदेव तीनों का काम बनाना हो और साथ ही तीनों में से किसी को भी अपने से रुष्ट न करना हो तो बड़ी सतर्कता से काम करना होगा। विमल से कितनी बात कहनी होगी और कितनी नहीं इसकी सीमा-रेखा भी उसने पहले से निर्धारित कर ली। वह उसके समीप पहुँचा और प्रणाम करके खड़ा हो गया।

दंडनायक यहाँ भी उतना ही प्रतापवान दीख रहा था। पाटन छोड़कर यहाँ आने की जरा भी ग्लानि उसके चेहरे पर दिखाई नहीं पड़ती थी। युद्ध करने की व्यग्रता भी नहीं थी। वह तो इतना प्रफुल्लित हो रहा था मानो जीवन के किसी अनमोल स्वप्न को चरितार्थ करने के लिए वहाँ आया हो। युद्ध-क्षेत्र की अपनी पर्णकुटी में भी वह इस शान-शौकत और रोब दाब से बैठा था, मानो पाटन की करोड़ द्रम्म की हवेली में ही विराजमान हो। उसके एक ओर बैठी हुई श्री स्फटिक-के एक अतिशय सुन्दर सूर्य-मन्दिर को देख-परख रही थी। कार्तिक ने वहाँ गणधर को भी देखा। यह सब देखकर उसके लिए निश्चय करना कठिन हो गया कि दंडनायक युद्ध करने आये हैं या संगमरमर की नगरी का स्थापत्य देखने? एकदम निश्चिन्त होकर वह अपने आसन पर बैठे थे। उन्होंने कार्तिक को देखा—पहचाना।

'भट्टराज! आप तो यहाँ दामोदर के पास थे न?' विमल ने पूछा—'नड्डूल के समाचार लाये हैं?'

'जी हाँ।' कार्तिक ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

'आजकल किधर घूम रहे हैं?'

'अभी तो यहीं .' कार्तिक ने जवाब दिया।

'यहीं ? क्या यहाँ कोई नया व्यूह रचने का इरादा है ? दामोदर तो वहीं आडावला में हैं न ?'

'वहीं होने चाहिये। वह प्रदेश तो आपके जिम्मे है, इसलिए यहाँ नया व्यूह रचने की भला क्या जरूरत है ?'

'आप कहाँ से आ रहे हैं ? आडावला से ?'

'जी नहीं, मैं तो कच्छ प्रदेश में था।'

'यहाँ का इन्तजाम देखा ? हमारा इरादा तो केवल धंधूकराज को वश में करने का है। यहाँ कोई बड़ी लड़ाई तो होगी नहीं।'

'इधर की पूरी जानकारी तो आपको है ही। परन्तु क्या लड़े बिना विजय प्राप्त की जा सकेगी ?'

'विजय तो हो चुकी है। धंधूकराज ने प्रतिरोध किया ही नहीं है।'

'यह सच है; लेकिन उन्होंने अभी युद्ध का परित्याग भी नहीं किया है।'

'तो अब करेंगे।'

'और यदि न करें ?'

'बिना लड़े ही वह विजित होंगे। और तभी वह हमारी जीत समझी जायेगी। लड़कर तो सभी जीतते हैं। नगरी रमणीक है और यदि युद्ध किये बिना ही अधिकार हो जाता है तो सुन्दर हवेलियाँ, राजभवन और विशाल मन्दिर सभी कुछ बच जायेगा। दामोदर तो वहाँ आडावला में युद्ध करेंगे न ?'

कार्तिक ने पुनः संक्षिप्त-सा उत्तर दिया—'इस बारे में मुझे अभी तक कुछ पता नहीं चल पाया है।'

इतने में कुछ सरदार और सेनानायक वहाँ आ गये। विमल उनसे दूसरे दिन की सैनिक कारर‌वाइयों की चर्चा करने लगे। बिना लड़े ही नगरी पर अधिकार करने के दाव-पेंच चर्चा का मुख्य विषय था। कार्तिक स्वामी चुपचाप सारी चर्चा सुनता रहा। वह अपनी ओर से कुछ भी न

बोला। जब गोष्ठी समाप्त हो गई, सब चले गये, तो उसने भी हाथ जोड़कर आज्ञा माँगी—'महाराज ! अब मैं चलता हूँ।'

'आपने इस व्यूह के बारे में कुछ भी नहीं कहा, कार्तिक स्वामी ! क्या बात है ?'

'कुछ कहने जैसा है ही नहीं !'

'क्यों ?'

'आप व्यर्थ ही नयी मोर्चाबन्दी कर रहे हैं। नगरी तो सारी खाली पड़ी है।'

'ऐं ? सारी खाली पड़ी है ? आपको कैसे पता चला ? खाली है यानी ?'

'यानी खाली है। वहाँ राज-परिवार, सैनिक या सरदार कोई नहीं है। रहा यह कि मुझे कैसे पता चला ? मुझे पता चला है, मंत्रीश्वर दामोदर की सिखाई हुई इस विद्या से कि जितना कहा जाये उतना ही करके नहीं रह जाना चाहिये।'

'सो तो ठीक है, और दामोदर भले ही मानते रहें कि युक्तियों से राज्य जीते जा सकते हैं, परन्तु धंधूकराज इस समय कहाँ हैं ? आपको कुछ पता है ?'

'चित्रकोट। वह भाग गये हैं। और इस समय वागड के सत्यदेव परमार के अतिथि होंगे।'

'आपको यह खबर कहाँ से मिली ? कहीं दामोदर ने ही तो इसकी व्यवस्था नहीं कर रखी थी ?'

'मन्त्रीश्वर नीतिज्ञ हो सकते हैं, युक्ति-चातुर्य उनमें हो सकता है, लेकिन वे दुष्ट नहीं। वह भला इस तरह की व्यवस्था क्यों करने लगे ! और खासकर उस समय जब कि आप धंधूकराज को अपने वश में करने के लिए आये हुए हों ! क्या आप स्वयं भी पाटन के नहीं हैं ?'

'यानी धंधूकराज भोजदेव की शरण में चले ही गये। तो इसका अर्थ यह हुआ कि अब मालवा के साथ लड़ना....'

'मालवा के साथ लड़ने की जरूरत ही क्या है, महाराज ? धंधूकराज जैसे गये क्या वैसे ही लौटकर नहीं आ सकते ? पहले नगरी पर अधिकार तो कर लिया जाये ।'

'यदि दामोदर आडावला में छावनी डाले पडे न होते तो धंधूकराज संभवतः यों भागते नहीं ।' विमल ने कहा ।

'आपका खयाल है कि युद्ध करते ?'

'नहीं; हमारी सेना इतनी जल्दी आ पहुँचती कि उसे तैयारी का अवसर ही नहीं मिलता । वह लड़ता नहीं, बल्कि सन्धि चर्चा शुरू कर देता । दामोदर के आडावला में आते ही उसे इस बात की आशका हुई कि अब चित्रकोट का रास्ता रुक जायेगा । इसी लिए वह जल्दी भागा ।'

कुलचन्द्रवाली बात कार्तिक ने विमल से छुपा ली, बताई नहीं । थोड़ी देर में विमल का गजराज चित्रगुप्त आता दिखाई दिया ।

कार्तिक ने प्रणाम करके आज्ञा माँगी ।

'आप कब जा रहे हैं ?' विमल ने पूछा ।

'थोडे दिनों बाद ।'

'मुझे दामोदर को एक सन्देश भेजना है ।'

'खुशी से महाराज ! जाने लगूँगा तब लेता जाऊँगा । अभी तो मैं जरा यहाँ के पहाड़ों और दर्रों से परिचित हो लूँ । वहाँ के युद्ध में यह जानकारी उपयोगी सिद्ध होगी ।'

'दामोदर तो कहते थे कि केवल सौ सैनिकों से नड्डूल जीता जा सकता है । क्या अब भी यही राय है ?'

'मन्त्रीश्वर की राय है कि अब तो सौ सैनिकों की भी जरूरत नहीं ।'

'अच्छा ! तब तो देखना चाहिये... '

कार्तिक प्रणाम करके विदा हुआ । विमल चन्द्रावती की ओर चल दिया ।

विमल ने एक सन्देशवाहक पहले ही भेज दिया था । आधी दूर जाने

पर वह उसे लौटता हुआ मिला।

सन्देशवाहक के समाचार सुनकर विमल के आश्चर्य की कोई सीमा न रही। धधूकराज का भाग जाना तो उसकी समझ मे आता था; परन्तु नगरी के निवासियों का घर-द्वार तजकर इधर-उधर चले जाना उसकी समझ में आ न सका।

'यहाँ की जनता इतनी अधिक स्वाभिमानी है ? हम पहुँचेंगे तो दरवाजे खुले मिलेंगे !' उसने अपने साथ के अश्वारोहियों से कहा।

चलते-चलते थोड़ी ही देर में वे लोग नगरकोट के समीप पहुँच गये। दरवाजे पर एक भी चौकीदार न था; सभी फाटक खुले हुए थे। शहर के अन्दर के प्रशस्त मार्ग बिलकुल खाली पड़े थे। चारों ओर सन्नाटा था। रास्ते के दोनो ओर की विशाल अट्टालिकाएँ भी एकदम खाली थीं।

शहर का यह दृश्य देखकर विमल को परम आश्चर्य हुआ। जिस नगरी को वह जीतने के लिए आया था उसे यों अनाथ की तरह खाली पड़े देखकर उसके मन पर एक विचित्र प्रकार का गहन प्रभाव पड़ा। उसी समय उसने मन-ही-मन एक बात की गाँठ बाँध ली।

उसके साथ के अश्वारोही चारों ओर मुहल्लों में फैल गये।

'भुवन ! चित्रगुप्त को आगे बढ़ा।'

भुवन ने गजराज को दरवाजे की राह नगरी के अन्दर प्रविष्ट किया। दरवाजे की ऊँची मेहराब से लटकती स्फटिक की मुक्तामालाओं को विमल सिर उठाये देखता रह गया।

गजराज आगे बढ़ा। समूची नगरी स्फटिक शिलाओं से निर्मित थी। गजेन्द्र पर आरूढ़ दंडनायक ने चारों ओर दृष्टि डालकर देखा। श्वेत संगमरमर के सुन्दर, सुशोभित, कलापूर्ण, स्वच्छ और रुपहले मकान एक दूसरे से कन्धा भिड़ाये इस तरह खडे दिखाई दिये कि पहली ही दृष्टि में गिरिमाला के साथ समूची नगरी उसके प्राणों मे बस गई !

वह प्रमुख बाजार की ओर आगे बढ़ा।

सारा बाजार सुनसान पड़ा था। कहीं कोई जीवित प्राणी दिखाई नहीं दिया। विजेता की विजय-यात्रा को देखने के लिए कहीं भी लोगों की भीड उसे दिखाई नहीं दी। ज्यों-ज्यों विमल आगे बढ़ता गया नगरी का सूनापन अधिक गहरा और शल्य की तीखी नोक की तरह वेधक होता गया। मकान इस तरह लग रहे थे मानो वे जीवित व्यक्तियों के हाडपिंजर हों—मौन कंकाल जो न बोलते हों, न चलते हों, मास-चर्म-रहित हड्डियों के ढाँचे में से केवल दो आँखों से घूर रहे हों—सारा वातावरण भयंकर हो उठा था और चतुर्दिक रहस्यपूर्ण निर्जनता और एकाकीपन व्याप्त हो रहा था। आँखें फाड़-फाड़कर देखने पर भी कहीं कोई मनुष्य दिखाई नहीं पड़ता था।

स्वयं विमल के लिए भी अब वह दृश्य असहनीय हो उठा था। उसने कहा—'भुवन ! चित्रगुप्त को लौटा चल।'

महावत ने गजराज को लौटाया। उसी समय चारों ओर का निरीक्षणकर लौटते हुए सैनिक मार्ग में मिले।

'कहीं-कहीं पर कोई अपंग वृद्ध सिर पर हाथ दिये बैठा लाठी से कुत्तों को भगा रहा है। बस उसके सिवा सारी नगरी में कहीं कोई नहीं !'

'तब तो विजय की शंख-ध्वनि होने दो ! जीत के मंगलवाद्य बजने दो ! राजमहल भी खाली है न ? गणधर दीख पड़ा था कहीं ?'

'जी हाँ, वहाँ देखा तो था गणधर को। वह खड़े किसी द्वार की नकाशी को देख रहे थे।

'राजभवन भी खाली है ?'

'जी, महाराज !' गणधर भी आ पहुँचा था। उसी ने जवाब दिया, 'केवल एक बूढ़ा सैनिक राजभवन पर पहरा दे रहा है। और राजभवन की शोभा का तो क्या वर्णन करूँ ? उसे राजभवन कहना उचित न होगा। वह तो इन्द्रभवन से भी बढ़कर है। बिलकुल शुद्ध श्वेत संगमरमर का उपयोग किया गया है !'

इसी बीच कुछ और सैनिक वहाँ आ पहुँचे। गणधर ने अपनी बात के सिलसिले को जारी रखते हुए कहा, 'मैंने राजप्रासाद की ड्योढ़ी पर खड़े उस वृद्ध से कहा कि मुझे भीतर जाना है, परन्तु उसने घुसने ही न दिया !'

'घुसने न दिया ?'

'जी। मैंने कहा, पूरी सेना आई है, तो उसने कहा, आई है तो आया करे। मेरी चौकी खंडित नहीं हो सकती; अखंड ही रहेगी।'

विमल ने सैनिकों की ओर देखा—'तुम तो कहते थे कि अब नगर-प्रवेश करके हम खाली पड़े शहर में बस जायें! परन्तु यहाँ तो एक चौकीदार अभी बिना झुके, बिना डिगे पहरे पर मुस्तैद है। हमारी इतनी बड़ी सेना एक बूढ़े चौकीदार से लड़े इसमें सेना की प्रतिष्ठा नहीं अ-प्रतिष्ठा ही होगी। उचित यही है कि बूढ़े प्रतिहार के सम्मान में हम शहर के बाहर ही अपने डेरे डालें। नगरी भले ही खाली पड़ी रहे। विजय के शंख फूँकने की भी अभी कोई आवश्यकता नहीं। विजय-घोष शान्त ही रहने दो। ऐसे अडिग और अनझुक योद्धा का सम्मान करना विजेता का पहला धर्म और कर्त्तव्य होना चाहिये।'

दंडनायक का गजराज नगरी से बाहर निकलने के लिए आगे बढ़ा। शहर में प्रवेश करने के लिए बढ़ते हुए सैनिकों के पाँव रुक गये। छावनी में बजते हुए मंगल-वाद्य और शंख-ध्वनियाँ शान्त हो गईं। आरासुर (अरावली की एक चोटी) से लौटते हुए सैनिकों के स्वर की प्रतिध्वनि सुनता-सुनता दंडनायक अपनी पर्णकुटी में लौट आया।

१०. दृढ परमार का पहरा

'तुमने सुना ?' विमल ने अन्दर प्रवेश करते ही श्री से पूछा। तभी उसका ध्यान इस बात की ओर गया कि वह किसी वस्तु को देख रही है। इस पर उसने कहा, 'तुम यह क्या देख रही हो ? क्या है यह ?'

'स्फटिक मे उत्कीर्ण एक सूर्य-मन्दिर है !'

'कहाँ का है ? नमूना तो बड़ा ही सुन्दर है।'

'महाराज धंधूकराज की पुत्री लाहिनी देवी द्वारा निर्मित यह मन्दिर अरावली पर्वत-श्रेणी में स्थित वटेश्वर में है। गणधर भी ठीक इस नमूने-जैसा एक नमूना तैयार करने के लिए प्रयत्न कर रहा है। लेकिन हाँ, आप मुझसे क्या कह रहे थे ?'

'धंधूकराज या अन्य कोई भी नगरी मे नहीं है !'

'नगरी में नहीं हैं ? कहाँ गये ?'

'भाग गये ?'

'भाग गये ? अरे ! सब भाग गये ? क्या नगरी में सच ही कोई नही ?'

'उँहुं, हैं—केवल लँगड़े, लूले, बूढे और कुत्ते !'

'और महाराज ! वह भी तो है !' गणधर ने कहा—'राजमहल का वह बूढ़ा अकेला चौकीदार। और राजभवन तो ऐसा है, ऐसा है कि क्या बखान करूँ ! अन्दर आदमी नहीं हैं, इसलिए ...'

'इसलिए क्या ? क्या कह रहा है तू गणधर ?'

'कह रहा हूँ, मा, यही कि यदि चाँदनी रात में श्वेत संगमरमर की इस नगरी को देखा जाये तो ऐसा लगेगा मानो किसी का मनोरम स्वप्न

साकार होकर यहीं स्थिर हो गया है। महाराज! प्रतीत होता है कि एक वस्तु की ओर आपका ध्यान भी नहीं जा पाया!'

'कौन-सी वस्तु?'

'नगरी ऊजड़ है, इसलिए लोगों के बिना हमें उसमें मजा नहीं आता; हमारा स्वभाव ही कुछ इस तरह का बन गया है। बाकी नगरी की समग्र रचना एक बार नहीं, पाँच-पचास बार घूम-फिरकर अच्छी तरह देखने-जैसी है। पत्थर की नक्काशी और संगमरमर में शिल्पियों द्वारा उत्कीर्ण भास्कर शिल्प की तुलना में तो, महाराज, अवन्तीनाथ की धारा नगरी निरा गँवई गाँव मालूम पड़ेगी। अहा-हा, कितना स्वच्छ, श्वेत दूध जैसा स्फटिक काम में लाया गया है!'

'गणधर! आज ही तो पूनों की रात है। रात में चलकर जरूर नगरी देखना चाहिये।' श्री ने कहा।

'आपको अच्छा भी लगेगा।' गणधर ने कहा।

'अच्छा क्यों न लगेगा? सब अच्छा लगेगा। तू चल तो सही। ऐसी नगरी फिर कब देखने को मिलेगी? अभी खँड़हर जैसी स्थिति में है तो अवश्यमेव कुछ-न-कुछ कहेगी!'

'क्या कहेगी?' विमल ने पूछा।

'यह बात अभी से कैसे बतलाई जा सकती है, महाराज? लेकिन सूने एकाकी खँड़हरों को देखकर क्या आपको कुछ नहीं होता? हम लोग पंचासर गये थे तब आपको याद होगा, वहाँ के ध्वंसावशेषों ने हमें कितना कुछ कह सुनाया था?'

'मुझे तो एक दूसरी ही बात, गणधर कह रहा था वह, याद आ रही है।'

'कौन-सी?'

'गणधर, तू ही न कह रहा था कि भृगुकच्छ उतरनेवाले अनेक जावा-निवासी जब नंदगिरि (आबू) देखने आते हैं, तो कुछ-न-कुछ

स्मृति-चिन्ह ले जाते हैं।'

'मैंने तो आज ही इस संगमरमर की नगरी में प्रवेश किया और उसी समय मन-ही-मन निश्चय कर लिया। धंधूकराज को हराने में मजा ही क्या है? अधिक महत्व तो उसे जीतने में है। जिसने संगमरमर की इतनी सुन्दर नगरी का निर्माण किया है उस धंधूकराज को यहाँ जीतने की अपेक्षा मेरा तो मन होता है कि ठेठ जावा जाकर विजय प्राप्त की जाये!'

'महाराज! काम तो अद्भुत है; दूसरा हाथ भी यदि सहारा दे तो युग-युगान्तर तक नाम अमर करने जैसी अनुपम रचना का यहाँ निर्माण हो जाये।' गणधर ने कहा।

विमल सोचता रहा।

'परन्तु दामोदर का क्या होगा? आप कहते हैं कि मुझे धंधूकराज को जीतना है, हराना नहीं! दामोदर इसे मानेंगे? और महाराज भी स्वीकार करेंगे?

'देवी, सुनो! महाराज भीमदेव को यदि यहाँ रहना हो तो खुशी-खुशी चले आयें; बाकी मुझे तो धंधूकराज को जीतना है, हराना नहीं!'

'परन्तु धंधूकराज स्वीकार न करें, महाराज की समझ में न आये और ऐसा ही कुछ हो जाये तो आप क्या करेंगे? कहीं व्यर्थ ही एक नया संघर्ष खड़ा न हो जायेगा?'

'मैं तो आरासुरी देवी के संस्थान में जाकर बैठ जाऊँगा। गणधर वहाँ होगा। तुम भी साथ रहोगी। मा जगदम्बा होंगी। संगमरमर के पहाड़ होंगे। इससे अधिक मुझे कुछ नहीं चाहिये। क्यों गणधर, ठीक है न?'

'महाराज! यहाँ के संगमरमर के पहाड़ों को देखकर मेरा तो मन जाने कैसा करने लगता है। जगदम्बा ने बैठने के लिए कितना बढ़िया स्थान पसन्द किया है!'

उस रात विमल पुनः गजराज पर चढ़कर एक बार और नगरी को देखने के लिए गया। श्री पीछे बैठी थी। गजराज धीर-मन्थर गति से आगे बढ़ रहा था।

उनके पीछे दो घुड़सवार लम्बे-लम्बे भाले लिये धीरे-धीरे चले आ रहे थे।

पहाड़ों पर चाँदनी छिटकी हुई थी। पहाड़ियों के ऊपर बनी हुई अनेक मनोरम और छोटी-छोटी छतरियों के सन्निकट सोलंकी चौकीदारों ने अलाव जला रखे थे। ऐसा लग रहा था मानो अर्बुद-गिरि पर दीपमाला जगमगा रही हो। संगमरमर की नगरी के प्रासादों की स्फटिक निर्मल चन्द्रशाला (छज्जा) में उन दीपमालिकाओं का प्रतिबिम्ब ऐसा प्रतीत होता था मानो किसी नववधू के कपोल पर प्रियतम के स्नेह-भरे अस्फुट शब्दों को सुनकर लज्जा की शोभा निखर आई हो।

विमल के गजराज ने जब नगरी में प्रवेश किया तो वहाँ की दशा देखकर श्री की छाती धक-से रह गई।

छोटे-बडे अनेक भवन चाँदनी में नहा रहे थे। जगह-जगह स्फटिक की अनुपम शोभा प्रकट हो रही थी। पीछे-पीछे चला आता गणधर तो स्थान-स्थान पर उस शोभा को देखने के लिए रुक-रुक जाता था।

इसी तरह गजराज घूमने लगा। विमल के मन की स्थिति इस समय कुछ और ही हो रही थी। रसिक नागरजनों के द्वार पर उत्कीर्ण सुन्दर प्रतिमाएँ मानो सजीवन होकर निमन्त्रण देतीं-देतीं हठात् मौन खड़ी रह गई थीं।

घूमते-फिरते वे राजमहल के समीपवाले विशाल चौक मे आये। वहाँ की स्तंभावली अद्भुत थी। खम्भों में उत्कीर्ण नाजुक प्रतिमाओं में नीचे से ऊपर तक अंकित स्फटिक की मंडनाकृतियों में इतना शिल्प-सौन्दर्य भरा था कि देखते-देखते आँखें थक जातीं, फिर भी सौन्दर्य और शोभा का पार न आता। प्रतिमाएँ तो इतनी प्राणपूरित और सजीव बन

पड़ी थीं कि ऐसा लगता था मानो अभी अपनी सुरम्य वाणी से वातावरण को झंकृत कर देंगी। उन मूर्तियों की एक-एक रेखा, भंगिमा और अवयव में विशुद्ध समुद्र फेनोज्ज्वल स्फटिक, दूध जैसी धवल पाडुर चाँदनी और गणधर जैसे रसिक शिल्पी की कल्पना! उन सौन्दर्य-मूर्तियों को ठीक से देखने के लिए विमल स्वयं हाथी से नीचे उतर आया। घुड़सवार ठिठककर थोड़ी दूर खड़े रह गये। दंडनायक राजमहल के सिंहपौर के समीप आ पहुँचा। गणधर और श्री सभी वहाँ अवाक् खड़े सिंहपौर की अनुपम शोभा को देख रहे थे। इस समय चाँदनी मे वहाँ के सौन्दर्य ने अलौकिक रूप धारण कर लिया था।

आबदार खरे मोतियों की तरह जगमगाती स्फटिक की अनगिनत मुक्ता-मालाओं से द्वार भरा-भरा लग रहा था। दोनों बाजुओं पर पहरेदारों और दीप-कन्याओं की सुशोभन प्रतिमाएँ बनी थीं। विमल उन्हें निकट से देखने के लिए आगे बढ़ा। उसी समय राजमहल के अन्दर की ओर से आता हुआ मशाल का उजाला दिखाई पड़ा और दूसरे ही क्षण कुछ लरजता, परन्तु साथ ही दृढ़ और सुननेवाले को कम्पित करता हुआ बुलन्द स्वर सुन पड़ा—'कौन खड़ा है वहाँ? कौन है?'

'महाराज! यही है वह बूढ़ा चौकीदार!' गणधर ने विमल से कहा।

'वही है यह?'

इस बीच वह वृद्ध चौकीदार मशाल थामे हुए सिंहपौर के बाहर आ गया था। मशाल के प्रकाश में मानो अग्नि-स्नान कर रही हो, इस प्रकार उसकी सफेद लम्बी डाढी शोभायमान हो उठी थी। वह आपादमस्तक शस्त्रास्त्र धारण किये था। कमर में कटार थी। बगल से लम्बी तलवार झूल रही थी। एक हाथ में वज्र-जैसा भाला था। माथे पर बड़ी-सी पाग थी। आयत लोचनों मे स्वप्निल मस्ती भरी थी। बाहर आकर वह अपने हमेशा के पहरे की जगह पर खड़ा हो गया।

'कौन है ?' व्यग्रता से कुछ कम्पित पर दृढ़ स्वर में उसने पुनः पूछा, 'कोई जवाब क्यो नहीं दे रहा ?'

'दंडनायक हैं !' गणधर ने प्रत्युत्तर दिया।

'दंडनायक कौन ?'

'महाराज पाटनपति भीमदेव के दंडनायक विमलराज !'

प्रतिहार ने अपने हाथ की मशाल दीवाल में बने हुए लकड़ी के एक हत्थे मे फँसा दी। फिर उसने कटार सँभाली, तलवार पर हाथ धरा और भाला तोलने लगा। विमल उसके इन सभी क्रिया-कलापों को देखता रहा। प्रतिहार ने एक डग आगे बढ़कर कहा—'किसने कहा, दंडनायक है ? यहाँ कोई दंडनायक नहीं। कोई सरदार या सेनापति नहीं। यह तो परमारों की नगरी है। परमारों के सिवा इसका और कोई मालिक नहीं। यह किसने कहा कि दडनायक है ? किसका दंडनायक ? कहाँ है वह दंडनायक ?'

'धंधूकराज तो भाग गये हैं।'

'किसने कहा ? और भाग भी गये तो क्या हुआ ? मैं उनका चौकी-दार जो यहाँ बैठा हुआ हूँ।'

'ड्योढ़ीवानजी, सोलंकियों की सारी सेना यहाँ आ पहुँची है।'

'सारी सेना आये या समूचा राज्य ही आ जाये, उससे होता क्या है ? दंड परमार की चौकी तो सात-सात पीढ़ियों से अखंड, अटूट चली आ रही है। जब तक दंड परमार राजमहल के पहरे पर खड़ा है ऐसा कोई राजपुत्र जन्मा ही नहीं, जो इस चौकी को पार कर सके ! वहाँ वे दो घुड़सवार कौन खड़े हैं ? जानते नहीं, परमारों का राजमहल है ? परमारों के राजमहल पर दंड परमार का अखंड और अभेद्य पहरा है। जगदम्बा की ज्योति टले, जग-दम्बा का आसन डोले तभी परमार की चौकी डिग सकती है। कौन इस चौकी को पार करनेवाला पैदा हुआ है ? पता नहीं, यह दंड परमार की चौकी है ?' जोर से बोलने के कारण कुछ गूँजता हुआ, कुछ फटा हुआ-

सा, कुछ काँपता हुआ और सुननेवालों की शिरा-शिरा को कम्पायमान करता दंड परमार का वह ओजभरा स्वर सुनकर गणधर दो डग पीछे हट गया।

'दंड परमार ! नगरी तो सारी खाली हो गई है ।' विमल ने शान्ति-पूर्वक कहा—'अब तुम किस पर पहरा दे रहे हो ?'

'पहरा दे रहा हूँ राजमहल पर ।' दंड ने अभिमान से कहा ।

'क्या राजमहल मे कोई रानीजी रह गई हैं ?' विमल ने और भी शान्त स्वर में पूछा ।

'यह राजमहल तो किसी भी दिन खाली नहीं रहता । इसमें किसी के रहने-न रहने से मतलब ? तुमने सोच लिया कि कोई नहीं रहता, क्या इसी लिए कोई नहीं रहता, क्यों ? सात-सात पीढ़ियों की वंश-परम्परा से राज-महल का पहरा तो हमारे ही परिवार मे चला आ रहा है । हमने तो इसे किसी दिन खाली देखा नहीं । राजमहल पर हमारा पहरा यानी राजमहल पर हमारा पहरा । इसमे मीन-मेख हो ही नहीं सकती । दंड परमार है, दंड परमार की तलवार है और जब तक राजमहल है, कोई इस ड्योढ़ी मे पैठ नहीं सकता । महाराज अर्बुदपति के स्वयं पधारने पर ही दंड परमार की चौकी यहाँ से हट सकती है, नहीं तो नहीं ।' बूढ़ा कहते-कहते काँप उठा —'तभी चौकी यहाँ से हट सकती है !' वह गरज उठा ।

'कल लूणवीर नायक को भेजना चाहिये, महाराज ! उनके आते ही चौकी उठ जायेगी ।' दोनों घुड़सवार समीप आ गये थे, उनमें से एक ने कहा ।

'कौन बोला है यह ? यह किसने चौकी उठाने की बात कही ? कौन है यह दो सिरवाला ?' दंड परमार ने गरजकर कहा । उसका बूढ़ा शरीर काँपने लगा । उसने शपाक से अपनी तलवार म्यान में से खींच ली— 'हे माता आरासुरी ! हे मेरी जगज्जननी ! अब तक तूने मेरी लाज रखी है, आज भी अपने बेटे की लाज रखना । मेरी चौकी अखंड रहे, ऐसा ही करना, माता !'

'सात पीढ़ियों से अखंड चली आती चौकी मेरे हाथों खंडित हो उसके बदले तो मरना अच्छा!' ऐसी अशेष श्रद्धा ने उसके स्वर में इतना आर्त्त कम्पन्न उत्पन्न कर दिया था कि विमल भी उसके प्रभाव से अछूता न रह सका। अपनी रक्षा के लिए आगे बढ़ते हुए सैनिकों को उसने हाथ के संकेत से बरज दिया। दंड परमार का चेहरा वीर-भक्ति के प्रकाश से दमकने लगा था। वह अब भी कह रहा था—'माता, यह देह तेरी जिस गोद से प्राप्त हुई है उसी गोद में इसे पुन. समर्पित करता हूँ। स्वीकार करना मेरी मैया!' और जनोइया (भंडारा) वार करने के लिए उसने एक डग आगे बढ़ाया। 'दंड परमार की चौकी उठाने के लिए यह कौन आया हैं, ऐं!' उसके स्वर में दृढ़ निश्चय की टंकार थी।

विमल ने जरा-सा भी घबराये बिना कहा—'तुम्हारी चौकी को कोई भी नहीं उठाता, परमार! सँभाले रहो उसे।' और उस घुड़सवार की ओर उलहना-भरी आँखों से देखते हुए उसने कहा—'सोलंकी सेना में तू कब से है?'

'दो-एक बरस से, महाराज!'

'नया है न, तभी नासमझी की बातें करता है। सोलंकियों के दल को अकेले आदमी का सामना करते कभी सुना भी है? ऐसा करने से सोलंकियों की शोभा और प्रतिष्ठा बढ़ेगी? दंड परमार, तुम निश्शंक अपना पहरा दो।'

दंड परमार का वृद्ध शरीर इस अवस्था मे इतनी उत्तेजना सह न सका। जोश और तज्जनित क्लान्ति के कारण वह गिरने-गिरने हो आया। यह बात विमल से छिपी न रह सकी। उसने अत्यधिक शान्ति से, मानो दंड परमार के स्वाभिमान की सादर अभ्यर्थना कर रहा हो, इस तरह कहा—'परमार! दंड परमार! तुम अपनी चौकी सँभाले रहो! तुम्हारी चौकी में कोई आ न सकेगा। चलो गणधर! लौट चलें! यहाँ तो दंड परमार का पहरा है। इनकी चौकी अखंड है। चलो, लौट जायें।' और

वहाँ से लौट चला।

विमल अपने गजराज के समीप आया। सब उसके पीछे पीछे चले आ रहे थे। श्री ने एक बार मुड़कर पीछे की ओर देखा। दीवाल के हत्थे में खोंसी हुई मशाल को अपने हाथ में लेकर वह पुनः अपनी जगह पर जमकर खड़ा हो गया था। सतर्कतापूर्वक वह अपने पहरे पर सन्नद्ध था। और मानो धंधूकराज वहाँ उपस्थित हों, इस प्रकार उसने प्रतिहारी निर्घोष किया—'पहला पहर—महाराज अर्बुदपति की जय! चौकी परमार दंड की! रखवाली माता अम्बा भवानी!'

विमल ने इन शब्दों को सुना और उसके चेहरे पर मुस्कराहट फैल गई। 'गणधर!' उसने गजेन्द्र पर चढ़ते हुए कहा—'क्या तू सच ही डर गया था? दो डग पीछे क्यों हट गया था?'

'महाराज! मुझे डर लगा? और सो भी आपके सान्निध्य में?'

'परन्तु तू पीछे तो हटा था, गणधर! जब दंड परमार ने तलवार खींची और एक पग आगे बढ़ाया उस समय की बात है। देखा तो मैंने भी था।' श्री ने समर्थन करते हुए कहा।

'वह तो महाराज, दंड परमार ने तलवार उठाई और वह दो डग आगे बढ़ा तब मुझे याद आ गया, इसलिए मैं दो पग पीछे हटा था।'

'क्या याद हो आया था, गणधर?'

'भगवान सोमनाथ के मन्दिर में अखंड पहरा देनेवाले पार्षद की स्थापना करनी है—यह दंड परमार ही वह पार्षद होगा। उसकी प्रत्याकृति को मन में ठीक से धारण करने ही के लिए में उस समय दो पग पीछे हटा था।'

'आ हा! गणधर! मेरी भी तू कहीं स्थापना करेगा या नहीं?'

'आपकी स्थापना? आपकी स्थापना मैं कैसे कर सकता हूँ? आपकी प्रतिमा तो माताजी, मैं गढ़ता हूँ, गढ़ता हूँ और वह अधूरी ही रह जाती है। पूरी बनाकर भी उसमें बनाने को कुछ रह ही जाता है। मैं रंक उस

"कुछ" को कहाँ से गढ़ पाऊँ, कैसे पूरा कर पाऊं ?'

'क्या रह जाता है, गणधर ?' विमल ने पूछा।

'महाराज, इनकी प्रत्याकृति तो मैं गढ़ लेता हूं, बिम्ब से बिम्ब मिला देता हूं; लेकिन इनका जीवन परिमल उस प्रतिमा को मैं रंक कहाँ से और कैसे लाकर दूं? जीवन को सुगन्ध तो बेचारे बड़े-बड़े शिल्पी भी नहीं दे पाते, फिर मुझ बपुरे की क्या बिसात ?'

विमल ने श्री की ओर देखा—'गणधर की बात सच है, देवी! तुम्हारे सान्निध्य में स्वयं मुझे जो अनुभूति होती है उसे मैं भी कह नहीं सकता।'

'अजी रहने भी दीजिये आप।' और फिर गणधर की ओर देखकर श्री ने कहा—'यह तो हैं ही कवि, बल्कि कवियों के भी कान काटनेवाले, सुना गणधर! तू मेरी बात का जवाब दे, कहीं मेरी भी स्थापना करेगा, या नहीं ? क्या तू मुझे कहीं ऐसी जगह स्थापित नहीं कर सकता जहाँ युग-युग तक मनुष्य की चरण-रज मुझे मिलती रहे ?'

'और उस चरण-रज को लेनेवाले के समीप ही, गणधर, तू मुझे स्थापित करना, जिससे मैं नित्य इसकी चरण-रज ले सकूँ।'

श्री के चेहरे पर व्याप्त मन्द मुस्कराहट को गणधर देखता रह गया। उसने कहा—'देवी मा! आपको तो मैं प्रस्तर में तभी उत्कीर्ण कर सकता हूँ जब क्षण-भर के लिए माता अम्बा भवानी मेरे हृदय में आ बैठें।'

और श्री की उस मुस्कराहट को अपने अन्तर में अंकित करते हुए उसने अत्यन्त धीमे से कहा—'इस आत्मिक सौन्दर्य और हृदयगत वैभव को बेचारा शिल्पी किस तरह अंकित कर सकता है, देवी मा!'

'परन्तु मैंने तुझसे जो पूछा, उसका जवाब तो दे, गणधर! तू मुझे इसके सान्निध्य में स्थापित करेगा या नहीं ?' विमल ने पूछा।

'और गणधर, मुझे इनके सान्निध्य में!' श्री ने कहा।

गजराज चल पड़ा। उसकी घंटियों की टुन-टुन और घुड़सवारों की प्रतिध्वनियों में गणधर का उत्तर डूबकर रह गया।

११. वटेश्वर के मन्दिर में

कुछ समय के बाद कार्तिक स्वामी वटपुर के लिए रवाना हुआ। अब उसके पास दामोदर को देने के लिए बहुत-सी जानकारी हो गई थी।

दंड परमार की अखंड चौकीवाली घटना के बारे मे जब पूर्णपाल ने सुना तो उसे विमल के प्रति आकर्षण हुआ। विमल और धंधूकराज के बीच सन्देशों का आदान-प्रदान भी प्रारम्भ हो गया था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि दुर्बलचित्त राजा जितनी जल्दी भाग गया था उतनी ही जल्दी लौट भी आये तो कोई आश्चर्य नहीं। चित्रकोट के मार्ग में विमल को उनसे एक बार गुप्त रूप से भेंट करने मे सफलता भी मिल चुकी थी।

परन्तु कार्तिक स्वामी के द्वारा विमल ने दामोदर का जो सन्देशा भेजा था उसमें इस बात का कोई उल्लेख नहीं था। उस सन्देश मे तो केवल इतना कहा गया था कि 'मुझे विश्वास है कि धधूकराज को पुनः अपने अनुकूल किया जा सकेगा।'

श्री ने भी लाहिनी देवी के नाम एक छोटी-सी सुन्दर गाथा भेजी थी।

वटपुर की वास्तविक स्थिति की कार्तिक को कोई जानकारी नहीं थी, इसलिए वह बड़ी सतर्कता से अपनी मंजिल तय करने लगा।

जयदेव के समाचार भी उसे मिले नहीं थे। वह मन-ही-मन तर्क-वितर्क करने लगा कि विमल ने चन्द्रावती नगरी के प्रति जैसा आदर-मान व्यक्त किया उसके परिणामस्वरूप यदि पूर्णपाल को अपने पक्ष में किया जा सके और धंधूकराज लौट आये तो पाटन की शत-प्रतिशत विजय में कोई सन्देह ही नहीं रह जायेगा। तब महाराज को सिन्ध पर आक्रमण करने

का अवकाश मिल जायेगा। लेकिन, भगवान ऐसा न करें, परन्तु मान लो कि मालवा और आबू एक हो गये, तब क्या होगा?

और नड्डूलवाला भी सामयिक सन्धि करके उनके साथ हो जाये तब....?

इस तरह रास्ते-भर दामोदर के साहसिक अभियान को लेकर कार्तिक चिन्तातुर और व्यथित होता रहा।

केवल एक ही बात उसे आश्वस्त करती रही और वह यह कि दामोदर वटपुर में पड़ाव डाले पड़ा है।

आडावला में अवस्थित वशिष्ठपुर अथवा वटपुर परमारों का सैनिक केन्द्र होने के साथ ही तीर्थस्थान भी था। चन्द्रावती और नड्डूल के बीचोबीच बसे होने के कारण उसका सामरिक महत्व भी बहुत अधिक था। भौगोलिक स्थिति के कारण वहाँ रखी गई सेना एक साथ नड्डूल, चन्द्रावती और कुछ अंशों तक मालवराज के चित्रकोट पर भी नजर रख सकती थी। दोनों की आपसी हलचल और व्यवहार को ध्यान में रखने के साथ ही जब चाहे तब नडूल को चन्द्रावती से या चन्द्रावती को नडूल से पृथक् भी किया जा सकता था।

अर्बुदपति धंधूकराज की पुत्री लाहिनी देवी यहीं निवास करती थी।

उसने यहाँ लाहिनी बावली नामक एक अत्यन्त रमणीक बावली का निर्माण भी करवाया। उस छोटी-सी मनोरम बावली में बारहों महीने पानी रहता था। सरस्वती के तट पर उसने एक अतीव सुन्दर सूर्य-मन्दिर भी बनवाया था। विधवा हो जाने के बाद संसार का परित्याग कर वह यहीं रहने लगी थी। राजनीति और शासन कार्यों में उसका तनिक भी दिलचस्पी नहीं थी। अपने प्यारे भाई पूर्णपाल के स्नेह से प्रेरित होकर कभी-जभी हिस्सा ले लेती, परन्तु जिस प्रकार आदमी हाथ में लगी धूल को झटक देता है, उसी प्रकार वह भी इन झंझटों को तत्काल झटक देती थी। वटपुर का उसके लिए न काई मूल्य था, न कोई चिन्ता। उसके

लिए तो जो कुछ था, वटेश्वर का मन्दिर ही था, वही उसका स्वर्ग और काम्य था। नदी के उस पार वटपुर में कौन आया और कौन गया, किसने क्या किया और क्या न किया, यह सब उसके लिए अति तुच्छ बातें थीं। उसके मन की गति, मति और जीवन का रस भी केवल मन्दिर के नित्य कर्मों में ही था। धंधूकराज को उसने सन्देशा भेजा था जरूर, लेकिन उसमे उसका कोई राजनैतिक हेतु नहीं था। एक दिन सवेरे उठकर उसने देखा कि नदी के उस पार वटपुर के अगणित वट-वृक्षों की छाया में कोई विशाल सेना रातोरात आ पहुँची और पड़ाव डाल चुकी थी—घोड़े हिनहिना रहे थे, हाथियों की कतारें झूलने लगी थीं, पट्टकुटियाँ तैयार हो गई थीं और सैकड़ों-हजारों सैनिक उस अंचल मे आ-जा रहे थे। एक ऊँचे वृक्ष पर सोलंकियों का कुक्कुट ध्वज भी लहराता हुआ उसे दिखाई दे रहा था। उसके आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रह गई। धंधूकराज के साथ पाटनपति के मनमुटाव की जानकारी तो उसे थी, परन्तु बात यहाँ तक बढ़ गई है, इसका उसे गुमान भी नहीं था। परमारों की धरती पर इस तरह कोई आ बैठे और अपनी पताका लहराने लगे यह उसके लिए विस्मय की ही बात थी। इसलिए वह अपने स्थान से चलकर समीपस्थ शिव-मन्दिर में राजपुरोहित रुद्रराशि से भेंट करने गई, जो कुछ ही दिन हुए अम्बा भवानी के मठ से इस ओर आया हुआ था।

रुद्रराशि मन्दिर के गर्भगृह में अपने नित्य कर्मों में तल्लीन बैठा था। थोड़ी देर बाद वह बाहर आया। लाहिनी ने भक्तिपूर्वक उसे प्रणाम किया और पूछा—'गुरुजी! यह सामने के किनारे पर, वटपुर में कौन आया हुआ है?'

'वटपुर मे?' रुद्रराशि ने साश्चर्य पूछा—'कल शाम तक तो कोई न था।' हाथ को नाक के पास लाकर स्वरोदय की अपनी विद्या का परिचय देता हुआ वह मन्दिर के प्रागण मे आया और उस पार किनारे पर स्थित वृक्षों के झुरमुट की ओर देखने लगा।

'पताका पर तो मेरी माता बहुचराजी का कुक्कुट दिखाई पड़ रहा है।'

'यह ध्वज-चिन्ह तो पाटन के सोलंकियों का है। वही तो नहीं हैं?'

'हाँ; हैं तो सोलंकी ही। कहीं भीमदेव महाराज स्वयं तो नहीं आये हों?'

'वहाँ से—चन्द्रावती से आप रवाना हुए तब वहाँ कोई खबर नहीं थी?'

'नहीं, मैं चला तब तो वहाँ शान्ति ही थी। यही अनुमान था कि महाराज भीमदेव नडूल जायेंगे—अर्बुदगिरि को दाहिने हाथ पर छोड़ते हुए सीधे उधर निकल जायेंगे। हमें और नडूलवाला, दोनों को एक साथ नहीं ही छेड़ेंगे। दंडनायक विमल के रुष्ट होने के संवाद भी मिले थे और यह खयाल किया जाता था कि यदि वह आये भी तो हमारे अनुकूल ही रहेंगे। फिर अचानक यह क्या हो गया? हम महाराज को समाचार तो भेज ही दें—शायद हमारी चौकी को भी इन लोगो ने हटा दिया है।'

'हाँ, लगता तो यही है। लेकिन आप जो भी सन्देशा भेजें, मौखिक ही भेजियेगा।'

'क्यों?'

'महाराज हुए तो उनके साथ दामोदर मेहता भी अवश्य होगा!'

'होगा तो रहे। उसके रहने से क्या होता है?'

'मुझे यह मालूम है कि पिताजी भीमदेव महाराज से खुशी-खुशी लड़ने को तैयार हैं। दंडनायक विमल को तो वह अपना मित्र ही समझते हैं परन्तु इस महाविचक्षण दामोदर से वह काँपते हैं। वह अक्सर कहते रहते हैं, कि दामोदर कब लडेगा, न इसका कुछ पता चल पाता है न इसी का कि वह किस तरह लड़ेगा; इसलिए उससे मुठभेड़ करने में मुझे मजा नहीं आता, युद्धानन्द का सुख नहीं मिल पाता।' इतना कहने

के बाद हठात् उसे ख्याल हो आया कि अरे, मैं तो इन दुनियावी बातों में आवश्यकता से अधिक रस ले रही हूँ, इसलिए तत्काल चर्चा को समाप्त करने के ढंग पर उसने कहा—'गुरुजी, आप पिताजी को सन्देशा भेज दीजियेगा। मेरा जप अभी अधूरा ही रह गया है।'

'तुम्हारे ही नाम से सन्देशा भेजूँगा, जिसमें महाराज दोनों ओर से घिर न जायें और समय रहते ही चित्रकोट पहुँच सकें।'

'हाँ, ऐसा ही कीजिये। यों तो चौकी तोड़ दी गई है और वे सैनिक भी पहुँच ही गये होंगे, फिर भी हमारा सन्देशा ज्यादा ठीक और प्रामाणिक रहेगा। नमः शिवाय।' लाहिनी ने रुद्रराशि को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया।

'शिवाय नमः।' रुद्रराशि ने प्रत्युत्तर दिया और मन्दिर के गर्भगृह में लौट आया।

रुद्रराशि ने थोड़ी देर बाद गुप्त रीति से महाराज के नाम सन्देशा भेज दिया और स्वयं मन्दिर के विशाल प्रांगण में एक वट-वृक्ष की छाया-तले मृगचर्म बिछाकर बैठ गया और 'नमः शिवाय' का जप करने लगा।

रुद्रराशि बैठा जप तो कर रहा था, लेकिन सच पूछा जाये तो उसका ध्यान समुद्र-तट पर अवस्थित अक्षय वैभववाले और महाप्रतापी सोमनाथ के मन्दिर की ओर लगा था।

वह स्वयं नर्मदा-तट के चौंसठ जोगिनियोंवाले भृगुतीर्थ (भेड़ाघाट) से इस ओर आया था। कुछ समय महाकाल में भी रहा था; परन्तु उसकी महत्वाकांक्षा सोमनाथ का मठाधिपति बनने की थी। पाटन जाने की वह तैयारियाँ कर रहा था। गीर्वाण (संस्कृत भाषा के गेय छन्दों) में रची हुई भगवान सोमनाथ की एक अद्भुत प्रशस्ति उसने एक बार दामोदर को भेजी थी; और दामोदर ने भी एक स्वनिर्मित श्लोक उसे भेजा था। परन्तु इसी बीच गजनवी का हमला हो गया और महाकाल से चलकर सोमनाथ पहुँचने के बदले वह धंधूकराज की चन्द्रावती में ही टिककर रह

गया था। चन्द्रावती में रहते हुए भी वह सोमनाथ के दरबार में बैठने के सपने देखा करता था। उसकी वह महत्वाकाक्षा अभी तक पूरी नहीं हो पाई थीं।

महत्वाकाक्षा एक प्रकार की संजीवनी बूटी है। यह जीवन-रसायन कइयों को तारता, तो कइयों को मार भी देता है। रुद्रराशि ने अनेक सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। उसने कई ग्रहों, उपग्रहों यहाँ तक कि सूर्य और चन्द्र को भी अपने वस में कर रखा था। लेकिन वही रुद्रराशि अपनी महत्वाकाक्षा-रूपी अदम्य क्षुधा पर काबू न पा सका था।

बाकी, लोकमतानुसार तो उसकी योग-सिद्धियाँ अनुपम थीं। अपने योगबल के प्रताप से वह बड़े-बड़े सामर्थ्यवानों को अपने वश मे करता और अपने ज्योतिष-ज्ञान की बदौलत अच्छे-अच्छों के होश फाख्ता कर देता था। उसकी दसों अँगुलियों के पोरों पर निखिल भूमण्डल के ग्रह विराजमान हो जाते थे। उसकी नखांगुलियों में नवों ग्रहों के चित्र थे। वह अपने मुँह से यह कभी नहीं कहता था कि अमुक ग्रह की बाधा है, क्योंकि सभी ग्रह उसके परम मित्र थे। केवल अँगुली दिखला देता था और उस अँगुली के नख मे खचित ग्रह की नन्हीं-सी आकृति मनुष्य को उसका भविष्य बतला देती थी।

लेकिन इतना सब होते हुए भी वह अभी तक स्वयं अपने ही जीवन के ग्रह को शुभ स्थान में प्रतिष्ठित न कर पाया था।

इसी लिए उसे इस बात में कोई दिलचस्पी नहीं थी कि धंधूकराज चित्रकोट जाते हैं अथवा महाकालेश्वर। उसे तो इस महान अवसर का अपने मनोनुकूल उपयोग कर लेना था। यदि इस समय वह सोमनाथ के मन्दिर का अधिपति न बन सका, तो जीवन में कभी उस स्थान पर पहुँच नहीं सकेगा। इसके लिए सबसे पहले दामोदर को मनोनुकूल करना आवश्यक था।

वटेश्वर आने के पहले से ही दामोदर ने एक बात प्रचारित कर रखी

थी। वह यह कि भीमदेव महाराज वटेश्वर के सूर्य-मन्दिर में कोई अनुष्ठान करनेवाले हैं, कुछ समय वहीं रुकेंगे, उसके बाद आगे बढ़ेंगे।

उड़ती-उड़ती यह खबर रुद्रराशि के कानों में भी पड़ी और उसके कान सतर्क हो गये।

एक दिन नित्यकर्म से निवृत्त होकर वह अपने नियमानुसार वट-वृक्ष के नीचे मृगचर्म पर बैठा जप कर रहा था। उस समय बाहर किसी के हाथी का घटानाद सुनाई पड़ा।

आगन्तुक के बारे में रुद्रराशि अभी कल्पना भी नहीं कर पाया था कि एक विनीत, शान्त, औसत कद का अति सरल व्यक्ति अन्दर आता दिखाई दिया। पहली दृष्टि मे अत्यन्त सामान्य—अनाकर्षक—दिखाई पड़नेवाला वह व्यक्ति पाटन-जैसे महान राज्य का मंत्रीश्वर होगा, यह खयाल तो किसी को हो ही नहीं सकता था। रुद्रराशि भी यही समझा कि कोई स्थानीय पदाधिकारी होगा। वह हाथ में माला लिये जप करता रहा। दामोदर उसकी ओर चला आ रहा था।

दामोदर अकेला आया था। उसके साथ कोई न था। इस कारण से भी रुद्रराशि को खयाल न हो सका कि यह सरल-सामान्य व्यक्ति पाटन का विधाता है। दामोदर बिलकुल समीप आ गया। उसने खड़े होकर भक्ति-भाव से रुद्रराशि को प्रणाम किया। रुद्रराशि ने हाथ बढ़ाकर उसे आशीर्वाद दिया। दामोदर उसके निकट आया और सामने पड़े एक आसन पर बैठ गया। उसके वहाँ बैठते ही रुद्रराशि ने जरा ध्यान से उसकी ओर देखा और देखते ही उसका भ्रम दूर हो गया। दूर से जो व्यक्ति विनम्र और सरल प्रतीत होता था अब उसकी आँख में मानो सारी दुनिया का पानी चमकने लगा था। उन आँखों मे बड़ा ही शक्तिशाली आकर्षण था। जिसकी ओर वे आँखें देखतीं उसे यही लगता मानो उनमें माया का सागर लहरा रहा हो! चेहरे-मुहरे और दिखावे से एकदम अनाकर्षक उस व्यक्ति कि आँखें इतनी तेजोपूर्ण और पारदर्शक थीं कि जिसे

भी देखतीं वह तत्काल आकर्षित हो जाता था। रुद्रराशि सोच-विचार में पड़ गया। अवश्य कोई बड़ा अधिकारी होना चाहिये—वह मन-ही-मन उसके पद और प्रतिष्ठा का अनुमान लगाने लगा।

तभी दामोदर हाथ जोड़कर बोला—'गुरुजी! नमः शिवाय। मैंने कहा कि बहुत दिनों से वटेश्वर में महाराज के साथ हूँ, तो चलो, आज गुरुजी के दर्शन ही कर आऊँ। नाम तो ठेठ भृगुतीर्थ से सुनता आया हूँ। लेकिन प्रत्यक्ष दर्शन का सौभाग्य आज ही हुआ।'

'शिवाय नमः!' आशीर्वाद देकर रुद्रराशि ने कहा, 'सोलंकी सेना के साथ हो न? स्थान पसन्द आया?'

'जी हाँ, भीमदेव महाराज के साथ हूँ।'

अब रुद्रराशि को सन्देह हुआ कि कहीं यही व्यक्ति दामोदर तो नहीं हो!

'महामंत्रीश्वर स्वयं तो ...' उसने कहा।

'महामंत्रीश्वर आदि-आदि बड़े नाम तो ठीक-ठाक ही हैं, गुरुदेव! मैं तो केवल महासंधिविग्रहक दामोदर हूँ।'

'ओहो! मंत्रीश्वर! स्वयं आप हैं? मैंने भी यही समझा था कि महाराज के मंत्रीश्वर ही होना चाहिये। बैठिये, विराजिये। थोड़ा आगे आ जाइये, यहाँ जरा ठंडी छाँह है। सूर्य-मन्दिर के दर्शन किये?'

'सर्वत्र घूम फिरकर दर्शन करते के पश्चात् ही आया हूँ। समस्त रचना-विधान अनुपम है। परिकल्पना तो आपकी ही होगी?'

'कल्पना भगवान सोमनाथ की।' रुद्रराशि हँसा। मन्दिर की रचना के सम्बन्ध में जो सम्मान उसे मिला वह किसी दूसरे के नाम के खाते पर न चढ़ जाये, ऐसी उसकी अभिलाषा थी। जिस तरह दामोदर ने बात कही थी उससे लगता था मानो मन्दिर की बनावट के प्रति उसके मन मे बड़ा आदर हो। इसी लिए रुद्रराशि ने किसी का नाम बतलाने के बदले बात को ऊपर-ही-ऊपर उड़ा दिया।

दामोदर को रुद्रराशि की महत्वाकांक्षा के बारे में थोड़ी-बहुत जानकारी थी। वह तीक्ष्ण, पारदर्शक दृष्टि से रुद्रराशि के हृदय मे आते-जाते प्रत्येक भाव को इस तरह देखता रहा कि रुद्रराशि को पता न चल सके।

'मुझे आपकी वह अनुपम प्रशस्ति मिली थी। मैंने भी दो-एक टूटे-फूटे शब्द भेजे थे; लेकिन इस बात को तो कई वर्ष हो गये। इस बीच गजनवी-वासियों का हमला भी हुआ। आपने भी माताजी के मठ मे अपना स्थान बना लिया। इधर जब कुछ शन्ति हुई, तो भीमदेव महाराज सोमनाथ की सेवा का विचार करने लगे थे; महाराज की अभिलाषा थी कि मठाधीश का काम करने के लिए कोई महान त्रिकालज्ञ विद्वान मिल जाये—और अब भी महाराज की यही इच्छा है—तो एक बार सारे भारतवर्ष में उसकी ख्याति कर दें। परन्तु ऐसा कोई त्रिकालज्ञ मिला नहीं और इस बीच तो बिन न्योते ही युद्ध घर के आँगन मे आ बैठा।'

'युद्ध तो राजाओं के लिए घड़ी-दो घड़ी का शौक है मंत्रीश्वर! परन्तु आपके जैसे महासंधिविग्रहक के रहते यह युद्ध कितने दिन चलने का?'

'सच है, गुरुदेव! आपकी कृपा हुई तो सब अपने-अपने धर्म का पालन करेंगे। सामन्त सम्राट की शोभा बढायेंगे! सम्राट सामन्त को अपनायेंगे। यह तो सब होगा ही। परन्तु उसके बाद भी महाराज भीमदेव की चिन्ता मिटने की नहीं।'

'फिर किस बात की चिन्ता?'

'क्यों? भगवान् सोमनाथ के चरणकमलों मे किसी त्रिकालदर्शी विद्वान को लाने और मन्दिर को भारत विख्यात करने की चिन्ता तो रहेगी ही। और आजकल भारतवर्ष में त्रिकालदर्शी है ही कौन?'

'वह भी मिल ही जायेगा, मंत्रीश्वर! वसुन्धरा कभी भी रत्नहीना नहीं होती।'

'कोई ऐसा सिद्ध सारे अर्बुद-मंडल में है भी ?'

दामोदर को मन-ही-मन हँसी आ गई। वह जानता था कि अभी दूसरे ही क्षण यह साधु उछलकर कहेगा कि मैं ही वह सिद्ध हूँ। परन्तु रुद्रराशि के उल्लास की बाढ़ अभी विवेक के कूल-किनारों का अतिक्रमण नहीं करने पाई थी।

'एक है तो गुरुदेव ! मुझे अकस्मात् नाम स्मरण हो आया। आपके समीप ही है।' दामोदर हठात् सोत्साह कह उठा।

'मेरे निकट ?' दामोदर के शब्दों में निहित श्लेष के ही कारण रुद्र-राशि अपना नाम प्रकट करते-करते रह गया।

'मेरे निकट ? कौन है वह ? मेरे निकट भला कौन है ?'

'धारा नगरी में है।' दामोदर ने कहा।

दामोदर के इन शब्दों ने रुद्रराशि के उत्साह पर पुनः ठण्डा पानी डाल दिया।

'कौन है वह ? धारा नगरी के पंडितों में कोई त्रिकालदर्शी हो भी सकता है ? शास्त्राभ्यासी, कवि, पंडित आदि तो हो सकते हैं, परन्तु त्रिकाल-दर्शी ? मैं मान हीं नही सकता।' व्यग्रता के कारण रुद्रराशि का स्वर कुछ तीखा हो गया था। दामोदर ने भी इस बात को लक्ष्य किया।

'मानता तो मैं भी नहीं; और न मैंने प्रत्यक्ष अनुभव ही किया है। केवल उड़ती खबर सुनी है।' आशा की सुन्दर सुकोमल रेखाएँ पुनः चित्रित कर रहा हो इस प्रकार दामोदर ने कहते-कहते अपने दाहिने हाथ को एक खास अन्दाज मे आगे बढ़ा दिया।

'कौन है वह ? नाम क्या है ?'

'आनन्दपुर का उव्वट* यजुर्वेदी। इन दिनों धारा में है।'

---

*उव्वट ने युजर्वेद का भाष्य किया था। वेद का भाष्य करने-वाला वही एक अकेला गुजराती है। वह भीमदेव का समकालीन था।

रुद्रराशि ने सिर हिलाकर कहा—'अच्छा, वह कर्मकाण्डी ! लेकिन यह उसका काम नहीं ।'

'तो अब रह ही कौन गया ? मुझे तो लगता है कि अब बात आप ही के हाथ में है ।'

'कौन मैं ?' संयम रुद्रराशि के हाथ से छूट चला और उसने शीघ्रता से अपने मन की बात को प्रतिध्वनित कर दिया—मैं ? हा—हा—हा....' फिर अपने असंयम पर पर्दा डालने के लिए वह जोरों से हँसने लगा ।

'गुरुदेव ! हमारा इतना सौभाग्य कहाँ कि आप पधारें ? आप अर्बुद-पति को छोड़कर भला आने ही क्यों लगे ?'

'मैंने तो अर्बुदपति को काल देवता की आज्ञा सुना दी थी....'

'आपने तो कहा ही होगा । अब मानेंगे, उस समय न माना तो अब उनकी समझ में आयेगा !'

'मैंने तो साफ-साफ कह दिया था कि पाटन विजयी होगा, मालवा हारेगा । अवन्तीनाथ नहीं होंगे, तब भी पाटनपति रहेंगे ।'

दामोदर ने अपने उपवस्त्र के नीचे से एक सुन्दर मुक्तामाला निकाली और उसे रुद्रराशि के सामने रखकर बोला—'महाराज यहाँ दर्शन करने पधारे थे, उस समय मा दुर्गा की मूर्ति को माला-विहीन देखकर महाराज ने मुझे आदेश दिया कि यह आचार्यदेव रुद्रराशिजी को दे आओ । मा के कण्ठ में पहना दें ।'

लंका के अंगूर जैसे बड़े-बड़े और जगमगाते मोतियों की ओर रुद्र-राशि देखता रहा; फिर विषयान्तर कर रहा हो इस तरह बोला—मंत्रीश्वर ! महाराज तो अनुष्ठान करनेवाले थे ? मैंने यही सुना था । सो उसका क्या हुआ ?'

'प्रभु, मुझे तो महाराज के हाथों केवल इसलिए अनुष्ठान करवाना था कि माता भवानी उन्हें सुद्बुद्धि प्रदान करें और भीमदेव महाराज के कोपानल से उनकी रक्षा हो सके ।'

'आपने यथार्थ ही कहा है। महाराज मूलराजदेव ने भी रुद्रमहल के लिए कँथड़ीनाथ जैसे सिद्ध-पुरुष को सादर आमंत्रित किया था। परन्तु मानो वह जमाना तो बीत ही गया।'

'मंत्रीश्वर! जमाना तो जन-हृदय का प्रतिबिम्ब है। काल-भगवान् काल का सृजन करते हैं, और वही उसे घुमाते हैं। ढूँढ़ने निकलेंगे तो आपको ऐसे त्रिकालदर्शी आज भी अवश्य मिलेंगे।'

रुद्रराशि ने 'आज भी' पर जो जोर दिया था, उसे दामोदर ने बरा-बर लक्ष्य किया।

वह मन-ही-मन हँसा। आचार्य की महत्वाकाङ्क्षा को उसने उकसा दिया था। अब यदि वह अपने मन की बात को निस्संकोच होकर प्रकट कर दे तो कार्य-सिद्धि हो जायेगी। धंधूक को वश में करने के लिए वह रुद्रराशि का एक महत्वपूर्ण सीढ़ी के रूप में उपयोग करना चाहता था।

'बात यह है, गुरुदेव, कि महाराज ने ठेठ काश्मीर तक ढूँढ़-खोज की। इधर कर्नाटक तक के विद्वानो की नामावली स्वयं मैं देख गया। अवन्तीनाथ की विद्वद्सभा भी मन में घुमा ली। पंडित बहुत हैं, विद्वान् हैं, कवि हैं, विद्यापति है, परन्तु त्रिकालदर्शी कोई नहीं।' दामोदर ने सिर हिलाकर कहा।

'मंत्रीश्वर! मेरी माता महाकाली के खप्पर का प्रसाद जिसे मिला हो वही त्रिकालदर्शी हो सकता है। त्रिकालज्ञ होना सरल नहीं है। यह कुछ बच्चों का खेल नहीं।'

'हाँ, यही तो मैं भी कहता हूँ, गुरुदेव! विद्यापति तो कोई-न-कोई हो सकता है, परन्तु कालपति होना दुर्लभ है।'

'उस दुर्लभ की खोज आपको ही करनी चाहिये। वह तो आपको खोजेगा नहीं। हीरा पृथ्वी के गर्भ में रहता है; पृथ्वी के पट पर तो मिलता नहीं।'

'हाँ, मेरे हीरे!' दामोदर ने मन-ही-मन व्यंगपूर्वक कहा। परन्तु प्रकट

वह बोला—'शिव ! शिव ! भगवान सोमनाथ हमें ऐसी अधम वृत्ति से बचायें। हमीं ऐसे महान पुरुष की सेवा में प्रार्थी होंगे। भला वह स्वयं होकर हमारे प्रार्थी क्यों होने लगे ? शान्तम् पापम्—शान्तम् पापम् ! हमारे हाथों यह अधर्म कभी न हो ! परन्तु कोई....'

'क्या अभी तक आपको ऐसा कोई व्यक्ति मिला नहीं है, मंत्रीश्वर ?'

'है तो एक, परन्तु ...' दामोदर ने जान-बूझकर वाक्य पूरा नहीं किया। उस अधूरे वाक्य की पूर्ति मे अपने नाम की कल्पना करके रुद्र-राशि अस्त-व्यस्त होने लगा।

'परन्तु क्या ?' उसने अधीर होकर पूछा—'कौन है वह एक ?'

'यों समझिये कि एक है ...' दामोदर ने शान्तिपूर्वक कहा।

'परन्तु है कौन ? ऐसा कोई मेरी जानकारी से परे तो हो नहीं सकता।'

'बतला दूँ, गुरुदेव !'

अब तो नाम जानने की रुद्रराशि की अधीर उत्सुकता का वारापार नहीं रह गया। वर्षों से वह जो सपना देखता रहा था, उसको यों अनायास फलीभूत होते देख उसके मन में उल्लास का महासागर तरंगित होने लगा। उसके मन के ये भाव दामोदर से छिपे न रह सके।

'मकवाणा का आचार्य मंगलशिव त्रिकालदर्शी माना जाता है, गुरुदेव ! परन्तु उसकी विद्या....' दामोदर ने शान्तिपूर्वक कहा।

'हा—हा—हा !' रुद्रराशि ठठाकर हँस पड़ा। 'हे भगवान् ! नाम भी निकला तो किसका ! मंगलशिव ! कच्छ प्रदेशवाला ! जिसे शुद्ध उच्चारण सिखलाने के लिए मेरा शिष्य स्थट्ट छः महीने नारायण सरोवर जाकर रहा था, वह मंगलशिव त्रिकालदर्शी ?'

'हाँ, गुरुदेव ! मन तो हमारा भी नहीं मानता। हम तो ऐसे सिद्ध-पुरुष की शरण में जाना चाहते हैं जो विद्यापति भी हो और कालगति भी।'

'फिर ?'

'कोई ऐसा सिद्ध सारे अर्बुद-मंडल में है भी ?'

दामोदर को मन-ही-मन हँसी आ गई। वह जानता था कि अभी दूसरे ही क्षण यह साधु उछलकर कहेगा कि मैं ही वह सिद्ध हूँ। परन्तु रुद्रराशि के उल्लास की बाढ़ अभी विवेक के कूल-किनारों का अतिक्रमण नहीं करने पाई थी।

'एक है तो गुरुदेव ! मुझे अकस्मात् नाम स्मरण हो आया। आपके समीप ही है।' दामोदर हठात् सोत्साह कह उठा।

'मेरे निकट ?' दामोदर के शब्दों में निहित श्लेष के ही कारण रुद्रराशि अपना नाम प्रकट करते-करते रह गया।

'मेरे निकट ? कौन है वह ? मेरे निकट भला कौन है ?'

'धारा नगरी में है।' दामोदर ने कहा।

दामोदर के इन शब्दों ने रुद्रराशि के उत्साह पर पुनः ठण्डा पानी डाल दिया।

'कौन है वह ? धारा नगरी के पंडितों में कोई त्रिकालदर्शी हो भी सकता है ? शास्त्राभ्यासी, कवि, पंडित आदि तो हो सकते हैं, परन्तु त्रिकालदर्शी ? मैं मान हीं नही सकता।' व्यग्रता के कारण रुद्रराशि का स्वर कुछ तीखा हो गया था। दामोदर ने भी इस बात को लक्ष्य किया।

'मानता तो मैं भी नहीं; और न मैंने प्रत्यक्ष अनुभव ही किया है। केवल उड़ती खबर सुनी है।' आशा की सुन्दर सुकोमल रेखाएँ पुनः चित्रित कर रहा हो इस प्रकार दामोदर ने कहते-कहते अपने दाहिने हाथ को एक खास अन्दाज में आगे बढ़ा दिया।

'कौन है वह ? नाम क्या है ?'

'आनन्दपुर का उव्वट* यजुर्वेदी। इन दिनों धारा में है।'

---

*उव्वट ने युजर्वेद का भाष्य किया था। वेद का भाष्य करनेवाला वही एक अकेला गुजराती है। वह भीमदेव का समकालीन था।

रुद्रराशि ने सिर हिलाकर कहा—'अच्छा, वह कर्मकाण्डी ! लेकिन यह उसका काम नहीं।'

'तो अब रह ही कौन गया ? मुझे तो लगता है कि अब बात आप ही के हाथ में है।'

'कौन मैं ?' संयम रुद्रराशि के हाथ से छूट चला और उसने शीघ्रता से अपने मन की बात को प्रतिध्वनित कर दिया—मैं ? हा—हा—हा....' फिर अपने असंयम पर पर्दा डालने के लिए वह जोरों से हँसने लगा।

'गुरुदेव ! हमारा इतना सौभाग्य कहाँ कि आप पधारें ? आप अर्बुद-पति को छोड़कर भला आने ही क्यों लगे ?'

'मैंने तो अर्बुदपति को काल देवता की आज्ञा सुना दी थी....'

'आपने तो कहा ही होगा। अब मानेंगे, उस समय न माना तो अब उनकी समझ में आयेगा !'

'मैंने तो साफ-साफ कह दिया था कि पाटन विजयी होगा, मालवा हारेगा। अवन्तीनाथ नहीं होंगे, तब भी पाटनपति रहेंगे।'

दामोदर ने अपने उपवस्त्र के नीचे से एक सुन्दर मुक्तामाला निकाली और उसे रुद्रराशि के सामने रखकर बोला—'महाराज यहाँ दर्शन करने पधारे थे, उस समय मा दुर्गा की मूर्ति को माला-विहीन देखकर महाराज ने मुझे आदेश दिया कि यह आचार्यदेव रुद्रराशिजी को दे आओ। मा के कण्ठ में पहना दें।'

लंका के अंगूर जैसे बड़े-बड़े और जगमगाते मोतियों की ओर रुद्र-राशि देखता रहा; फिर विषयान्तर कर रहा हो इस तरह बोला—मंत्रीश्वर ! महाराज तो अनुष्ठान करनेवाले थे ? मैंने यही सुना था। सो उसका क्या हुआ ?'

'प्रभु, मुझे तो महाराज के हाथों केवल इसलिए अनुष्ठान करवाना था कि माता भवानी उन्हे सुदबुद्धि प्रदान करे और भीमदेव महाराज के कोपानल से उनकी रक्षा हो सके।'

'हाँ-हाँ, यह बात तो सच है, बराबर है। देखिये, लाहिनी देवी अभी यहीं हैं। धंधूकराज उन्हे बहुत स्नेह करते हैं। वह लाहिनी देवी का कहा कभी टाल नहीं सकते। लाहिनी देवी महाराज को लौटा लायेंगी। मैं भविष्य कहूँगा। आप हैं, विमल दंडनायक हैं—उदार बने रहियेगा। यह युद्ध तो यों ही रोका जा सकेगा। लड़ाई में भला आनन्द ही क्या है?'

'मैं भी यही मानता हूँ। युद्ध मे आनन्द ही क्या है? यदि आज युद्ध न छिड़ा होता तो सोमनाथ का महापर्वोत्सव हो रहा होता।'

'और त्रिकालदर्शी व्यक्ति को आप खोज भी रहे होते, क्यों? हा—हा—हा, कहिये?' रुद्रराशि की उस हँसी में कुछ आशा, कुछ अभिप्राय और कुछ संकोचहीनता का भाव भी खनखना रहा था।

चतुर-शिरोमणि दामोदर ने आशा के उस क्षीण तन्तु को और भी दृढ़ कर दिया। वह बोला—'खोज तो अब समाप्त हो गई, आपके ही श्री चरणों में। आज मैं शुभ शकुन देखकर ही निकाला था। आपने जो प्रशस्ति भेजी थी उसके अनुपम काव्य-सौन्दर्य से महाराज प्रभावित हुए थे। यहाँ आते ही महाराज की स्मृति सजग हो आई। अब शान्ति होगी और महाराज की सोमनाथ की आराधना पुनः प्रारम्भ होगी।'

'भगवान चन्द्र मौलीश्वर की कृपा होगी, या भवानी के खप्पर की प्रसादी होगी तो महाराज की आराधना भी फलीभूत होगी। और मुझे भी उस समर्थ शिवालय की छाया ...' रुद्रराशि की बात अधूरी ही रह गई।

दामोदर खड़ा हो गया था। उसने प्रणाम करके कहा—'आज्ञा हो तो गुरुदेव, नमः शिवाय! लौटकर फिर मिलूँगा। अभी तो महाराज मेरा रास्ता देख रहे होंगे!'

'हाँ-हाँ, जाइये, मंत्रीश्वर, अवश्य जाइये! लौटकर मिलियेगा।'

'नमः शिवाय, प्रभु।'

'शिवाय नमः!' रुद्रराशि ने प्रत्युत्तर में कहा।

लौटते हुए दामोदर सोच रहा था—'धंधूकराज पर इसकी भविष्य-वाणी का प्रभाव हो—दंडनायक भी है—तो यहाँ का काम पूरा हुआ। फिर रह गया नड्डूल।' उसने बहुत धीरे से वेदना-भरी गहरी साँस ली। साथ ही चारों ओर यह देखने के लिए फुर्ती से दृष्टि डाली कि कहीं कोई उसके इस कृत्य को देख तो नहीं रहा। पीठ की ओर रुद्रराशि अपनी ही माया में मुग्ध मूर्ख की भाँति उच्च स्वर में हँस रहा था।

मानो अपने अन्तर की वेदना को झिंझोड़ फेंकने का प्रयत्न करते हुए ही दामोदर ने जोर से कहा—'रुद्रराशि तो मनचीता करेगा ही। अब बाकी बचा सिन्ध का हम्मुक।' जान-बूझकर उसने नड्डूल का विचार छोड़ दिया था। अभी क्षण-भर पहले उसके हृदय में जो दुर्बलता आ गई थी, मानो उसे झटकने के लिए ही उसने अपने उपवस्त्र को जोर से झँझोड़ा। फिर वह शीघ्रता से अपने गजराज की ओर चल दिया।

१२. महामंत्रीश्वर दामोदर

नड्डूल के संस्मरण से जागी हुई भावनाओं को दबाता दामोदर अपनी पट्टकुटी में लौट आया। जीवन में जब भी कभी इस तरह के प्रसंग आ उपस्थित होते तो वह अपने-आपको पूरी तरह जटिल राज्य-कार्यों में लगा देता था। इस समय भी उसने ऐसा ही किया। मसनद के सहारे उसने अपने शरीर को फैला दिया। कोई सुखद स्मृति उसे पृथ्वी-लोक से परे कल्पना के स्वर्ग-लोक में ले जाये, उसके पहले ही उसने ताली बजाई। बाहर से आयुष तत्काल भीतर आया।

'आयुष! वह परदेशी, जो आडावला से मेदपाट की ओर जाने का प्रयत्न कर रहा था, वह कौन है, कुछ पता चला?'

'महाराज! बस, कमाल ही हो गया!'

'क्यों?'

'वह तो मकवाणाजी का आदमी निकला—जयदेव!'

'जयदेव? कहाँ जा रहा था वह?'

'चौकीदारों ने जब उसे रोका, तो वह एक साँढ़नी का पीछा कर रहा था। उसकी मान्यता के अनुसार उस साँढ़नी पर प्रताप देवी भागी जा रही थी—इसी लिए वह बहुत नाराज भी हुआ, महाराज!'

'अच्छा? लेकिन यह तो उसी साँढ़नी की बात है न, जिसका सामान तूने मुझे कल दिखलाया था? यह वही तो साँढ़नी है, जिसके साथ एक कुम्हारिन भी थी!'

'जी हाँ, महाराज!'

'तो वह सामान और सब कुछ यहाँ ले आ।'

आयुष ने एक-एक चीज़ लाकर हाजिर कर दी। दामोदर ने बड़ी बारीकी से सभी चीजों को घुमा-फिराकर देखा। सिन्धी कुत्ते की एक बड़ी-सी खाल की उसने बार-बार जाँच-पड़ताल की। उस खाल के अन्दर से एक वस्त्र-लेख निकल आया। दामोदर ने उसे भी खूब ध्यानपूर्वक देखा।

'जयदेव क्या कहता था, आयुष? जिस साँढ़नी पर सवार होकर प्रताप देवी भाग रही थी, यह सामान उसी साँढ़नी का है?'

'हाँ, महाराज! और यदि चौकीदारों ने उसे रोककर यहाँ से वहाँ भटकाया न होता तो उसने प्रताप देवी को पकड़ ही लिया था। इसी लिए वह सोलंकी के चौकी-पहरों पर बहुत नाराज हो रहा है।'

'परन्तु चौकीदारों ने तो जिस प्रकार उसे रोका, उसी प्रकार आगे-आगे भागी जाती उस साँढ़नी को भी रोका था न?'

'हाँ महाराज!'

'और इस साँढ़नी पर तो वह कुम्हारिन और महाशठाधिराज लूंढ ही थे, प्रताप देवी तो थी नहीं।'

'हाँ, महाराज! ऐसा ही है।'

'वह लूंढ कहाँ है?'

'उसे चौकी-पहरे मे रखा है।'

'मेरे पास भेज, मुझे उससे काम है।'

आयुष नमस्कार कर के जा ही रहा था कि इतने मे दामोदर ने कहा—'बल्कि ऐसा कर, अभी लूंढ को रहने दे, जयदेव को ही बुला ला।'

थोड़ी देर में आयुष जयदेव को बुला लाया। दामोदर ने किंचित् गर्दन हिलाकर संकेत किया और आयुष बाहर चला गया।

जयदेव ने महामंत्रीश्वर को नमस्कार किया और एक बार चुपके से पट्टकुटी में चारों ओर नजर घुमाकर देख भी लिया।

इधर पिछले कुछ दिनों से चमत्कारिक व्यवस्था और सोलंकी सेना की जबर्दस्त हलचल एवं आडावला के एक-एक पहाड़ पर सैनिक पड़ाव देखकर इस साहसपूर्ण अभियान के नेता दामोदर को देखने की उसकी इच्छा अत्यधिक उत्कट हो आई थी। उसने पहले कभी मंत्रीश्वर को इतने निकट से नहीं देखा था। इतने अधिक दुश्मनों के रहते हुए भी जो व्यक्ति पाटन को अरक्षित छोड़ यहाँ आडावला में बैठा सबको कँपा रहा हो, वह डील-डौल मे दैत्याकार और शक्ति-सामर्थ्य में अतुलनीय होगा, ऐसी उसकी कल्पना थी। परन्तु उसके बदले उसने अपने सामने एक बिलकुल सीधे-सादे, शान्त-सरल, अनाकर्षक, औसत कदवाले, काले रंग के अति सामान्य व्यक्ति को बैठे देखा। उसे कुछ निराशा ही हुई। अपने अभियान की असफलता के कारण वह अपने-आप पर और चौकीदारों पर गुस्सा हुआ था; अब जो यहाँ की सादगी देखी तो उसे यही लगा कि सारा काम चौपट हुआ धरा है। गुप्तचर की स्वाभाविक वृत्ति से उसने मंत्रीश्वर की अपेक्षाकृत बड़ी रेशमी पट्टकुटी की बनावट पर एक उड़ती नजर भी डाली। एक ओर एक अन्धेरे कोने में एक खड्गधारी सैनिक को खड़े देख उसे परम आश्चर्य हुआ—पट्टकुटी मे भी गुप्त रूप से वार किये जाने के अन्देशे से तो कहीं महामंत्रीश्वर ने इस सैनिक को खड़ा न किया हो? सैनिक इतनी शान्ति से एक कोने में खड़ा था कि प्रवेश करने के साथ ही जयदेव उसे देख न पाया था, इसे जयदेव ने गुप्तचर की हैसियत से अपनी अयोग्यता ही समझकर मन-ही-मन लानत-मलामैत भी की। फिर वह मृत्यु के प्रति अपने स्वामी मकवाणा की नितान्त लापरवाही से मंत्रीश्वर की सतर्क सुरक्षा की तुलना करने लगा।

'तू केसर मकवाणा का आदमी है?' दामोदर ने एक वस्त्रलेख को गादी के नीचे खिसकाते हुए कहा—'फिर तुझे सैनिकों ने क्यों रोका?'

'महाराज! मैं केसर मकवाणाजी का आदमी हूँ और कच्छ-प्रदेश से आया हूँ। मुझे क्यों रोका गया यह अभी तक समझ में नहीं आया।'

जयदेव ने थोड़े अधीर होकर कहा।

दामोदर ने जयदेव की ओर देखा। मंत्रीश्वर के बारे में अपनी राय को उतना जल्दी बदलने की जयदेव की जरा भी इच्छा नहीं थी। परन्तु उसकी ओर देखनेवाली उन दोनों आँखों में अगाध गहनता थी और था उतना ही माधुर्य। दामोदर जयदेव के सामने इस प्रकार देख रहा था मानो अभिभावक किसी नासमझ बच्चे को प्रेमपूर्वक देख रहा हो। उसकी आँखों में दंशहीन परिहासात्मक हँसी लहरा रही थी।

'तेरा तो महत्वपूर्ण काम बिगड़ ही गया, क्यों?' दामोदर ने कहा। इस वाक्य में व्यङ्ग था, निरा माधुर्य था या मंत्रीश्वर ऐसा ही मानते थे, यह कुछ भी जयदेव को साफ मालूम न हो सका। परन्तु अब उसने पहले से अधिक सावधान होकर उत्तर देने का निश्चय किया। उसने जल्दबाजी और अधीरता के बदले शान्ति को अपनाया—'महाराज! काम क्या मेरा था? काम तो पाटनपति का था।'

'अच्छा-अच्छा, तब तो तूने पाटनपति का ही काम बिगाड़ दिया।'

'महाराज, मैंने नहीं, सैनिकों ने बिगाड़ा।' जयदेव ने उत्तर दिया।

'हाँ, सैनिक तुझे यहाँ ले आये, और प्रताप देवी भाग गई, और इस तरह काम बिगड़ गया, क्यों?'

'हाँ, महाराज!'

'यदि तुझे न रोकते तो तू उसे अवश्यमेव पकड़ लेता?'

दामोदर के शब्दों में जिज्ञासा थी, सही बात जानने की अभिलाषा थी, या कठोर व्यङ्ग था, जयदेव इसे समझ न पाया। मंत्रीश्वर का शाब्दिक धरातल उसके लिए इतना तप्त और असहनीय हो उठा था मानो उसके नीचे अङ्गारे बिछे हों। जिसे उसने सामान्य व्यक्ति समझा था उसी को वह तीन प्रश्नों के उत्तर भी ठिकाने से न दे पाया था। इसलिए अपने समस्त मनोबल को एकत्र कर जयदेव ने कहा—'हाँ, महाराज! मैंने उसे अवश्य पकड़ लिया होता। पकड़ क्या लिया होता, वह आप ही

पकड़ में आ जाती।'

'ठीक है, जयदेव, ठीक है! तू कभी पाटन में भी रहा है?'

जयदेव घबराया। उसने प्रत्युत्तर न देने में ही कुशल समझी। वह खड़ा रहा।

'क्यों, कुछ बोला नहीं? तेरा यह पराक्रम, यदि हम तुझे न रोकते, तो निश्चय ही यशस्वी होता; परन्तु वह मकवाणा के यहाँ से भागी कैसे? तू और कार्तिक स्वामी दोनों ही उसका पीछा कर रहे थे न?'

अब कहीं जाकर दामोदर की भाषा का वास्तविक परिचय जयदेव को प्राप्त हुआ। दामोदर के महासंधिविग्रहक होने की कीर्ति का कुछ खयाल उसे आया। यह पता लगाना कठिन था कि वह क्या जानता है और क्या नहीं? उसे अपनी मुक्ति इसी में दिखाई पड़ी कि जितना कुछ जानता है सब दामोदर को बताकर उसका शरणागत हो जाये। उसकी वाणी में से अधीरता और खीझ अदृश्य हो गई, उसने कहा—'महाराज! वह रातोरात कीर्तिगढ़ से भाग गई।'

'किस तरह भाग गई, जयदेव? चौकी-पहरे में तो मकवाणाजी ने खामी न रखी होगी।'

'महाराज! चौकी-पहरा था। सब जाग रहे थे। कोई आया-गया भी नहीं....'

'किसी के आने-जाने से तेरा अभिप्राय "किसी मनुष्य" से ही है न?'

जयदेव के आश्चर्य की सीमा न रही। उसने कहा—'हाँ, महाराज! बात तो यही है, कोई भी मनुष्य न तो आया, न गया।'

'ठीक है, परन्तु कोई दूसरा तो आया ही होगा!'

जयदेव ने याद करके कहा—'हाँ, महाराज! उस रात की यह बात तो मुझे आज भी बराबर याद है। एक कुत्ता भूँक रहा था, हमीं ने उसे मार भगाया था। उसके सिवाय तो कोई फटका तक नहीं।'

'और तुझे अभी तक पता न चल पाया कि वह कैसे भाग गई?'

'जी नहीं, महाराज !'

'मैंने सोचा कि तुझे पता होगा। तुम्हारे यहाँ तो प्रख्यात गुप्तचर वेरा की प्रणाली और परम्परा है। परन्तु तुझे पता नहीं।' इतना कहकर दामोदर ने पीछे की ओर हाथ बढ़ाकर तकिये के पास से एक गठरी खींच निकाली—'जिस साँढ़नी का तू पीछा कर रहा था उसकी काठी के झोले मे यह मिला है, देख !'

सिन्धी कुत्ते की एक विशालकाय खाल को दामोदर ने हाथ में उठा लिया था।

'विभिन्न पशुओं की खाल पहनकर कई बार गुप्तचर शत्रुदल की जानकारी प्राप्त करते हैं—यह बात शायद तूने सुनी नहीं है। देख, प्रताप देवी इसे पहनकर—कुत्ता बनकर भौंकती हुई भागनी चाहिये, समझा? और तू जिस साँढ़नी का पीछा कर रहा था उस पर तो एक कुम्हारिन थी। तूने उसी को प्रताप देवी समझ लिया था। और एक था लूंढ—वह पाटन का महापुरुष है। साँढ़नी को देखकर तू पीछा करने लगा, उसके पहले ही प्रताप देवी इडरिया की ओर चली गई थी।'

'परन्तु महाराज ! यह कुम्हारिन कहाँ से आई?'

'वह यहाँ वटेश्वर के देव-मन्दिर में मिट्टी के दीये रखने आ रही थी। रास्ते में उसी के घोड़े-गधे लेकर प्रताप देवी भाग गई और साँढ़नी को छोड़ती गई। इस तरह लूढ और कुम्हारिन यहाँ आये। थारापद्र के पास से ही लूंढ प्रताप देवी का साँढ़नी-चालक बना था; वह भी भटका ! वह पाटन का अनमोल रत्न है। एक ही नमूना समझो। दूसरे दो बार मूर्ख बनाये जाकर चेत जाते हैं, परन्तु इसे तो हजार बार मूर्ख बनाया जा सकता है। मालूम पड़ता है कि प्रताप देवी ने इसे भी मूर्ख बनाया है।'

जयदेव का गुप्तचर होने का अभिमान तो कभी का नष्ट हो चुका था। अब उसे अपनी अक्षमता कचोटने लगी। दामोदर उसकी विकलता को ताड़ गया।

'मंत्रीश्वर! यदि मुझे फिर से....' उसने विनम्र होकर कहा।

'समझ गया। हमें अब तेरी ही जरूरत है। मैं तुझी को फिर से आडावला में प्रतापदेवी की खोज करने भेजना चाहता हूँ, जायेगा?'

'हाँ, महाराज! मकवाणाजी ने भी यही कहा है।'

'देख, तुझे क्या करना है यह तो मैं तुझे बाद मे कहूँगा। अभी तो शायद इस भाग-दौड़ में तूने कुछ खाया-पीया भी नहीं होगा। अरे आयुष!'

आयुष अन्दर आया। मंत्रीश्वर ने उससे कहा—'आयुष, एक सैनिक को बुला। मकवाणाजी के इस महान गुप्तचर को सीधा-पानी दिला। जयदेव! तू कुछ खा-पीकर और आराम करके ताजादम हो ले।'

दामोदर के इस स्नेहपूर्ण व्यवहार ने जयदेव को थोड़ी ढाँढ़स बँधा दी थी। मकवाणा की निर्भयता की तुलना मे मंत्रीश्वर की सावधानी उसे कभी से खल रही थी, इसलिए अवसर देखकर उसने कहा—'महाराज! अनुमति हो तो कुछ पूछना चाहता हूँ।'

'पूछो-पूछो, अवश्य पूछो।'

'महाराज! इतनी समर्थ सेना, इतने प्रबल गुप्तचर, और इतने चौकी-पहरों के रहते हुए भी इतना डर कि आपकी पट्टकुटी में भी एक सशस्त्र सैनिक आठों पहर खड़ा रखना पडे? इतनी सतर्कता आवश्यकता से अधिक नहीं है महाराज? मकवाणाजी तो सिर को हथेली पर लेकर ही फिरते हैं। महाराज! इस तरह की भयजनित रक्षण-योजना क्या पाटन के मंत्रीश्वर के गौरव को ओछा नहीं करती?'

प्रत्युत्तर में खिलखिलाकर हँसते हुए दामोदर ने कहा—'क्या, इस पट्टकुटी के कोने में खडे सैनिक के बारे में कह रहा है?'

'जी हाँ, महाराज!'

'जरा निकट जाकर देख तो सही, किस तरह की रक्षण-योजना है यह!'

जयदेव कुछ कदम आगे बढ़ आया और आश्चर्यचकित होकर उस तलवारधारी चौकीदार की ओर देखता रहा—बस, देखता ही रह गया। उसके मुँह से बरबस निकल पड़ा—'अरे!'

तलवार और चौकीदार दोनों ही कृत्रिम थे। चौकीदार प्राणहीन पुतला था। तलवार बिना मूठ का ठूँठा शस्त्र!

जयदेव भोजन बनाने लगा तब आटे में पानी डालते-डालते सोच रहा था—'साले, ये गुर्जर भी विचित्र आदमी है। कच्छ के रेगिस्तान मे तो वात्याचक्र के कारण ऐसी बात जानने मे नहीं आई। प्रताप देवी कैसे भागी इसका पता भी यहीं आकर चला। और मैं मंत्रीश्वर की पट्टकुटी में इतनी देर खड़ा रहा, फिर भी एक कृत्रिम पुतले को समझ न सका। पाटन का यह महामंत्री बिना लड़े ही लकड़ी की तलवार से शत्रु-सेना को थका मारने की शक्ति रखता है, इसकी जानकारी आज उस कृत्रिम सैनिक को देखकर ही हुई। कहाँ तो ये गुर्जर और कहाँ एक चोट मे दो टुकड़े करनेवाले मेरे मकवाणाजी।'

१३. विमल का सन्देशा

दूसरे दिन सवेरे जयदेव स्नान-सन्ध्यादि से निवृत्त होकर चहल-कदमी के लिए जाने ही वाला था कि उसने आयुष को अपनी ओर आते देखा।

'क्यों?' जयदेव ने आयुष को आते हुए देखकर पूछा।

'मंत्रीश्वर बुला रहे हैं, कार्तिक स्वामीजी आये हैं।'

'अच्छा, आ पहुँचे? प्रताप देवी के कुछ समाचार हैं?'

'नहीं-नहीं। वह तो दूसरी बहुत-सी महत्वपूर्ण जानकारी लाये हैं। तुम मेरे साथ चलो। मकवाणाजी के भी यहाँ आने की खबर है।'

'मकवाणाजी आ रहे हैं? कब?'

'जल्दी ही।'

जयदेव आयुष के साथ चल दिया। महामंत्रीश्वर की पट्टकुटी में आने पर उसने वहाँ कार्तिक स्वामी को एक ओर खड़े देखा। दामोदर वहाँ नहीं थे।

कार्तिक स्वामी को देखकर जयदेव ने पूछा—'कहिये कार्तिक स्वामी जी, आपको रास्ते में कहीं प्रताप देवी की कोई भनक मिली या नहीं? मुझे तो कुछ पता न चला।'

'नहीं-नहीं, मैं तो चन्द्रावती में ही था।'

इस बीच दामोदर आ गया। उसके हाथ में पतले वस्त्र-जैसा एक भोजपत्र लटक रहा था। उसमें रेखाओं-जैसा कुछ बना हुआ था।

'कार्तिक स्वामी! तू विमल का यह जो सन्देशा लाया है कि वह धंधूकराज को अनुकूल करने का प्रयत्न कर रहा है, इसलिए हमें यहाँ

परमार के संस्थान की मर्यादा की रक्षा कर किसी तरह की सैनिक कार्रवाई नहीं करनी चाहिये—यह ठीक ही है। परमारराज को बुलाने के लिए कौन, कुलचन्द्र ही आया था न?'

'हाँ, महाराज! परन्तु दंडनायक इस बात को नहीं जानते।'

'उस कुलचन्द्र ने प्रताप देवी को जो गुप्त सन्देश भेजा था वह यही है। प्रताप देवी ने मालवा से हम्मुकराज को खारापाट में गेहूँ पहुँचाने की जो योजना बनाई उसका पूरा विवरण इस भोज-पत्र मे लिखा हुआ है। मकवाणाजी हम्मुकराज से अविलम्ब लड़ना चाहते हैं न, जयदेव?'

'हाँ, महाराज! इसी लिए तो मकवाणाजी ने पहल की है। हम्मुकराज को खारापाट खलता है। खारापाट में रहकर खायें क्या?'

'इसी लिए मालवा से गेहूँ की पोठियाँ (बैलों की पीठ पर बनजारों द्वारा गल्ला लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाना) खारापाट ले जाने की योजना बनी है। वटेश्वर का हमारा यह पड़ाव उठे तभी यह योजना कार्यान्वित हो सकती है। धंधूकराज और कुलचन्द्र दोनों एक हैं। धंधूक पर अब कितना विश्वास किया जाये? खास तौर पर उस समय जब कि वह हमें यहाँ से हटाना चाहता हो!'

दामोदर ने सांकेतिक लिपि में लिखा हुआ लेख कार्तिक स्वामी के हाथ में दिया। उसे हाथ मे लेकर कार्तिक ने अभिप्राय समझाया और कहा—'महाराज! धंधूकराज का पुत्र पूर्णपाल टेकी योद्धा है। धंधूकराज तो झुक जायेंगे, परन्तु पूर्णपाल देर-अबेर लड़ेगा ही। युक्ति-चातुर्य उसमे नहीं है, न वह कभी ऐसा काम करेगा ही। धंधूकराज के बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता।'

'अरे, लड़ना हो तो खुशी से लड़े, उसकी तो कोई चिन्ता नहीं। चिन्ता तो इस बात की है कि अनमोल समय बीता जा रहा है।' दामोदर ने कहा—'योद्धा टेकवान हों या संख्या में अधिक इसका भी कुछ विशेष महत्व नहीं, सेनाएँ हमे हरायें इसमें भी कोई बुराई नहीं। हमें तो यही

देखना है कि अवसर गँवाकर कहीं हार न जायें। हमारे लिए तो समय सबसे कीमती है।'

'क्या यह लेख आयुष ने प्राप्त किया?'

'नहीं-नहीं, इसे तो इन्होंने....' दामोदर ने जयदेव की ओर इशारा किया।

'क्या जयदेव ने?'

'महाराज! मुझे तो कुछ पता ही नहीं।' जयदेव ने क्षुब्ध होकर कहा।

'वह सिन्धी कुत्ते की खाल थी न, उसी मे एक जगह यह सीया हुआ था। इसमे नक्शा बनाकर वह रेखा भी दिखलाई गई है जिस रास्ते से मालवा का गेहूँ खारापाट ले जाया जायेगा।'

जयदेव के आश्चर्य का कोई वारापार न रह गया। बिना कहे ही यह बात उसकी समझ में आ गई कि वह बडे राज्यों के गुप्तचर के रूप में तो एक मिनट भी काम नहीं कर सकता। उसे अधिक सजग और सतर्क रहने की मानो इस तरह शिक्षा मिल रही थी।

'कहा तो यही जायेगा, जयदेव, कि तूने ही प्राप्त किया है।' दामोदर ने जयदेव को स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन देते हुए कहा—'प्रताप देवी को भागने की बड़ी जल्दी होनी चाहिये, तभी उससे यह गलती सम्भव हुई।'

फिर दामोदर ने कार्तिक से पूछा—'तू लाहिनी देवी के नाम भी कोई सन्देशा लाया है न?'

'हाँ, महाराज! श्री देवी का सन्देशा है। वह इधर आने के लिए कभी से चल पड़ी हैं। बाद में दंडनायक भी धंधूकराज को लेकर महाराज से मिलने आयेंगे। दंडनायक ने उन्हें अभय दान दिया है।'

'अभय? कैसा?'

'यदि महाराज भीमदेव धंधूकराज की सन्धि-वार्ता को स्वीकार न करें तो दंडनायक उन्हें पुनः चित्रकोट तक पहुँचा आयेंगे।'

'सन्धि ? उसे तो महाराज से सन्धि-प्रस्ताव नहीं, अभ्यर्थना करनी चाहिये। उसकी क्या प्रार्थना है ?'

'लगता है कि वह तो महाराज के समक्ष ही प्रस्तुत की जायेगी।'

'तो क्या उसके यहाँ रहने से हमें किसी तरह का भय नहीं है ? कौन जाने वह हमारी व्यूह रचना देखने के उद्देश्य से ही यहाँ न आ रहा हो ? उसकी प्राथना महाराज के द्वारा स्वीकार करने के योग्य न हुई तो जब तक नड्डूल के साथ हमारा युद्ध समाप्त नहीं हो जाता धंधूकराज हमारे परम आदरणीय अतिथि के रूप में यहीं रहेंगे। अरे आयुष !'

दामोदर के शब्द सुनते ही आयुष तत्काल भीतर आया।

'आयुष, महाराज की पट्टकुटी के पास ऐसी ही मूल्यवान एक दूसरी पट्टकुटी तैयार करो और धंधूकराज की सेवा में अहर्निश उपस्थित रहने के लिए यथायोग्य हयदल और गजदल की व्यवस्था करो।'

'महाराज ! दंडनायक ने तो उन्हे अभय वचन दिया है।'

'धंधूकराज अभय रहेंगे। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि हमें भय मे रहना चाहिये। हमें उनको अभय रखना है और साथ ही स्वयं भी निर्भय रहना है।

'परन्तु सम्भवतः दंडनायक को यह अच्छा न लगे।'

'देख, वटेश्वर का यह सूर्य-मन्दिर बड़ा सुन्दर है। दंडनायक वहाँ कुछ समय तक गजधर के साथ रहेंगे। उनके लिए शिल्प की यह मनोरम सृष्टि काफी है। हजारों पाटनवासी अपने स्वजनों को छोड़कर यहाँ रणक्षेत्र में आये हैं। उनको मैं दंडनायक के वचनों की खातिर कटने नहीं दूँगा। मुझे अभी भविष्य में कई बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ लड़नी हैं।'

उसी समय आयुष बाहर से दौड़ता हुआ आया—'महाराज ! दंडनायक इस ओर आ रहे हैं।'

आयुष के संवाद के प्रत्युत्तर में दामोदर ने एक अत्यन्त अर्थपूर्ण दृष्टि कार्तिक की ओर डाली। वह मुँह से कुछ न बोला।

कार्तिक स्वामी सिर झुकाकर प्रणाम करके तत्काल वहाँ से चला गया।

जयदेव ने भी जाने के लिए पाँव उठाया। उसे जाने को उद्यत देखकर दामोदर ने कहा—'तू मुझे शाम को मिलना, जयदेव! मुझे तुझसे काम है।'

जयदेव और आयुप दोनों प्रणाम करके बाहर निकल आये।

आयुप जाते हुए कार्तिक स्वामी की ओर देख रहा था।

'क्यों, क्या देख रहे हो?' जयदेव ने पूछा।

'दंडनायक का गजराज तो अभी सामनेवाले किनारे पर ही है। और कार्तिक मन्दिर की ओर जाते हुए दिखाई दे रहे हैं। वे उधर क्यों जा रहे हैं?'

'शायद इसलिए कि अर्बुदपति के आतिथ्य में किसी बात की कमी न रह जाये!' आयुप ने हँसते-हँसते कहा—'मन्त्रीश्वर का अतिथि-सत्कार तो जगत्-प्रसिद्ध है।'

दामोदर ने उसे शाम को किस लिए बुलाया है यह कुछ भी जयदेव की समझ में न आ सका। वह यहाँ की वस्तु-स्थिति पर विचार करता हुआ चला गया।

सम्पूर्णता प्राप्त करने के प्रयत्न मे प्रत्येक हलचल और प्रत्येक वस्तु को ध्यान से देखने का महत्व अब उसकी समझ में आ गया था।

१४. दंडनायक और महामंत्री

पटन छोड़ने के बाद दंडनायक पहली ही बार दामोदर से मिलने आ रहा था। यदि धंधूकराज का काम न होता तो दंडनायक सम्भवतः मिलने आता ही नहीं।

दामोदर ने आज तक अपने-आपको कभी महामंत्रीश्वर मनवाया न था। यद्यपि वही महामंत्रीश्वर था। राज-मुद्रा उसी के पास रहती थी। सारे सूत्रों का संचालन वही करता था। आज्ञाएँ वही देता। सन्धि-विग्रहकों का मार्ग-दर्शन भी वही करता, उन्हें काम करने के ढंग भी वही सुझाता। महासन्धिविग्रहक की हैसियत से महाराज के साथ सभी पर-राष्ट्रीय प्रश्नों की चर्चा वही करता था। दामोदर के साथ अब किस तरह बातचीत की जाये, यह विमल के निकट एक जटिल प्रश्न बन गया था। थोड़े समय पहले वह आज्ञा देता और दामोदर हाथ जोड़कर उसका आदेश सुनता था।

विमल गजराज से उतरकर दामोदर की पट्टकुटी की ओर चला। पट्टकुटी के द्वार पर दामोदर स्वय हाथ जोड़े खड़ा था। इसलिए विमल ने दामोदर के सम्बन्ध में जो धारणा बनाई थी उससे इस बात की संगति न बैठी।

उसने तो यही समझा था कि दामोदर अब अपने को महामंत्रीश्वर समझकर आज्ञा ही देता होगा, वह किसी से आदेश लेता न होगा। जब कि यहाँ पट्टकुटी के द्वार पर खड़ा दामोदर तो दंडनायक को वही पुराना आज्ञापालक दामोदर लग रहा था। यह देखकर विमल को मन-ही-मन

थोड़ा आनन्द ही हुआ।

'आइये प्रभु ! मैं आप ही की प्रतीक्षा कर रहा था।' दामोदर ने नमस्कार करके कहा।

'अरे दामोदर !' विमल ने उसके कन्धे पर प्रेम से हाथ रखकर कहा—'मैं तो भाई, घबरा गया था। मुझे महाराज से मिलना था।'

'महाराज से मिला जा सकता है। कहिये तो आयुध को भेजूँ।'

दामोदर को वहाँ खड़े देख विमल का आधा संकोच तिरोहित हो गया था, शेष उसके स्वर की मधुरता को देखकर विदा हो गया। उसे यही लगा कि वह अब भी पाटन का ही है। उसने कुछ इस तरह कहा मानो पाटन में दामोदर के साथ घर के आँगन में ही बैठा बातें कर रहा हो—'नहीं, नहीं; अभी नहीं, बाद में। दूसरे राज्य का प्रश्न है, इसलिए पहले तुम्हीं से बात कर लेना चाहता हूँ। इस मामले मे तो महाराज भी तुम्हीं से सलाह करेंगे।'

दामोदर को विमल के स्वाभिमानी स्वभाव की अच्छी जानकारी थी। मन-ही-मन यह निश्चय करके कि जहाँ झुकना नहीं वहाँ नहीं ही झुका जायेगा, वह और भी मधुरता से बोला—'पूछेंगे, लेकिन यह आवश्यक नहीं कि आपके निर्णय में परिवर्तन किया ही जाये। अन्य राज्यों के जिन प्रश्नों के सम्बन्ध मे महाराज मुझसे चर्चा करते हैं, उन चर्चाओं में महा-दंडनायक थोड़े ही उपस्थित रहते हैं ?'

दामोदर आगे-आगे चला। विमल ने पट्टकुटी में प्रवेश किया। मसनद पर बैठते ही उसने दामोदर को हाथ पकड़कर समीप बैठा लिया—'तुम यहीं बैठो, मेरे समीप !'

दामोदर समझ गया था कि इस स्वप्नदर्शी दंडनायक से चतुराई कोसों दूर है। इस समय यह जो भाव प्रदर्शित कर रहा है सो इसकी आन्तरिक प्रेरणा का ही परिणाम होना चाहिये।

'दामोदर ! धंधूकराज भी आये हुए हैं।'

'धंधूकराज !' दामोदर ने मानो आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—'कहाँ हैं ? मुझसे महाराज कभी से कह रहे थे कि दंडनायक का सन्देशा है, इसलिए धंधूकराज दो-एक दिन में आते ही होंगे। यह भी कहा था कि उनके आतिथ्य मे किसी तरह की कमी नहीं रहनी चाहिये। अच्छा ही हुआ कि मैंने एक सुन्दर रेशमी पट्टकुटी महाराज के निवास-स्थान के समीप पहले से खड़ी करवा दी।'

'परन्तु मुझे तो तुमसे एक दूसरी ही बात कहनी है। धंधूकराज आये हैं सन्धि करने के लिए; परन्तु यदि वह स्वीकार न हो सके—या महाराज की कोई बात उन्हे अपने अनुकूल न लगे—तो मैंने उन्हें वचन दिया है।'

दामोदर ने थोड़ा-सा सिर खुजलाया—सन्धि शब्द उसे बुरी तरह चुभ रहा था—'आपका वचन तो विवेकपूर्ण ही होगा।'

'वचन' और 'विवेक' दोनो शब्दों में निहित श्लेष की ओर विमल का ध्यान जाने के पहले ही दामोदर ने पुनः कहा—'आपका दिया हुआ वचन तो स्वयं महाराज के दिये हुए वचन के समान है।'

'हाँ, दामोदर ! मैं भी यही समझता हूँ। इसी लिए मैंने धंधूकराज से कहा कि सन्धि हो या न हो, आप सकुशल वापस लौट-सकेंगे, बातचीत का परिणाम चाहे जो भी हो।'

'यानी आपके कहने का अभिप्राय यह हुआ कि महाराज उनकी प्रार्थना को स्वीकार करें अथवा न करें, परन्तु सामयिक अभयदान तो प्रदान करते ही हैं !' दामोदर ने कहा—'बाकी सन्धि तो बराबरी के राज्यों के बीच ही होती है।'

'दामोदर ! मैं तो सन्धि की ही बात करके आया हूँ।'

'सन्धि तो पाटन कर सकता है चेदिनाथ या अवन्तीनाथ-जैसे महीपों के साथ; चन्द्रावती, नड्डूल, लाट आदि तो हमेशा महाराज से प्रार्थना करते आये हैं। आपसे भी यह बात कहाँ छिपी हुई है ?'

'अब तो जैसे भी हो, दामोदर, हमें वही करना चाहिये जिससे समा-

धान हो सके।'

'जी हाँ, करना तो यही चाहिये।'

'तो देखो, धंधूकराज यहाँ आये हैं, लाहिनी देवी के पास ! लाहिनी देवी भी यही बात कहती हैं। तुम्हें शायद मालूम न होगा, कि देवी और गणधर भी इस समय लाहिनी देवी के पास बैठे बातें कर रहे हैं।'

'अच्छा ! तब तो यही कहना चाहिये कि पारिवारिक मिलन हुआ है ! सभी आये हैं ? देवी भी हैं ? धंधूकराज तो चित्रकोट से सीधे ही चले आ रहे होंगे ?'

'हाँ। उन्हें लौटा लाने में हमें खासी मुसीबतों का सामना करना पड़ा। वह भागकर चले गये थे मालवराज के आश्रय में। उनका युवराज पूर्ण-पाल भी एक ही हठी है। वह किसी भी प्रकार युद्ध-विराम के लिए तैयार नहीं हुआ। अन्त में मैंने सन्देशा भेजकर दोनो को एक साथ एक जगह भेंट करने के लिए कहलवाया। हमने चन्द्रावती को—उनकी संगमरमर की नगरी को—वैसा का वैसा रहने दिया, अपना पड़ाव नगरी के बाहर ही रखा; उन पर इस बात का भी असर हुआ। उधर मालव-नरेश की नीति के बारे में उन्हें सन्देह का कारण भी मिल गया। संकेतानुसार धंधूक-राज गुप्त रीति से मिलने के लिए आये। मिलने पर मैंने उनसे साफ़-साफ़ कहा कि भली प्रकार विचार करके देखिये कि किसके साथ सन्धि करने में आपका लाभ है, अवन्तीनाथ आपको हजम कर जायेंगे। वह परमार हैं, आप भी परमार हैं। उनके आसरे रहने पर देर-अबेर आप उनमें समा जायेंगे। हमारे सहारे रहने पर आप स्वतन्त्र रूप से जी सकेंगे। पाटन का राज्य अभी चढ़ती में है। अवन्ती की गिरावट शुरू हो गई है। आप अपने राजपुरोहित से भी मन्त्रणा कर लीजिये। मैं आपको लौट आने का अभय वचन देता हूँ—उन्हें यह बात सच मालूम हुई। इसी लिए वह वहाँ से सीधे मेरे ही साथ चले आये। उनमें दृढ़ निश्चय की थोड़ी कमी है, दामो-दर ! परन्तु सच्चे मन से महाराज के साथ समाधान करना चाहते हैं।

मालवावालों को इसका पता लगेगा तो बेचारे हाथ मलते रह जायेंगे।'

'और पूर्णपाल कहाँ है ?'

'पूर्णपाल इस समय विन्ध्याचल के जंगल मे है। परन्तु महाराज धंधूकराज के किये हुए समाधान के आड़े वह नहीं आयेगा।'

'और यदि आया ?'

'नहीं आयेगा। उसने दिव्यजल* लेकर मेरे समक्ष शपथ ली है कि जब तक महाराज धंधूकराज जीवित हैं मैं उनके कहे हुए शब्दों का पालन करूँगा।'

'और कृष्णराज ? वह तो नड्डूल में ही है न ?'

'वह कहाँ है मुझे पता नहीं। शायद वहीं हो।'

'धंधूकराज को क्या कहना है ?'

'चन्द्रावती में कोई दंडनायक नहीं रहेगा। चन्द्रावती परमारों की स्वतन्त्र नगरी है !'

दामोदर घड़ी-भर आँखें मूँदे बैठा रहा, मानो विमल के शब्दों को अपने अन्तःकरण मे अंकित कर रहा हो।

'हूँ ! और ?' और उसने विमल के सामने देखा।

'मा अम्बा भवानी के पासवाले संगमरमर के पहाड़ धंधूकराज पाटन को सौंप देंगे।'

'संगमरमर के पहाड़ ?'

'हाँ !'

'पाटन क्या उन्हें गले में बाँधेगा ?' दामोदर ने अविलम्ब विमल की विचार-परम्परा और धंधूकराज की शर्तों के रहस्य को आत्मसात् कर लिया; इसलिए उसने अपने स्वर को भी कुछ बदला। उसे लगा कि मन्दिरों

* देवमूर्ति को नहलाकर प्रतिज्ञा या शपथ के लिए उस जल का उपयोग करना।

का निर्माण करने की विमल की मौज के सिवाय इस बात मे दूसरी कोई ठोस बात नहीं है। धंधूकराज के दूसरे पुत्र कृष्णराज की अनुपस्थिति भी उसे खल रही थी। इधर इस तरह सन्धि-वार्ता करते हुए भी उधर कुल-चन्द्र के साथ मिलकर वह कोई नयी मोर्चेबन्दी नही कर रहा हो इसका क्या ठिकाना ?

'दामोदर !' विमल थोड़ा अधीर होकर बोला—'तेरा पाटन विशाल होगा, परन्तु चन्द्रावती तो महान है। पाटन को वह महत्ता अभी प्राप्त करनी है।'

'मेरा पाटन ?' दामोदर ने साश्चर्य पूछा—'और क्या वह आपका नहीं है ?'

'यह तो तुम्हारी इस बात का, कि संगमरमर के पहाड़ों को पाटन क्या गले बाँधेगा, मेरा जवाब है। बाकी पाटन की ओर से मैंने ही संग-मरमर के उन पहाड़ों को माँगा है। दडनायक चन्द्रावती में न रहे, वहाँ से इतने दूर रहे, तो परमारराज को भी अपनी पराधीनता अखरेगी नहीं; उलटे यही लगेगा कि उनका स्वाभिमान अक्षुण्ण है। और गणधर उन संगमरमर की शिलाओं को एक ऐसी अजर-अमर सजीव सृष्टि में परिवर्तित कर देगा कि जब मैं, तुम, पाटन, चन्द्रावती या और कोई न रहेंगे तब भी वह सृष्टि विद्यमान रहेगी।'

'विमलराज ! आप संगमरमर के पहाड़ ले सकते हैं। गणधर अपनी इच्छानुसार उनकी रचना कर सकता है। परन्तु जिसके करने से पाटन की महत्ता खंडित हो वैसा कोई काम मैं, आप या स्वयं भीमदेव महाराज भी नहीं कर सकते !'

'इसमे पाटन का महत्व किस तरह कम होगा, यह मेरी समझ में नहीं आया।'

'अर्बुद-मंडल को पाटन कभी भी अपने अधिकार से निकलने नहीं देगा, निकलकर जाने दे सकता भी नहीं। जिस दिन अर्बुद-मंडल पर से

सोलंकियों की सत्ता मिट जायेगी उस दिन पाटन पाटन न रहेगा। चन्द्रावती पाटन का हृदय-प्रदेश है, और हृदय ही रहेगा। अर्बुदपति आपको आरासुर के पहाड़ भले ही दे, परन्तु पाटन की सामन्ती वह छोड़ नहीं सकता, उसे पाटन का सामन्त बने ही रहना होगा। आप उसकी ओर से सन्धि-चर्चा करने के लिए नहीं, महाराज के समक्ष उसके अपराधों की क्षमा-याचना करने के लिए आये हैं।'

दामोदर का उत्तर स्पष्ट, सीधा और कुछ कठोर भी था। विमल को वह अपमानजनक लगा। दामोदर इसे ताड़ गया। उसने तत्काल बिगड़ती बात को बनाते हुए कहा—'ये दो बातें तो हो गईं, इनके अलावा कुछ और भी है, प्रभु? मुझे भी तो महाराज की सेवा में समस्त वार्तालाप निवेदित करना होगा।'

'जब तक धंधूकराज जीवित हैं युवराज पूर्णपाल महाराज के अधीन रहेंगे।'

'तत्पश्चात्?'

'उसके बाद क्या होगा, दामोदर, इसका मुझे या तुम्हें या किसी को भी क्या पता? यों समझकर चलो कि उसने अपनी टेक निबाहने का सन्तोष प्राप्त किया और हमने अर्बुदपति को अपने वश में कर लिया। ज्यादा खींचने से तो रस्सी के टूटने का ही अन्देशा है। उधर मालवा-वाले उसकी पीठ ठोंकने को तैयार हैं ही।'

'यदि महाराज इन प्रस्तावों को उचित समझें तो मुझे क्या आपत्ति हो सकती है?'

'महाराज को कैसा लगेगा?'

'यह मैं क्या कह सकता हूँ? हो सकता कि महाराज किसी ऐसी वस्तु की माँग करें जो धंधूकराज को पाटन के साथ बाँध रखने में सहायक हो, निमित्त बने।' दामोदर के मन में अभी भी कृष्णराज का विचार घूम रहा था। वह यही सोच रहा था कि कृष्णराज को सिन्ध के युद्ध में साथ लिया जाये

या नड्डूल को जीता जाये तो पुत्र-प्रेम के कारण धधूकराज शान्त बना रहेगा, कोई उपद्रव नहीं करेगा।

'तो क्या महाराज किसी वस्तु की माँग करेंगे ?'

'वस्तु की माँग अर्थात् ...लेकिन यह तो मेरा केवल अनुमान है। आप धंधूकराज से इस सम्बन्ध मे बातचीत कीजिये। मैं महाराज से बातें करता हूँ। महाराज के शिविर के समीपवाली पट्टकुटी में धंधूकराज के लिए हमने आतिथ्य की सभी सामग्रियाँ प्रस्तुत कर रखी हैं। वह खुशी से वहाँ आकर निवास करे।'

'धंधूकराज तो वहीं सूर्य-मन्दिर के निकट रहेंगे। वहाँ मन्दिर है और दूसरी सभी तरह की व्यवस्था भी है। और फिर राजपुरोहित रुद्रराशि भी वहीं है।'

'प्रभु !' नया दाँव चल रहा हो इस प्रकार अत्यन्त विनम्र और विनीत होकर दामोदर ने कहा—'अभी तक तो मैंने आपसे पाटन के महत्व के सम्बन्ध में ही कहा। लेकिन अब जो कह रहा हूँ उसका सम्बन्ध तो देश-विदेश मे पाटन की कीर्ति से है।'

'सो क्या है दामोदर ? जरा खोलकर बात कहो।'

'पाटनपति द्वारा अभय वचन दिये जाने पर भी यदि अर्बुदपति उनके समीप रहकर आतिथ्य ग्रहण न करें तो आप ही सोचिये, देश-विदेश में पाटनपति के वचन का मोल ही क्या रह जायेगा ? यह तो कोई नहीं कहेगा कि उनकी पुत्री या राजपुरोहित वहाँ थे इसलिए नहीं गये; सब यही कहेंगे कि अभय वचन तो मिला, परन्तु वह विश्वसनीय नहीं था। इसी लिए कह रहा हूँ कि यहाँ आने के बाद यदि धंधूकराज वहाँ निवास करेंगे तो पाटन के दिये वचन की छीछालेदर हो जायेगी, दुनिया-जहान में कहावत बन जायेगी।'

विमल विचारमग्न हो गया। थोड़ी देर बाद उसने कहा—'दामोदर, कहना तो तुम्हारा सच है, लेकिन धंधूकराज मानेंगे ?'

'यदि मैं स्वयं निमन्त्रण देने चलूँ ?'

'हाँ, दामोदर ! यही ठीक होगा। इतने आदर-मान के बाद सम्भवतः आतिथ्य अस्वीकार करते हुए वह लज्जित हों।'

थोड़ी देर बाद दामोदर अपनी पट्टकुटी में से बाहर निकला। बाहर आकर उसने आयुष को एक ओर शान्तिपूर्वक खड़े देखा। दामोदर ने उसे संकेत से अपने समीप बुलाया। जब वह आ गया तो उसे धीरे से कहा—'आयुष ! मेरी पट्टकुटी के पिछले हिस्से में कुछ चित्र रखे हैं। उनमें से अर्बुदपति के पुत्र कृष्णराज का चित्र खोजकर निकाल लेना। और कार्तिक स्वामी आये तो उसे यहीं रुकने के लिए कहना।'

उसके बाद विमल और दामोदर वटेश्वर के मन्दिर की ओर चले गये।

१५. कार्तिक द्वारा लाहिनी बावली का निरीक्षण

आयुष ने दामोदर को जैसे ही धंधूकराज के आने के समाचार दिये, कार्तिक स्वामी वटेश्वर की तरफ चला गया था।

उसने वहाँ जाकर मन्दिर मे चारों तरफ घूम-फिरकर देखा, लेकिन उसे कोई भी सैनिक, पैदल, घुड़सवार या गजाधिपति नहीं दिखाई दिया। केवल धंधूकराज और गणधर के दो हाथी मन्दिर के बाहर एक विशाल वट-वृक्ष की छाया में झूम रहे थे।

कार्तिक स्वामी उस ओर गया। धंधूकराज का एक छोटे पहाड़-जैसा बड़ा भारी हाथी खड़ा खड़ा बदन हिला रहा था। उसके ऊपर से कीमती हौदा भी अभी तक उतारा नहीं गया था। गणधर के हाथी का महावत वहाँ खड़ा-खड़ा सामनेवाले किनारे की ओर देख रहा था। कार्तिक उससे बातें करने लगा।

'क्या गणधरजी भी आये हैं ?'

'हाँ, वे भला आये बिना रह सकते थे ?'

'क्यों ?'

'उन्होंने तो जब से यहाँ के सूर्य-मन्दिर के बारे में सुना तभी से आने की लगन लगी थी। देवी भी पधारी हैं।'

'अच्छा ! जगह तो सचमुच सुन्दर है !'

कार्तिक ने चारों ओर देखा। दूर की एक बावली पर दो-तीन आदमी खडे दिखाई दिये।

'शायद वहाँ गये हैं उस बावली पर।' कार्तिक ने महावत को उँगली

से संकेत करके दिखलाते हुए कहा—'वहाँ खड़े तो हैं।'

'कौन ?'

'गणधरजी और देवी आदि सभी !'

'नहीं, नहीं; वे सब तो वहाँ पुरोहितजी महाराज के पास बैठे हैं। वहाँ जो खडे हैं वह तो धंधूकराज के महावत हैं, उस ओर घूमने गये हैं। मैं यहाँ देख-रेख पर था इसलिए मुझसे कह गये हैं कि जरा घूम आऊँ।'

'हाँ, बावली है तो बड़ी सुन्दर, देखने योग्य है। चार तो मंजिलें हैं !' कार्तिक ने कहा।

'आपने देखी है ?'

'एक बार गया था। यात्रियों का दो घड़ी सुस्ताने का मन हो आये ऐसी ठंडी जगह है। अब आया हूँ तो चलूँ, मैं भी वहाँ हो ही आऊँ !'

'हाँ-हाँ, जरूर हो आइये। सामनेवाले किनारे से दो हाथी इस ओर आते हुए दिख रहे हैं। एक तो दंडनायक स्वयं है....'

'तब तो दूसरा हाथी महामंत्रीश्वर का होगा।' कार्तिक ने कहा—'तो चलूँ, जय सोमनाथ !'

'जय....' महावत ने जवाब दिया—'आप उधर जा रहे हैं तो उस महावत से कहियेगा—क्या नाम है उसका ? मैं तो इस तरह के अटपटे नाम याद नहीं रख सकता। इधर के लोगों के तो नाम भी बड़े विचित्र होते हैं।' इतना कहकर महावत नाम याद करने लगा।

'क्या कहना है ?' कार्तिक ने जाते-जाते रुककर पूछा।

'कहियेगा उसे—अरे, अच्छा-सा नाम है उसका। हाँ-हाँ, याद आ गया—कल्ल—'

'क्या कहना है कल्ल से ?' कार्तिक हँसा—'नाम भी कितना विचित्र है ? कल्ल !'

'कहियेगा कि भाई, बावली देख ली हो और सत्तू खा लिया हो तो लौट आओ। मेरा तो अभी रसोई का ही ठिकाना नहीं !'

'अवश्य कह दूँगा। कल्ल ही नाम है न ?'

'हाँ—कल्ल—'

कार्तिक स्वामी नाम याद करता हुआ चला। धंधूकराज का महावत बावली देखने जाये यह बात उसे कुछ विचारणीय लगी। वह जल्दी-जल्दी लाहिनी बावली की तरफ चलने लगा।

जब वह लाहिनी बावली पर पहुँचा तो उसने वहाँ किसी को न देखा। उसे आश्चर्य हुआ। दूर से दो-तीन आदमी दिखाई पड़ते थे, लेकिन यहाँ आने पर उनमें से कोई भी न मिला। उसके मन में बावली के बारे में शंका का बीजारोपण हो गया।

धंधूकराज की पुत्री लाहिनी देवी द्वारा बनवाई हुई यह बावली बड़ी ही सुन्दर थी, मानो बनवानेवाली ने इसकी बनावट में अपना जीवन-रस ही उड़ेल दिया हो। यात्री आनन्द करें, रात भी बिता सकें, तीसरे पहर का नाश्ता करें, केवल सुस्ताना हो तो सुस्ता लें इस तरह अलग-अलग आराम करने की अनेकविध व्यवस्थाएँ उस बावली में की गई थीं। जहाँ से अन्दर उतरने की सीढ़ियाँ शुरू होती थीं वहाँ बावली का निर्माण करवानेवाली ने दोनों हाथ जोड़कर खड़ी हुई अपनी एक अत्यन्त विनम्र प्रतिमा स्थापित करवाई थी, मानो युग-युग के अनेक मानव-यात्रियों के ओठ पर एक क्षण के लिए भी यदि अपना नाम आ जाये तो जीवन का समूचा साफल्य प्राप्त हो जाये, इस भावना से भरी वह मूर्ति वहाँ खड़ी थी। अनन्त काल के किनारे खड़े किसी अनजान मनुष्य के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करने के लिए आतुर हो इस तरह वह प्रतिमा प्रत्येक आगन्तुक को अन्दर आने के लिए नम्रतापूर्वक आमन्त्रित कर रही थी।

कार्तिक स्वामी क्षण-भर वहाँ ठिठका। उसे दृश्य आकर्षक लगा। परन्तु उसे बावली के अन्दर घूम आना था, इसलिए वह सीढ़ियाँ उतरकर तत्काल बावली के अन्दर नीचे चला गया।

उसने बावली में उतरकर एक एक कोने और एक-एक मंजिल को खूब अच्छी तरह देखा।

अन्त में वह चौथी मंजिल पर चढ गया। वहाँ झरोखे में बैठकर उसने नीचे की ओर देखा—किसी विशाल सरोवर की भाँति बावली का पानी हिलोरें लेता हुआ मुख्य प्रकोष्ठ की दीवालों से टकरा रहा था। जो आदमी हठात् अदृश्य हो गये थे उनकी समस्या अब भी उसके मन में चक्कर लगा रही थी। एकाएक वह क्या देखता है कि जो छोटी-छोटी सीढ़ियाँ पानी की सतह तक आकर समाप्त हो गई थीं, उनका सिलसिला प्रकोष्ठ के अन्दर तक चला जा रहा है। ध्यानपूर्वक देखने से उसे पता चला कि सीढ़ियों का वह सिलसिला प्रकोष्ठ की बाहरी दीवाल से लगा-लगा ठेठ पृथ्वी के अन्दर तक चला गया है। वह थोड़ी देर तक वहाँ शान्तिपूर्वक बैठा रहा।

दो-एक क्षण इसी तरह बीत गये और उसने उन सीढ़ियों पर एक आदमी को आते हुए देखा। आगन्तुक का चेहरा एक बार देखकर भूला न जा सके इतना आकर्षक था। उसके पीछे-पीछे एक आदमी और भी चला आ रहा था। कार्तिक स्वामी को यह देखकर और भी कुतूहल हो रहा था कि वह स्वयं जिस रास्ते से बावली में आया उससे भिन्न किसी दूसरे ही रास्ते से वे लोग आये थे। वह रास्ता बावली की सीधी सीढ़ियों-वाले रास्ते से एकदम जुदा होना चाहिये, नहीं तो वह उन्हें आते हुए अवश्य देखता। आगन्तुक कहीं उसे देख न लें इस विचार से कार्तिक स्वामी तत्काल झरोखे से नीचे उतर गया।

आगन्तुकों में से एक कुछ कह रहा था। कार्तिक स्वामी झरोखे के निचले हिस्से में फर्श से सटकर छिप गया।

'अपना नाम भी, महाराज, आप अच्छी तरह याद कर लीजिये। भूल होना स्वाभाविक है। दूसरे नाम से बुलाने पर भेद खुल जायेगा।'

'मेरा नाम ?'

'जी हाँ, आपका नाम कल्लू है, इसे न भूलियेगा।'

'अच्छा, तो अब तू मुझे इसी नाम से पुकार, मैं जवाब देता हूँ, इस तरह अभ्यास हो जायेगा।'

'कल्ल !' दूसरे आदमी ने पुकारा।

'जी, प्रभु !' पहले आदमी ने हाथ जोड़कर इस तरह कहा मानो साभिनय बोलने का अभ्यास कर रहा हो।

'कल्ल ?' कार्तिक को आश्चर्य हुआ।' यह तो धंधूकराज के महावत का नाम है। इन दोनो मे से एक तो वही है, परन्तु दूसरा कौन है ?' वह सुनने के लिए और भी सतर्क हो गया।

अपने छिपने की जगह से सिर उठाकर उसने सावधानी से नीचे देखा।

दोनों आदमी अब भी वहीं खडे थे। कार्तिक पुनः फुर्ती से दुबक गया और कान लगाकर सुनने लना। बोलने की ध्वनि तो सुनाई पड़ रही थी, परन्तु अर्थ स्पष्ट नहीं हो रहा था कुछ देर तक इसी तरह स्वर सुनाई देते रहे, लेकिन अर्थ समझ मे नहीं आया। फिर एकदम नीरवता छा गई। उसने पुनः सिर उठाकर नीचे की ओर देखा।

अब वहाँ केवल एक ही आदमी खड़ा था, दूसरा दिखाई नहीं दे रहा था। ऐसा लगा, मानो जिधर से दोनों आये थे उधर ही दूसरा गायब हो गया है। कार्तिक स्वामी भी उठ खड़ा हुआ और शीघ्रता से बाहर की ओर दौड़ा। उसका मन्शा आगन्तुकों से इस तरह सामने की ओर से आकर मिलने का था, मानो वह अभी ही बावली के अन्दर चला आ रहा हो। वह बावली के बाहर ठेठ ऊपरवाले हिस्से मे चला आया, दोनो आगन्तुकों मे से एक भी उसे दिखाई न दिया। अब वह आगन्तुकों के सन्देह को निर्मूल करने के लिए जिस रास्ते से बावली देखने के लिए आया था उसी पर लौट चला और कुछ दूर जाकर फिर बावली की ओर इस तरह धीमे-धीमे चहलकदमी करता हुआ आने लगा, मानो पहली ही बार उधर आ रहा हो।

तभी उसे बावली की बगल में एक आदमी दिखाई दिया।

कार्तिक स्वामी को आश्चर्य हुआ। अन्दर उसने दो आदमियों को देखा था, बाहर केवल एक ही आया था, दूसरा कहीं दिखाई नहीं दिया था। जैसे कुछ जानता ही न हो इस तरह कार्तिक बावली की ओर गया।

बावली के समीप पहुँचकर उसने उस आदमी को नमस्कार किया और पूछा—'कहिये, देख आये बावली ?'

उस आदमी ने आश्चर्यचकित और शंकित होकर उसकी ओर देखा। कार्तिक स्वामी को तत्काल खयाल आया कि कहीं उसके प्रश्न करने के ढंग से भेद प्रकट न हो जाये, इसलिए उसने चतुराई से विषय परिवर्तन करते हुए कहा—'क्षमा कीजिये, मैं तो उधर से, वहाँ जो दो हाथी खड़े हैं, वहाँ से आ रहा हूँ। इधर आने लगा तो महावत ने मुझसे कहा, कि बावली देखने जा रहे हो तो जरा मेरा सन्देशा भी लेते जाओ। सन्देशा शायद आपका ही हो, इसलिए मैं पूछ बैठा।'

'सन्देशा किसने भेजा है ?'

'वहाँ जो महावत है।'

'क्या सन्देशा है ?'

'कल्ल, या ऐसा ही कुछ नाम बतलाया है।'

'हाँ, कल्ल मैं ही हूँ।'

'उन्हें अभी भोजन बनाना है, इसलिए आपको जल्दी बुलाया है।'

'हाँ, हाँ !'

कार्तिक स्वामी उसके स्वर को सुनता और मन-ही-मन उससे परिचित होता रहा।

'देख ली बावली ? कहते हैं कि देखने जैसी है। जब इतने पास आ गये हैं तो मैंने भी कहा कि आओ, देखता चलूँ। आप तो देख आये होंगे ?'

'नहीं। मैं—मैंने तो देखी हुई है। मैं तो यहीं का रहनेवाला हूँ।

अच्छा चलूँ, उधर मेरी प्रतीक्षा की जा रही होगी।'

कल्ल ने दोनो हाथ जोडे। कार्तिक स्वामी ने भी दोनो हाथ जोड़-कर नमस्कार किया। कुछ दूर जाने पर कल्ल ने रुककर इस तरह आवाज दी मानो कोई बात याद आ गई हो—'अरे ...ओ भाई . .तुम ..तुम्हारा नाम क्या है?'

'जी, मेरा नाम केशव है।' कार्तिक ने उत्तर दिया।

'हाँ, देखो, बावली मे ज्यादा अन्दर न उतरना। लौटते समय कई गफलत मे पड़ते और डर भी जाते हैं। बहुत बड़ी जो है।'

'अच्छा!' कार्तिक स्वामी मन-ही-मन हँसा। उसे विश्वास हो गया कि एक आदमी अन्दर रह गया है। वही अन्दर रहना चाहिये जिसका चेहरा-मुहरा आकर्षक था। वह सोचने लगा—अन्दरवाला कौन है? और उनकी योजना क्या है?

कल्ल को दिखलाने के लिए वह थोड़ा-सा अन्दर उतरा और कुछ देर वहीं ठिठककर फिर बाहर आया और शीघ्रता से वटेश्वर के मन्दिर की ओर लौट चला।

१६. कहे या न कहे ?

कार्तिक स्वामी सोलंकी की छावनी में जैसे ही वापस आया, आयुष ने उसे खबर दी कि मंत्रीश्वर महाराज से मिलने जानेवाले हैं, परन्तु तुम्हारे लौट आने की राह देख रहे है।

कार्तिक झपटकर अन्दर गया। उसने दामोदर को चिन्ता में डूबे पट्टकुटी में इधर से उधर घूमते देखा। कार्तिक ने उसे पहिले कभी भी इतना अधिक चिन्तित नहीं देखा था। उसके कपाल पर सलवटें पड़ी हुई थीं और एक हाथ ठुड्डी पर ही रह गया था। वह पिंजरे मे बन्द शेर की तरह इधर-उधर घूम रहा था। अपने विचारों में वह इतना तल्लीन था कि कार्तिक का अन्दर आना न जान सका।

'आयुष ! क्या कार्तिक आ गया ?' उसने आयुष को आवाज़ देकर पूछा।

'महाराज ! मैं तो यहीं खड़ा हूं !' कार्तिक ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

'तो फिर बोलता क्यों नहीं ? क्या जानता नहीं कि इस समय प्रत्येक क्षण अनमोल है ? बतला, क्या कर आया है ?'

'लगता है कि धधूकराज अकेले ही हैं। कोई दूसरा साथ नहीं है।'

'कोई भी नहीं है ?'

'जी नहीं।'

'परन्तु, तू लाहिनी बावली की ओर गया था न, वहाँ क्या देखा ?'

'महाराज ! मैंने वहाँ एक आदमी को देखा—धधूकराज के महावत

को !' कार्तिक ने जानबूझ कर दूसरे का नाम नहीं लिया।

'कल्ल !'

'हाँ, महाराज !' दामोदर की जरा-जरा-सी बात मालूम करने की क्षमता से कार्तिक स्वामी को जितना आश्चर्य हुआ, अब उतना ही क्षोभ भी होने लगा। वह सोचने लगा कि बावली में जो कुछ देख-सुन आया है उसे किस ढंग से कहे। उसे पूर्ण विश्वास था कि जरा-सी शंका होते ही मंत्रीश्वर दंडनायक के दिये हुए अभय वचन को तोड़ने में देर नहीं लगायेगा। इसलिए कार्तिक ने निश्चय किया कि पूरी जानकारी प्राप्त करने के बाद ही कुछ कहना अधिक अच्छा होगा। तभी दामोदर ने पूछा—इस कल्ल की क्या बात है ?'

'महाराज !'

'अरे ! हकलाता क्यों है ?'—दामोदर ने अचानक कहा—'अभी मुझे महाराज के पास जाना है, और महाराज से यही कहना है कि अगर कल धधूकराज महाराज की शरण मे आने का अपना विचार प्रकट न करें तो सोलंकी दल उनके हाथी को, कल्ल को और स्वयं उनको भी फिलहाल यहीं रोक लेगा। समझा ?'

'प्रभु ! क्या दंडनायक का अभय वचन व्यर्थ जायेगा ?'

'हाँ !' दामोदर ने शीघ्रता से कहा।

'और क्या दंडनायक इसे चुपचाप सह लेंगे ? पाटन के घर-आँगन की अपेक्षा आडावला मे मचा हुआ सोलंकियों का गृह-युद्ध क्या अधिक विनाशकारी नहीं होगा ?'

दामोदर ने पट्टकुटी मे एक दो चक्कर और लगाये। अन्त मे वह चुपचाप खड़ा हो गया—'देख, कार्तिक स्वामी ! बहुत करके तो आज रात में ही धधूकराज भाग जायेंगे !'

'वापस चले जायेंगे ?'

'हाँ।'

'आपने कैसे जाना, प्रभु ?'

'वह आदमी दुराग्रही है। वह महाराज भीमदेव के साथ सन्धि करना चाहता है। वह इतने अभिमान से बात करना चाहता है, मानो स्वयं ही अवन्तिपति हो। मैं इस बात को इस तरह होने देना नहीं चाहता। दंडनायक तो स्वप्नदर्शी, अव्यावहारिक आदमी हैं। आज रात अपना भविष्य जानने के लिए, नदी के उस पार, जहाँ रुद्रराशि अनुष्ठान कर रहा है, धंधूकराज अकेले ही जायेंगे। अगर भविष्यवाणी से यह पता चला कि युद्ध मे या मालवा के साथ सन्धि करने मे लाभ नहीं होगा, तो वह मालवा का साथ छोड़ देंगे—परन्तु फिर भी तू तो महाराज धंधूकराज के हाथी और महावत को सँभाले रखना। वे जहाँ हैं वहाँ से जरा भी हिलने न पायें, समझा? कौन कह सकता है कि भागने का उनका मन नहीं हो जायेगा ?'

'बल्कि तू तो ऐसा कर कार्तिक स्वामी!' ऐसा लगा मानो दामोदर गम्भीर विचार कर रहा हो, 'कि इस कल्ल को तो साँझ होते ही पकड़कर कहीं बन्द कर दे! लाहिनी बावली के नीचे एक तहखाना है, उसी मे बन्द कर देना। और ऊपर तुम दोनों जने रखवाली करना—तू और जयदेव!'

'अरे, आयुष!' दामोदर ने ताली बजाई।

कार्तिक स्वामी कुछ जवाब दे, दूसरी कोई बात कहे या कुछ खुलासा करे उसके पहले ही आयुष वहाँ आकर खड़ा हो गया।

'आयुष! क्या तूने उन चित्रो को निकाल लिया है ?'

'हाँ, महाराज!'

'ला तो—'

आयुष ने अवन्तिपति और अर्बुदपति के अनेकों मन्त्रियों, सरदारों, गुप्तचरों आदि के चित्र वहाँ फैला दिये।

दामोदर ने जल्दी से एक चित्र उठा लिया—'यह रहा—यह कृष्ण-

राज है !' उसने वह चित्र कार्तिक के सामने रख दिया।

कार्तिक स्तब्ध रह गया। लाहिनी बावली में जो आकर्षक चेहरा उसने देखा था—ठीक वही चेहरा इस चित्र में भी अंकित था। परन्तु उसे यह बात कहना चाहिये या नहीं, इसका निश्चय वह नहीं कर सका। दामोदर इस बात को जानता है या सिर्फ अनुमान कर रहा है इस बात का वह कुछ अन्दाज न लगा सका। वह कुछ व्यग्र हो गया। तभी दामोदर ने कहा—'कार्तिक ! तू इस चित्र को ठीक से देख ले। कृष्णराज यदि यहाँ आया—नड्डूल से देवराज का ऐसा ही सन्देशा आया है—या आनेवाला हो तो उसका चित्र-परिचय तेरे लिए उपयोगी होगा।'

अब तो कार्तिक स्वामी की व्यग्रता की सीमा ही नहीं रह गई। अगर मंत्रीश्वर को कृष्णराज के बारे मे पता चल गया तो इस एक ही बात पर धंधूकराज के भविष्य का निर्णय कर देगा, इसमे जरा भी संशय नहीं है। यह तो बिलकुल असम्भव है कि हाथ आये हुए ऐसे अवसर को दामोदर जाने देगा। और अगर ऐसा हुआ तो दडनायक और मंत्रीश्वर के बीच पुनः संघर्ष होगा। वह यही सोच रहा था। यदि मंत्रीश्वर इस बात को जानता न हो और वह कह दे तो यही परिणाम होगा; और यदि वह जानता हो और न कहे तो उसका विश्वास गँवा बैठेगा। अन्त में उसने मौन रहने में ही कुशल समझी।

'क्या सोच रहा है, कार्तिक ?'

'महाराज, आपके कथनानुसार कल्ल को वहाँ लाहिनी बावली के नीचेवाले तहखाने मे बन्द करने के लिए कौन-सा उपाय करना होगा ?' कार्तिक ने इतनी सावधानी से अपने मन की बात छिपाई कि मंत्रीश्वर को जरा भी शंका न हो सकी।

'तू और जयदेव उसे बावली देखने के बहाने वहाँ ले जाना। उसे बातों मे लगाना—या तो वह मदिरा का भक्त होगा; और ऐसा न हो तो कोई स्त्री ढूँढ लेना। मदिरा और स्त्री—ये दोनों ही गुप्तचर के अमोघ

हथियार हैं !'

'हाँ प्रभु !'

'देख, मैं तो रुद्रराशि की भविष्यवाणी सुनने के लिए गया रहूँगा' इसलिए यहाँ से कत्ल या हाथी या कोई भी इधर-उधर हुआ तो जिम्मेवारी तेरी होगी, समझा ?'

'हाँ, महाराज !' कार्तिक अभी तक यह नहीं जान पाया था कि जिस बात को वह छिपा रहा है उसकी जानकारी दामोदर को है या नहीं।

'प्रभु ! ऐसा क्यों न करूँ कि महावत और हाथी दोनों को लाहिनी बावली के समीप ले आऊँ ?'

'उससे क्या फायदा होगा ?'

'मान लीजिये कि भविष्य मालूम कर लेने के बाद धंधूकराज हमारे अनुकूल हो रहे तो इस कार्रवाई से व्यर्थ ही झमेला उठ खड़ा होगा। लेकिन स्थानान्तर के कारण वैसी कोई बात न होगी और उनकी योजना मे गड़बड़ तो खैर हो ही जायेगी। इस बीच हमे सच्ची बात का पता भी लग ही जायेगा।

'हाँ, यही ठीक है ! जयदेव को साथ रखना।'

'हाँ, महाराज !'

'महाराज ! मैं तो यहीं हूँ !' जयदेव बाहर से आ रहा था, अपना नाम सुनकर वह अन्दर आया—'महाराज ! क्या आपने मुझे याद किया ? मकवाणाजी आये हैं !'

'कौन ? केसर मकवाणाजी ?'

'हाँ, महाराज !'

'कहाँ हैं ? किधर से आ निकले ?'

'महाराज से मिलने गये है ! सिन्ध से सीधे चले आ रहे हैं।'

'अच्छा, देखा ! तुझे आज कार्तिक स्वामी जहाँ ले जायें वहाँ उनके साथ जाना है, समझा ? कार्तिक ! एक भी वस्तु गुम हुई तो तू जिम्मे-

वार होगा। चलो, आयुष! मुझे महाराज के पास जाना है। मेरी पालकी—आयुष! यह सब तू समेट लेना। और कार्तिक! पहला चेहरा याद है न?'

'हाँ, महाराज!' कार्तिक ने जवाब दिया।

थोड़ी देर बाद जब कार्तिक पट्टकुटी मे से बाहर निकला तो उसकी व्याकुलता का पार नहीं था।

दामोदर कितनी बाते जानता है इसका उसे पता न चल सका। दंडनायक और मंत्रीश्वर के बीच संघर्ष रोकने के लिए जिस बात को गुप्त रखना जरूरी था, अब उसको प्रकट करने की भी उतनी ही आवश्यकता उपस्थित हो गई थी।

वह स्वयं कोई निश्चय न कर सका। शाम को मिलने का स्थान बतलाकर उसने जयदेव को बिदा किया। अपने काम को ठीक से समझने के लिए वह नदी के किनारे एक घड़ी तक घोड़े पर सवारी कर उसे दौड़ाता रहा।

१७. एक नहीं, दो कल्ल !

'जयदेव !'

'क्या है कार्तिकजी ? आप क्या कह रहे हैं ?'

'तुम वहाँ क्या देखते हो ?'

'कहाँ ?'

'उस बावली के नजदीक कोठे की ओर, तुम्हें वहाँ से चले आते दो आदमी दिखाई दे रहे हैं ?'

'हाँ, महाराज ! क्यों ?'

'दोनों एक-से दीखते हैं न ?'

जयदेव ने उस तरफ देखा, थोड़ी देर के लिए आश्चर्यचकित रह गया—'अरे ! हाँ ! लगता तो ऐसा ही है !'

जयदेव और कार्तिक स्वामी दोनों एक विशाल वट-वृक्ष के ऊपर चढ़कर चुपचाप बैठे थे। साँझ हो रही थी। रास्ते पर से उड़ी हुई गो-धूलि वेला की रज सूर्य की किरणों को प्रतिबिम्बित करती रुपहले प्रकाश से चमक रही थी। लाहिनी बावली के प्रकोष्ठवाले भाग की ओर से दो आदमी बाहर निकलकर इसी वट-वृक्ष की ओर आ रहे थे।

कार्तिक ने जयदेव का हाथ पकड़ा और धीरे से उसके कान मे कहा—'अब तुम कुछ बोलना मत। देखो, दोनों के चेहरे—वेशभूषा—आदि में कितना अधिक साम्य है ? तुम देख रहे हो न ?'

'हाँ, परन्तु ये दोनों कौन हैं ?'

'इनमें से एक तो कल्ल है—धंधूकराज का महावत !'

'कौन-सा ?'

कार्तिक स्वामी ने कल्ल को दिखलाने के लिए अँगुली उठाई, परन्तु अँगुली इस तरह स्थिर हो गई मानो उसे लकवा मार गया हो। उसकी निगाह भी उसी दिशा में स्थिर होकर रह गई—'अरे! जयदेव! इनमे कल्ल कौन है ? ये तो दोनों ही कल्ल हैं!'

'फिर ?'

'मैंने स्वयं ही कल्ल को इस दिशा में भेजा था, ताकि बावली के सम्बन्ध में उसकी हलचल पर निगाह रखी जा सके। मानो लाहिनी देवी ने ही कहलवाया हो, इस तरह मैंने रुद्रराशि के एक शिष्य के द्वारा उसे यह सन्देशा भिजवा दिया था कि महाराज धंधूकराज तो वहाँ गये जहाँ उन्हे जाना था, और तुम्हारे लिए कहलवाया है कि महाराज के हाथी के मदोन्मत्त होने के कारण मन्दिर की एकान्त उपासना में विघ्न पड़ता है, इसलिए लाहिनी बावली के पास अच्छा स्थान देखकर हाथी को वहाँ ले जाओ!'

इतने में दोनों कल्ल वहाँ आ पहुँचे।

कार्तिक स्वामी ने खूब ध्यानपूर्वक उनकी ओर देखा। परन्तु उनमें से कौन असली कल्ल है और कौन नकली यह वह जान नहीं सका। वेशभूषा, सजधज और चेहरे मे इतना अधिक साम्य था कि कार्तिक स्वामी कृष्णराज का चेहरा याद कर लेने पर भी सामने के किसी चेहरे को अपने उस ज्ञान से पढ़ न पाया। वह उन दोनो चेहरों में भेद कर ही न सका।

अन्त मे आवाज से पहचानने की उसने कोशिश की। परन्तु यह देखकर उसके आश्चर्य की कोई सीमा न रही कि ध्वनि का ठीक से अनुसरण करने के लिए या ऐसे ही किसी कारण से वे दोनों एक साथ बोलने लगे थे; और इसी लिए कार्तिक दोनों आवाजों मे कोई भेद न कर पाया। अब तो यदि उनकी कोई योजना हो, तो उसी को जानने के लिए वह

वहाँ चुपचाप बैठा रहा।

मुँह दिखना बन्द हो गया था। अन्धकार प्रगाढ़ होता जा रहा था। कार्तिक और जयदेव दोनों वट-वृक्ष के ऊपर चुप बैठे थे। नीचे गजराज के पास खड़े-खडे दोनों कल्ल बातें कर रहे थे।

'महाराज लौटेंगे तब तक तो लगभग सवेरा हो रहा होगा। मुझे कहा था कि गजराज को तैयार रखना। समय पर जरूरत हो सकती है।'

'ठीक—परन्तु मान लो कि महाराज को जाना न हुआ ! और बहुत करके तो जाना नहीं ही होगा, तब ?'

'तो क्या करना होगा ?'

'ऐसा किया जाये कि एक आदमी बाहर रहे, और एक आदमी अन्दर रहे !'

'अन्दर ?'

'हाँ !'

'कहाँ ?'

'वहीं, बावली के प्रकोष्ठ के पास ही। ऐसा लगता है कि उस स्थान को अभी तक किसी ने देखा नहीं है।'

'अच्छा, तो ऐसा ही किया जाये।'

'आवश्यक जानकारी प्राप्त करके एक आदमी प्रकोष्ठ में आ जाये, तब दूसरा उससे सब बातें मालूम करके बाहर निकल आये। इस तरह भेद भी न खुलेगा और जानने लायक बातें भी मालूम हो जायेंगी।'

'ठीक है।'

थोड़ी देर तक नीरवता रही। ऊपर की बातचीत से कार्तिक स्वामी इतना तो समझ गया था कि दो कल्ल में से एक कल्ल बाहर रहेगा और एक अन्दर जायेगा। अब अँधेरा भी अच्छी तरह घिर गया था, इसलिए दोनों में से एक का भी चेहरा दीख नहीं सकता था। कंठ-स्वर में इतनी समानता थी कि कौन किससे क्या कह रहा है यह स्पष्ट मालूम नहीं हो पा

रहा था। कार्तिक स्वामी को अब अपने महान् उत्तरदायित्व का ध्यान आया। यह तो जानने का कोई साधन रह ही नहीं गया था कि कौन-सा कल्ल कृष्णराज है—अन्दर रहनेवाला या बाहर रहनेवाला ?

और इस बात को जाने बिना वह कुछ कर नहीं सकता था, क्योंकि सारा मामला ही गड़बड़ा जाता।

उसकी इस समय की स्थिति कुछ ऐसी विचित्र हो गई थी कि न तो कुछ बोल सकता था, न कुछ जान ही सकता था।

उसे तो केवल चुपचाप रात बितानी थी।

थोड़ी देर बाद उन दोनों में से एक चला गया। और जो कल्ल रह गया था वह खर्राटे भरने लगा।

कार्तिक स्वामी को नींद नहीं आई। उसे यह पता न चल सका था कि महावत इस हाथी को लेकर कब चला जायेगा ? इसलिए जागते हुए पहरा देने के सिवा और कोई चारा उसके सामने नहीं था।

उसका मन जाने कहाँ-कहाँ की होनी-अनहोनी बातों को सोचने लगा—'दामोदर मेहता—पाटन-जैसे महाराज्य का महामंत्रीश्वर इस समय अकेला रुद्रराशि का अनुष्ठान देख रहा होगा; भगवान न करें, परन्तु मान लो कि कोई गुप्त रूप से उसका वध कर डाले तो क्या हो ? उसने कृष्णराज की बात दामोदर से छिपाई थी, परन्तु जो बात-चीत उसने अभी सुनी, उसके अनुसार आचरण करने के बदले, वही कृष्णराज वहाँ जा पहुँचे, तो क्या हो ?'

इस प्रकार उसके मन में भाँति-भाँति के प्रश्न उठने लगे।

१८. रुद्रराशि का त्रिकाल-ज्ञान

रुद्रराशि सरस्वती नदी के सामनेवाले किनारे पर अवस्थित जंगल में अनुष्ठान कर रहा था। धंधूकराज इस समय वहीं जा रहा था। दामोदर भी केसर मकवाणा को साथ लेकर उसका पीछा कर रहा था। आधी रात का समय था। धंधूकराज अकेला चला जा रहा था। दामोदर और मकवाणा पीछे चले आ रहे हैं, इसकी उसे जरा भी खबर न थी।

धंधूकराज अपनी धुन में चला जा रहा था।

जंगल घना होता गया। अन्धकार बढ़ता गया। अन्त में एक वट-वृक्ष आया। धंधूकराज क्षण-भर वहाँ रुका।

जंगल में उसके पीछे चले आते दामोदर ने मकवाणा का हाथ पकड़-कर धीरे से कहा—'महाराज! अब चलिये—सच्ची हिम्मत का काम तो अब है।'

'कहाँ?' मकवाणा ने पूछा।

'इस बरगद के पेड़ के पास रुद्रराशि ने संकेत के लिए दो आद-मियों को खड़ा किया था। वे जंगल के चौकीदार थे। उनका काम धंधूक-राज का पथ-प्रदर्शन करना था। इस समय दोनों में से एक भी यहाँ नहीं ...'

'क्यों, कहाँ चले गये?'

'कहीं गये हों। आइये, हम पथप्रदर्शक बन जायें।'

'और कहीं वे आ गये?'

'यहाँ के अधिकाश कुओं में एक खासियत होती है—आदमियों को

हिफाजत से रखने की। वे तो इस समय ठण्डी हवा खा रहे होंगे।'

'अच्छा, तो मेहताजी, इसी लिए आपने मुझे चौकीदार का भेष धारण करवाया है?'

'जी, हाँ। अब चलिये! देखिये, ज्यादा न बोलियेगा।'

केसर और दामोदर बिना कुछ बोले आगे बढ़े। धंधूकराज बरगद के नीचे आकर अभी खड़ा हुआ ही था कि दामोदर और केसर ने एक ओर से आकर प्रणाम किया और खडे हो गये।

'कौन?' धंधूकराज ने पूछा।

'सारांग।' मकवाणा ने आवाज बदलकर जवाब दिया।

'चौकीदार! क्या गुरुजी ने भेजा है?'

'हाँ, महाराज!'

'चल, रास्ता दिखा—आगे हो।'

एक भी शब्द बोले बिना दामोदर आगे बढ़ गया। वह एक छोटी-सी पगडण्डी पर चलने लगा। मकवाणा उसके पीछे-पीछे हो लिया। धंधूकराज ने उन दोनों का अनुसरण किया।

'क्यों रे, यह दूसरा कौन है?' धंधूकराज ने चलते हुए पूछा।

'यह भी चौकीदार है। महाराज की अंग-रक्षा के लिए गुरुजी ने भेजा है।' मकवाणा ने जवाब दिया। उसके इस जवाब को सुनकर दामोदर को परम सन्तोष हुआ। वह डर रहा था कि कहीं मकवाणाजी का भेद खुल न जाये। परन्तु इन बातों के रसिक मकवाणा ने अपना पार्ट अच्छी तरह अदा किया। यद्यपि इस तरह के काम उसके स्वभाव के विरुद्ध थे, फिर भी उसकी वाणी का संयम इस समय प्रशंसनीय था। दामोदर झपाटे से चल रहा था ताकि रास्ता जल्दी समाप्त हो जाये।

'चलो, कहाँ चलना है?'

'नदी के किनारे-किनारे कालरात्रि के मन्दिर के समीप, पीछेवाले श्मशान में।' मकवाणाजी ने कहा।

'क्यों ? वहाँ क्यों ?' धंधूकराज ने पूछा ।

दामोदर को ऐसा लगा मानो धंधूक इतमीनान कर रहा हो । जानकारी के अभाव मे केसर असमंजस में पड़ गया । दामोदर को ऐसा लगा मानो मकवाणा संकटापन्न स्थिति के लिए तैयार हो रहा हो । इसलिए उसने आवाज़ बदलकर जवाब दिया—'महाराज ! गुरुजी वहीं अनुष्ठान के लिए बैठे हैं । वह आ नहीं सकते । उन्होंने जो समय बतलाया था वह भी हो ही चला है । महाराज को जरा तेजी दिखलानी पडेगी ।'

धंधूक ने चाल तेज करते हुए कहा—'तो चलो, सरपट चलें ।'

दामोदर कुछ न बोला, वह तेजी से चलने लगा । रास्ता उसका जाना-पहचाना लग रहा था । बिना रुके, बिना भटके वह बराबर आगे बढ़ता चला जा रहा था । छोटी-मोटी पहाड़ियों के बीच से होते हुए वे क्रमशः आगे बढ़ते जाते थे । रास्ते-भर कोई कुछ न बोला । थोड़ी देर इस तरह चलने के बाद मकवाणा ने भी मन-ही-मन शान्ति का अनुभव किया । कुछ आगे जाने पर दूर के एक छोटे नाले में एक जगह अलाव-जैसा कुछ दिखाई दिया ।

परन्तु मकवाणा अभी तक आश्वस्त नहीं हुआ था । हर क्षण यह डर लग रहा था कि दामोदर की चाल पकड़ गई तो धंधूकराज उस पर वार कर बैठेगा । इसलिए वह बड़ी सावधानी से चल रहा था । फिर उसे सबसे अधिक चिन्ता तो इस बात की हो रही थी कि यदि रुद्रराशि ने ह। इस रहस्य का उद्घाटन कर दिया तो क्या होगा ? धंधूकराज क्या कहे " दामोदर अपने गौरव की रक्षा कैसे कर पायेगा ?

जैसे-जैसे अलाव नजदीक आता गया, दामोदर अपनी चाल ध' करता गया ।

'क्यों ?' धंधूक ने पूछा—'धीमा क्यों हो गया ?'

'यह तो इस चौकीदार को, जो कि नया है, सचेत करने के लिए । अब अपनी तलवार को म्यान में ही रखना, सारंग ! जरा भी बाहर नहीं दिखना

चाहिये। गुरुजी ने मुझसे कहा है कि माँ कालरात्रि के समस्त अनुष्ठान के समय कोई खुला लोहा दिखना नहीं चाहिये।'

मकवाणा इशारा समझ गया। उसने तलवार को म्यान में रख लिया। वह चुपचाप पीछे-पीछे चलता रहा।

चलते-चलते वे उस नाले के अन्दर पहुँच गये। वहाँ चारों ओर आग प्रज्वलित हो रही थी। अग्नि का प्रतिबिम्ब पानी मे ऐसा लग रहा था मानो नाले का पानी ही जल उठा हो। धंधूकराज ने रुद्रराशि को एक स्थान पर व्याघ्रांबर पर बैठे देखा। उसके सामने की वेदी मे आग जल रही थी। वह मन्त्रोच्चार करता हुआ वेदी की अग्नि में हवन करता जाता था। धंधूकराज को आया देख उसने एक आसन उसकी ओर बढ़ा दिया—'विराजिये—जिन चौकीदारों को मैंने भेजा वे मिल तो गये थे न? रास्ते में कोई दिक्कत तो नहीं हुई?'

'वे रहे दोनों।' धंधूकराज ने दोनों को हाथ के इशारे से दिखलाया।

कुछ दूर, अन्धकार में दिख न सकें इस प्रकार, दामोदर और मकवाणाजी खड़े थे। अग्नि के मद्धिम प्रकाश में रुद्रराशि ने दामोदर का चेहरा पहचान लिया। उसे आश्चर्य हुआ—'अरे!' वह मन-ही-मन काँप गया। 'यह यहाँ कैसे आ गया?' यह सोचकर क्षण-भर के लिए स्तब्ध रह गया कि यदि बात प्रकट हो गई तो अनावश्यक और अनिच्छित संघर्ष हो जायेगा! फिर जरा प्रकृतिस्थ होकर उसने उन्हें उद्देश्य कर कहा—'तुम्हारे पास चमड़ा हुआ या शरीर स्वच्छ न हुए तो माताजी को छूत लग जायेगी। इसलिए और परे खिसक जाओ, वहाँ दूर, अँधेरे में जाकर खड़े रहो!'

दामोदर और मकवाणाजी वहाँ से कुछ दूर घने अन्धकार मे जाकर खड़े हो गये।

अब जो कुछ होता है उसे देखने के कुतूहल में मकवाणा उस ओर टक लगाकर देखने लगा।

रुद्रराशि मन्त्रोच्चार के साथ अग्नि में होम-द्रव्यों को होमे जा रहा था।

थोड़ी देर बाद रुद्रराशि धंधूकराज की ओर मुड़ा। इस समय उसकी मुख-मुद्रा असाधारण रूप से परिवर्तित हो गई थी, मानो वह अपने आपे में न हो, उस पर किसी दैवी शक्ति का अधिकार हो गया हो। उसका शरीर काँपने लगा था, आँखें फैलकर बड़ी-बड़ी हो गई थीं, दृष्टि भाले की नोक की तरह पैनी हो गई थी। उसका ऐसा विकराल रूप देखकर दामोदर डर गया। जिस रुद्रराशि को उसने देखा था, उससे भिन्न बड़ा भयंकर पुरुष यहाँ दिखाई दे रहा था। उसका शरीर तन गया था। रोमावली खड़ी हो गई थी। फैली हुई बड़ी-बड़ी आँखें मद्यप की तरह लाल-लाल हो रही थीं। उसने धंधूकराज के सामने देखकर पूछा—'महाराज! भविष्य जानना चाहते हो?'

धंधूकराज ने हाथ जोड़कर कहा—'इसी लिए तो आपने यह समय दिया है, गुरुदेव!'

'अच्छा, तो बतलाओ धंधूकराज, सबसे श्रेष्ठ ज्ञान किसमें है?' इतना पूछकर रुद्रराशि ने पुनः चारों ओर स्थापित मृतिका की वेदी में प्रज्वलित अग्नि में होम-द्रव्यों का हवन किया। धंधूकराज धरती पर आँखें गड़ाये बैठा था। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। रुद्रराशि ने पुनः पूछा—'महाराज! आप कुछ बोले नहीं? मेरे प्रश्न का आपने उत्तर नहीं दिया? बतलाइये, सबसे श्रेष्ठ ज्ञान किसमें है?'

'वेद मे!' धधूकराज ने धीरे से कहा।

'वेद में?' रुद्रराशि ठठाकर हँसा। उसकी खोखली हँसी ने रात की नीरव शान्ति को और भी भयानक कर दिया। 'वेद में? हा-हा-हा-हा, वेद मे? महाराज! वेद मे तो कोई ज्ञान नहीं। ज्ञान तो इसमें है। देखिये, इसमे।'

उसने व्याघ्राम्बर पर रखी हुई एक पुरानी और जीर्ण-शीर्ण खोपड़ी

अपने हाथ में उठा ली।

'देख रहे हैं इसे ? इसमें त्रिकाल का ज्ञान भरा हुआ है। इसने यहाँ दंताली के रणक्षेत्र में अनेकों को मरते देखा है और अभी अनेकों को मरते देखेगी। परन्तु यह खोपड़ी अमर है। अब यह मरने की नहीं। मनुष्य की खोपड़ी में जितना ज्ञान है, उतना और कहीं नहीं है, महाराज !'

रुद्रराशि आँखें मूँदकर चुप हो गया। थोड़ी देर वह इसी प्रकार नीरव निस्पन्द बैठा रहा। फिर उसने अपनी उन लाल-लाल आँखों को खोल दिया। दाहिने हाथ में उस खोपड़ी को लिये हुए वह देवी की साधना के मन्त्रों को ऊँची और भयंकर आवाज में बोलने लगा। उसके उच्च स्वर की प्रतिध्वनि आस-पास की पहाड़ियों मे सुनाई पड़ने लगी।

जैसे-जैसे वह मन्त्र बोलता गया उसके शरीर की चेष्टाएँ भी बदलती गईं। देखते-ही-देखते उसका स्वरूप महाविकराल और सर्वभक्षी काल-जैसा भयानक हो उठा। उसकी मुखाकृति भयंकर मुख-मुद्राधारी महा-कापालिक जैसी हो गई। चारों ओर प्रज्वलित अग्नि की लपटों के प्रकाश में उसके शरीर का रंग तपे हुए रक्तवर्ण ताँबे-जैसा सिन्दूरी हो गया। उसकी पिंगल जटा बिखरकर चेहरे पर फैल गई। दाँत किटकिटाने लगे। सारा बदन और हाथ-पाँव आवेग से काँपने लगे।

उसके मन्त्रोच्चार की गर्जना सिंह की गर्जना की तरह उच्च से उच्चतर होती गई। नदी में से, पानी मे से, पहाड़ में से, पृथ्वी मे से उसके मन्त्रो-च्चारण की प्रतिध्वनि उठ रही हो इस प्रकार रात्रि की गहन नीरवता में उसके शब्द गूँजने लगे—'खोपड़ी—खोपड़ी जीवित है—धंधूकराज ! मनुष्य जीता नहीं। मेरी माता महाकालरात्रि, महाभयंकरस्वरूपकारिणी, चतुर्भुजा, व्याघ्राम्बरधारिणी, गर्दभवाहिनी—सृष्टि के आदि मे थी, सृष्टि के अन्त में भी वही रहेगी। महाकालरात्रि ! नमस्तस्यै ! नमस्तस्यै ! नमस्तस्यै नमोनमः।' एक भयंकर हुंकार के साथ रुद्रराशि ने आगे कहा —'मनुष्य नहीं जीता ! खोपड़ी—मनुष्य की खोपड़ी—जीवित रहती है।

उसे शोणित चाहिये। महाकालरात्रिरूपधारिणी मा भवानी के गले में जो खोपड़ी पड़ी हुई है उसे रक्त की बहती धारा प्रिय है। यह खोपड़ी त्रिकालज्ञ है, देखो!'

और उसने खोपड़ीवाला अपना हाथ आगे बढ़ाकर धंधूकराज के ठीक सामने कर दिया—खोपड़ी खून से छलछला रही थी और खून की धाराएँ उसमें से छल-छल करती बह रही थीं। यह दृश्य देखकर दामोदर की आँखों में तो अँधेरा घिरने लगा, परन्तु इस रहस्य के जानकार मकवाणा ने उसका हाथ थामकर धीरे से कान मे कहा—'महाराज! देखियेगा, सँभल कर रहियेगा ...'

'शोणित के इस सागर में अनेकों बुदबुदे आते हैं, चले जाते है, फूटते हैं और विलय होते हैं—देखो, धंधूकराज, यह पहले कौन आया है?' रुद्रराशि कह रहा था।

धंधूक ने उस ओर देखा। उसकी दृष्टि वहीं स्थिर होकर रह गई। दामोदर एक कदम आगे बढ़ आया। मकवाणा निर्निमेष दृष्टि से खोपड़ी में से बहते हुए रक्त प्रवाह को देखने लगा। उष्ण'लहू खौल रहा हो इस प्रकार उसमे बुदबुदे उठते और फूट जाते थे। रक्त की अन्तहीन धारा मानो उस खोपड़ी में से बहती चली जायेगी। लेकिन आश्चर्य तो यह कि लहू बह रहा था, फिर भी उसकी एक बूँद तक नीचे कहीं गिरने नहीं पाती थी।

'देखो, देखो, महाराज! यह कौन आया है?' एक सुन्दर, तरुण तेजस्वी चेहरा लहू के बुदबुदे में स्पष्ट आकार ग्रहण करता दिखाई दिया। धंधूक उसे पहचान न पाया।

'पहचाना नहीं, महाराज! कौन है? जानते हैं?'

'नहीं तो, कौन है?' धंधूक ने उत्सुकता से पूछा।

'बुदबुदे तो अनेक हैं। दीखेंगे वही, जिन्हे स्मरण किया है। देखो, यह है सबसे पहले मृत्यु का आलिंगन करनेवाला। जवानी में मरनेवाले

की खोपड़ी में अजीब करिश्मा होता है—बुढ़ापे में तो कुत्ते और कौए भी मरते हैं। देख रहे हैं, इसकी मुखमुद्रा ? है न ऐसी कि अप्सराएँ भी मोहित हो जायें ?'

'कौन है यह ?'

'अप्सराओं और अमर कीर्ति को वरनेवाला यह है रणबाँकुरा, युद्ध-प्रिय, समरक्षेत्र का राजा, कच्छ का केसर मकवाणा !'

'अ . .रे !' दामोदर अचानक बोल उठा।

कौन बोला है यह देखने के लिए धंधूकराज गर्दन घुमा ही रहा था कि खोपड़ी के अजस्र रक्त-प्रवाह मे दूसरा बुदबुदा दिखाई दिया।

'गुरुदेव ! यह कौन है ?'

'जयसिंह—तैलपराज का प्रपौत्र; यह भी गया। देखो।' धंधूक, दामोदर और केसर मकवाणा तीनों ही देख रहे थे।

थोड़ी देर बाद भोजराज की मुखमुद्रा दिखाई दी।

'प्रभु ! यह कौन है ?' जरा-सा पहचानते ही धंधूकराज ने कहा—'अरे ! यह भी... ?'

'इसकी हस्ती ही क्या है ?' रुद्रराशि ने तिरस्कारपूर्वक कहा—'मा भवानी की मुंडमाला मे तो ये सभी बुदबुदे हैं, धंधूकराज ! यह भी गया, देखो।'

'और पाटन का भीम !' धंधूकराज ने पूछा।

'उसे अभी देर है। जायेगा तो वह भी। लेकिन इस खोपड़ी में जितने समय का अनुष्ठान किया है उसमे वह नहीं है; और अनुष्ठान का समय भी अब समाप्त हो रहा है।'

'तो भोजराज पहले जायेंगे ?'

'खोपड़ी तो यही बतलाती है।'

'और मालवा की विजय ?'

'अन्त में मालवा—की—पराजय। मालवा की मैत्री भीमदेव के ताप

से महाराज को बचा नहीं सकती। भोज न रहेगा, तब भी भीमदेव रहेगा।'

तभी रुद्रराशि के हाथ से खोपड़ी इस तरह नीचे गिर गई मानो किसी ने उसे गिरा दिया हो। रक्त का प्रवाह या रक्त का चिन्ह तक उस पर रह नहीं गया था। व्याघ्राम्बर पर बैठा हुआ रुद्रराशि भी पलक मारते अति सामान्य और स्वाभाविक व्यक्ति हो गया था।

सम्मोहन से जाग रहा हो इस प्रकार धंधूकराज सजग हुआ। उसने दोनों हाथ जोड़ कर रुद्रराशि को प्रणाम किया। रुद्रराशि ने मौन बने रह'कर आशीर्वाद देने के लिए हाथ उठा दिया। धंधूकराज खड़ा हो गया और चलने के लिए पाँव बढ़ाते हुए बोला—'अरे! कहाँ चले गये वे चौकीदार ?'

रुद्रराशि ने सुना। अब उसे याद आया कि दामोदर वहाँ खड़ा था। आँखें उठाकर उस दिशा में देखा। वह वहाँ नहीं था। रुद्रराशि निश्चिन्त हुआ। उसने धंधूकराज से कहा—'मालूम होता है, महाराज, कि वे डर-कर भाग गये। चलिये, महाराज, थोड़ी दूर तक मैं ही आपको पहुँचा दूँ!'

रुद्रराशि और धंधूकराज बिना कुछ बोले, बात किये अँधेरे में चल पड़े।

१९. मकवाणा ने क्या कहा ?

जैसे ही सवेरा हुआ कार्तिक स्वामी और जयदेव ने मुक्ति की साँस ली। सारी रात उन्होंने महावत कल्ल की हलचल देखने में बिताई थी। परन्तु कौन-सा कल्ल कहाँ रहा, यह बात रात्रि के अन्धकार की ही भाँति अनजानी रही।

सवेरे जब वटेश्वर के मन्दिर में शंखध्वनि होने लगी और सोलंकियों की छावनी में घोड़ों और हाथियों के दल इधर-उधर घूमकर प्रभात होने की सूचना देने लगे तभी उन्हे विश्वास हुआ कि धंधूकराज को लेकर जो भय था वह अब समाप्त हुआ।

वे बरगद पर से धीरे-धीरे उतरने लगे। अभी तक कल्ल जागा नहीं था। उसे ठीक से भर-नजर देखने की जिज्ञासा को शान्त करने के लिए थोड़ी देर तक बरगद की डाली पर ही रुककर नजर नीचे की। अन्त में वे दोनों नीचे उतरे और कल्ल को सोता छोड़कर चल दिये।

कार्तिक स्वामी तो सीधा दामोदर के पास गया और जयदेव को मकवाणाजी के पास जाना था।

दामोदर की अब धंधूकराज के बारे में क्या धारणा है, इसे जान लेने के पश्चात् ही कल्ल के सम्बन्ध में बतलाने का निश्चय करके कार्तिक अन्दर घुसा।

दामोदर स्नान-सन्ध्यादि से निवृत्त होकर भगवान सूर्यनारायण के दर्शन करने के लिए बाहर निकला। उसने अत्यन्त भक्ति-भाव से भगवान् को प्रणाम किया; क्षण-भर के लिए आँखें मूँद कर मन-ही-मन उनकी

स्तुति की। कार्तिक खड़ा प्रतीक्षा करता रहा। इस बीच जैसे ही उस पर दामोदर की निगाह पड़ी तो उसने कहा—'कार्तिक! अभी तक तूने मुझसे वह बात कही नहीं और मैं भी पूछना भूल गया। दूसरे इतने अधिक काम आ पड़े कि तुझसे पूछना रह ही गया।'

'कौन-सी बात, प्रभु?' कार्तिक ने प्रणाम करके पूछा।

'तू मकवाणाजी के यहाँ गया था तो वहाँ तूने क्या किया? ताम्र-पत्र दिया तब मकवाणाजी क्या बोले?'

कल रात जब से दामोदर ने रुद्रराशि के मुँह से मकवाणा की आयु के बारे मे सुना तभी से वह इस बात को जानने के लिए आतुर हो रहा था। कार्तिक कच्छ-प्रदेश से लौटकर आया तभी से इतनी महत्वपूर्ण घटनाएँ घट रही थीं कि यह बात भूल ही जाती थी। कल रात उसने मकवाणा के बारे में सुना और आज उसे वह बात याद हो आई।

'प्रभु! मकवाणाजी तो इस बात से बिलकुल अनभिज्ञ हैं। मैं वहाँ गया और मैंने देखा कि रणत्रॉकुरे मकवाणाजी की अपेक्षा उनकी रानी जयवती ऐसे मामलों को अधिक समझ सकती हैं, इसलिए मैंने वह उन्हीं को दे दिया।'

'रानी उदयमती की बहिन को दिया है? ठीक, तब तो अच्छा ही हुआ जो मैंने तुझसे पूछ लिया। मकवाणाजी को अभी यहाँ आने पर यह बात बतलाऊँगा। वह बड़े उतावले हो रहे हैं।'

'किस लिए, प्रभु?'

दामोदर उत्तर देता उसके पहले ही मकवाणा की आवाज सुनाई दी —'आयुष! मंत्रीश्वर हैं क्या?'

'पधारिये, पधारिये, मकवाणाजी! मैं आपकी ही प्रतीक्षा में खड़ा हूँ!'

केसर मकवाणा अन्दर आया। दामोदर ने उसकी ओर देखा और देखता ही रह गया। उसका विचार था कि कल अपना भविष्य जान

लेने के पश्चात् मकवाणाजी मे कुछ परिवर्तन दिखाई पडेगा। परन्तु मानो जीवन ही मृत्यु का सागर हो ऐसी ऊर्जस्व उपेक्षा वृत्ति के परिणाम-स्वरूप मकवाणा का चेहरा सदैव जिस वीरश्री से आलोकित रहता था वही आलोक दामोदर को इस समय भी उसके चेहरे पर दिखाई दिया।

'हो गया न महाराज, अर्बुदपति के साथ का यहाँ तो आपका युद्ध समाप्त हो ही गया न?'

'आपको कैसे पता चला, मकवाणाजी!'

'सुना जाता है कि धंधूकराज की ओर से क्षमा-प्रार्थना करने के लिए दंडनायक विमल महाराज के पास आ रहे हैं।'

'आनेवाले हैं—यह सच है, वह तो आयेंगे ही। परन्तु महाराज तो कह रहे हैं कि मकवाणाजी को देसूरी का दर्रा दिखलाना है।'

'नड्डूल के सामनेवाला आडावला का दर्रा ही न? मैंने देख रखा है। परन्तु नड्डूलवाले जब सुनेंगे कि अर्बुदपति झुक गये तो उनकी हिम्मत भी पस्त हो जायेगी। अब आपका यहाँ आबू का काम तो पूरा हो ही गया, इसलिए मुझे जाने दीजिये। मुझे घर जाकर यज्ञ प्रारम्भ करना है।'

'कैसा यज्ञ, मकवाणाजी!'

'अजी साहब, सुमरा की सात सौ साँढ़नियाँ जो लानी हैं। यह भी एक तरह का यज्ञ ही कहा जायेगा न? मैं इधर आया और पीछे-पीछे सन्देशा लगा चला आया।

'क्या?'

'मैं उधर संघ की तरफ गया था। प्रतीक्षा तो इस बात की कर रहा था कि सुमरा की साँढ़नियाँ खारापाट की ओर चरने आयें तो उन पर हाथ साफ करूँ। परन्तु उस तरफ कोई आया ही नहीं! अब उसने यह सोच-कर कि मकवाणा तो है नही, साँढ़नियों का बड़ा टुल्लर उस ओर चरने के लिए भेज दिया है। ऐसे में मेरी झपट मे सात सौ, आठ सौ या हजार

जितनी भी आ जायें उन्हें बटोर लाऊँ, और जो यज्ञ शुरू किया है उसे पूरा कर डालूँ!'

'परन्तु महाराज से भी पूछा है ? क्या वे आपको जाने देंगे ?'

'अभी महाराज को प्रणाम करके ही आ रहा हूँ!'

'महाराज ने क्या कहा ?'

'उन्होंने कहा है कि धंधूकराज और हम सभी आडावला मे शिकार के लिए जानेवाले हैं। यह काम पूरा करके तब जाना।'

'ठीक है—मकवाणाजी! तब तो ऐसा ही कीजिये। आपके जयदेव को भी अब भेजे दे रहा हूँ।'

'कहाँ ?'

'और तो कहाँ ? वहीं आडावला मे, प्रताप देवी के पीछे।'

'ठीक है। अब मैं जरा सूर्य-मन्दिर भी हो आऊँ।'

इतने में बाहर कुछ शोर हुआ। क्या हो रहा है यह देखने के लिए मकवाणा बाहर जा ही रहा था कि इतने में आयुष कई सँपेरों को साथ लेकर आया। कार्तिक स्वामी और मकवाणाजी दोनों ही देखने लगे।

'महाराज, जिनके बारे मे आपने कहा था वे सँपेरे ये आये हैं। इनमे से प्रत्येक सौ-सौ मटके देगा।'

'ठीक है। उनके काम की देख-रेख करना, और जैसे-जैसे मटके आते जायें उनकी व्यवस्था करते जाना। देखना, कोई मटका फूटने न पाये।'

'और देख आयुष! पहले प्रत्येक को सोने का एक-एक द्रम्म (एक प्राचीन सिक्का) तो दे दे। मटके तो मज़बूत हैं न ?'

'जी हाँ, महाराज!'

आयुष और सँपेरे चले गये।

'यह मटके देने की क्या बात है, महाराज ?' केसर और कार्तिक दोनों एक साथ बोले।

दामोदर ने मधुर मुस्कान के साथ कहा—'मकवाणाजी, आप तो योद्धा

हैं। महाराज इतनी शीघ्रता से यहाँ का युद्ध समेटे ले रहे हैं वह इसी लिए कि सिन्ध प्रतिक्षण उन्हे बुला रहा है। साथ ही महाराज हमेशा के लिए गुजरात को इस ओर से भय-मुक्त कर देना चाहते हैं। परन्तु सुमरा हम्मुक बलवान है। उसकी सेना भी शक्तिशाली है। और इसके उपरान्त वह मरुदुर्ग वनदुर्ग और जलदुर्ग जैसे तीन अभेद्य दुर्गों के बीच बैठा हुआ है। आप जाते ही अपने यहाँ से लकड़ी काटनेवालों को सिन्ध की ओर रवाना करें। हम उसी के वनदुर्ग से उसके जलदुर्ग का भेदन करेंगे। अब आप-को मालूम हुआ कि ये मटके काहे के हैं?'

'नहीं महाराज! अभी कुछ समझ मे नहीं आया!'

'इन पहाड़ों मे और तो क्या मिलेगा? यहाँ तो सिर्फ महान् विषधर साँप ही होते हैं। ये सँपेरे बहुत ही होशियार हैं। इन्होंने अनगिनत मटके तैयार किये हैं। प्रत्येक मटके मे विषधर बैठे हैं। उन सभी को सिन्ध की यात्रा कराऊँगा।'

'अरे! ..' केसर और कार्तिक दोनों को इतना आश्चर्य हुआ कि क्षण-भर कुछ बोल ही न सके। यहाँ बैठा हुआ भी, एक भी पल खोये बिना मंत्री सिन्ध की तैयारी तो कर ही रहा था। मकवाणाजी ने हाथ जोड़-कर कहा—'प्रभु! आप तो पाटन के महान् स्वप्न को चरितार्थ करने के लिए आकाश-पाताल एक किये दे रहे है। और ऐसे मंत्रीश्वर की बदौलत महाराज आधे युद्ध तो बिना लड़े ही जीत लेते हैं। परन्तु महाराज! एक बात मन में खटका करती है!'

'क्या बात है, मकवाणाजी?'

'महाराज भीमदेव के पराक्रम की प्रेरणादात्री चौला देवी हैं, दंड-नायक के अधिकाश स्वप्नों को मूर्त रूप देनेवाली, छाया की भाँति उनके साथ रहनेवाली श्री देवी हैं। परन्तु प्रभु! आपकी ये दूरदर्शी योजनाएँ —एक भी शस्त्र की खनखनाहट के बिना हजारों के दल को रोक देने की सामर्थ्य जिस शक्ति पर आधारित है, उस शक्ति के दर्शन क्या हमारे-

जैसो के भाग्य में नहीं है ?'

'मकवाणाजी ! कई बार क्या अनकही बातों में अधिक आनन्द नहीं प्राप्त होता ?'

'होता है—परन्तु आपने आज तक किसी के भी सामने यह बात कही नहीं। इसी से कौतूहल होता है कि इतनी शक्ति और प्रेरणा जिससे मिलती हो, वह नारी कितनी अद्‍भुत होनी चाहिये ! और तो कुछ नहीं, महाराज, हमारे रनिवासों को ऐसी देवियों के बारे मे जानकारी रहे तो संकट पड़ने पर हमारी आबरू भी बच सके।'

'मकवाणाजी ! पुरुष के लिए एक शक्ति सबसे अद्‍भुत है !'

'कौन-सी महाराज ?'

'अकेले रहने की शक्ति, मकवाणाजी ! आप तो महाराज से मिल आये और मुझे अभी जाना है, अच्छा चलूँ।' दामोदर ने शीघ्रता से बात पलट दी। परन्तु उसके स्वर की खनक को कार्तिक ने अच्छी तरह परख लिया था। उसने पहले भी एकाध बार दामोदर को अनेक बातों में लीन होकर कुछ भूल जाने का प्रयत्न करते हुए देखा था। कार्तिक को एक नयी बात का पता लगाने की उत्सुकता हुई। उसे आज पहली बार समझ में आया कि मंत्रीश्वर की कार्य-तल्लीनता जितनी उसके उत्साह की क्रिया है, उतनी ही उसके हृदय के किसी उजाड़ शून्य कोने को ढकने के प्रयत्न की प्रतिक्रिया भी है। यह नया तथ्य मिलते ही दामोदर को परखने की उसकी दृष्टि को एक नया आलोक मिल गया। अब तक वह एक शक्तिशाली मंत्रीश्वर का सेवक था; अब वह एक ऐसे संसार-त्यागी वैरागी का भक्त बन गया, जो सिर्फ लोगों की भलाई के लिए ही काम कर रहा था। उसे मंत्रीश्वर त्यागियों में सर्वश्रेष्ठ महात्यागी जान पड़ा।

मकवाणाजी सूर्य-मन्दिर की ओर जाने के लिए निकला। थोड़ी दूर तक दामोदर उसके साथ गया। मकवाणाजी विदा ले रहा था, तब दामोदर ने कहा—'मकवाणाजी ! आप कल की बात को मन में न लाइयेगा।'

'कौन-सी बात, महाराज ?'

'वही, जो रुद्रराशि ने कहा। उसका कारण यह है....' दामोदर आगे कहता-कहता रुक गया। रुद्रराशि का भविष्य-कथन स्वयं उसकी प्रेरणा पर किस हद तक आधारभूत है इस बात को वह दबा गया।

'महाराज !' मकवाणा सोल्लास बोला—'रुद्रराशि ने कल मेरा भाग्य बताया और उसे सुनकर मेरे उत्साह की तो सीमा न रह गई।'

'उत्साह की सीमा नहीं रह गई, महाराज ! युद्ध-क्षेत्र मे मरना राजपूत को अच्छा लगता है, यह तो समझ में आता है; परन्तु क्या मौत भी अच्छी लग सकती है ?'

'हाँ, महाराज ! मुझे तो लगता है कि जिन्दगी की संपूर्ण मिठास, बल्कि जीवन का संपूर्ण अमृत मृत्यु की अन्तिम घड़ी मे ही लबालब भरा होता है। मृत्यु के बिना इतने अनोखे आनन्द का परिचय और कहाँ मिल सकता है ? और अन्तिम अवस्था में जब कि त्वचा जीर्ण हो गई हो, शरीर दुर्बल हो गया हो, अंग शिथिल पड़ गये हों—तब मनुष्य उस आनन्द को कैसे भोग सकता है ? मृत्यु की घड़ी का आनन्द तो महाराज, कच्छ में पहले से ही कई नरपुंगव उठाते और उसे निखारते आये हैं। अन्त घड़ी को पहले से जानकर लाखा फूलाणी ने महाराज मूलराजदेव के साथ रक्त-स्नान करने का आनन्द उठा लिया और अब मैंने जान लिया है तो मैं भी सुमरा के साथ मजा ले सकूँगा।'

'मकवाणाजी ! आपको पता तो है न ?' दामोदर ने कहा—'आपकी वह प्रताप देवी, जैसा कि मैंने उस दिन आपसे कहा था, जिस लिए भागी वह कारण भी निराला ही है। मालवा के गेहूँ की पोठें उसे सिन्ध पहुँचानी थीं। तभी न सुमरा के यहाँ अनाज इकट्ठा होगा।'

'फिर क्या हुआ ?'

'फिर हुआ यह कि हमने उसे रोका—और सुमरा बिना गेहूँ के रह गया !'

'अरे-रे ! ऐसा क्यों किया ?'

'अरे-रे क्यों करते हो ? अगर ऐसा न करते तो वह लड़ने दौड़ता !'

'परन्तु वह बेचारा अन्न खाये बिना लडेगा कैसे ? इसी लिए मुझसे कहता था कि भाई, तेरा खारापाट बाधक न हो, तो तुझे तो उखाड़ ही फेंकूँ।'

'बात तो सच है—खारापाट न हो तो सुमरा वाकई गजब कर डाले।'

'क्या कर डालेगा ?'

'अनाज मिल जाये तो सेना को खारापाट में ही रखकर युद्ध करे।'

'इसी लिए तो मैंने उससे कहलवाया कि भैया मेरे. . '

'क्या कहलवाया ?' दामोदर ने उतावलेपन से पूछा।'

'कि तू भैया मेरे, गेहूँ की फिक्र मत कर। मैं तेरी ओर से हजार बीघों में गेहूँ बो दूँगा। तू आकर उस गेहूँ को खाना। गेहूँ तेरे—और लड़ाई मेरी। अब तो यह पता चल गया है कि काया जल्दी ही नष्ट होनेवाली है, इसलिए उसे फिर से सन्देशा भिजवाऊँगा कि हम तुझे गेहूँ भी देंगे और लड़ाई भी देंगे।'

अरे ! मकवाणाजी ! रणकेसरी ! आपने तो गजब ही कर डाला .. '

'बापू, थोड़े ही दिन रहना हो तो उन थोड़े से दिनों में ही अनेकों रंग भरना पड़ते हैं। अच्छा तो चलूँ, जय सोमनाथ !'

दामोदर मकवाणा की वीरतापूर्ण वाणी को सुन क्षण-भर स्तब्ध हो उसे जाता हुआ देखता रहा। उसे मन-ही-मन खयाल आया कि जिस दृश्य को वह इस समय देख रहा है, उसे देखने के लिए तो देवता भी स्वर्ग से पृथ्वी पर उतर आयेंगे। ऐसा रणोत्साही, मृत्यु का भी मित्र, रसिक और टेकिला, युद्ध-प्रिय और विश्वासपात्र व्यक्ति सम्भवतः इस युग और इस धरती का अन्तिम और अनमोल रत्न है।

इन्हीं विचारों में मग्न दामोदर लौट चला !

२०. कल्लु किस तरह पहचाना गया ?

स्वप्नों का बहुत अधिक सुख लेने की मंत्रीश्वर को आदत न थी, और शायद इसी लिए विधाता भी उसे अधिक देर तक स्वप्न में रहने नहीं देते थे। दामोदर के प्रवेश करते ही कार्तिक ने हाथ जोड़कर कहा—'महाराज ! मेरे पास बड़े ही महत्वपूर्ण समाचार हैं। आपने कल जहाँ मुझे भेजा था सारी रात मैं वहीं था।'

'फिर ?'

कार्तिक थोड़ा पशोपेश में पड़ गया।

'कार्तिक ! तू मान या न मान, परन्तु तेरे पास कहने के लिए कुछ है जरूर। भला ऐसी क्या बात है, जिसे तू कहते हुए काँप रहा है ?' दामोदर ने पूछा।

'महाराज ! मैं यही कहने आया हूँ कि धंधूकराज के दो महावत हैं। एक नहीं—दो कल्लु हैं, और दोनों एक जैसे हैं।'

कार्तिक ने समझ रखा था कि यह खबर सुनते ही मंत्रीश्वर की योजना-शक्ति एकदम प्रोत्साहित होकर ज्वार की तरंगों की भाँति उछलने लगेगी। परन्तु यह सुनकर दामोदर का तो रोआँ तक न हिला। अब कार्तिक को पता चला कि वह सिर्फ दामोदर की शक्ति के ही बारे में जानता है, उसकी गहनता के बारे में तो कुछ भी नहीं जानता। वह यहाँ मटकों में भरकर विषधरों की सेना बना रहा है और अनेकों खच्चरों, गधों और ऊँटों पर वह सेना रवाना भी हो रही है—वह बात जितनी गहन थी, उतनी ही यह बात भी गहन लगी। या तो मंत्रीश्वर इस बात को जानता है—

या फिर न जानते हुए भी बात के महत्व को टाल जाने का उसका ढंग है। कार्तिक दामोदर की इस शक्ति से पूर्णतः परिचित था। जो बात महत्व की होती उसे कोई महत्व दिये बिना ही वह उसका रहस्य जान लेता था—और जो बात महत्व की न होती उसे इतना अधिक महत्व दे देता था कि सामनेवाले के मन में वही बात मुख्य बन जाती और मुख्य वस्तु पर से उसका लक्ष्य ही हट जाता था।

'अच्छा, दो कत्ल हैं ? लेकिन दूसरा कत्ल तो बावली के अन्दर होगा।'

कार्तिक समझ गया कि मंत्रीश्वर पूरी बात जानता है। अब उसने पूरी बात बता देने में ही अपनी भलाई देखी।

'महाराज ! आप तो पूरी बात जानते है,—तो फिर मेरी चिन्ता को अब आप ही दूर कीजिये।'

'तुझे किस बात की चिन्ता है ?' दामोदर ने पूछा, पर वह मन-ही-मन हँस रहा था।

'कौन-सा कत्ल कहाँ है ?'

'देख कार्तिक ! कोई भी कत्ल कहीं भी क्यों न हो, तू लाहिनी बावली के तहखाने में छिपे हुए कत्ल को तो अभी तत्काल अपने कब्जे में कर ले—अब जो कत्ल बचा रह जायेगा—वह तो धंधूकराज के साथ यहाँ आयेगा ही। उस वक्त उसे देख लेंगे। लाहिनी बावली के तहखाने में प्रवेश करने के लिए, देवी की जो विनम्र प्रतिमा खड़ी है, उसके पीछे-वाली बावली की दीवार में ढूँढ़ने से अन्दर जाने का दरवाजा मिल जायेगा।'

कार्तिक के जवाब देने से पहले ही आयुष फिर अन्दर आकर बोला —'महाराज !'

'क्यों ? कौन आ रहा है ?'

'धंधूकराज, विमलराज और सभी इसी तरफ आ रहे हैं !'

'क्या यहाँ आ रहे हैं ?'

'महाराज ! लगता तो ऐसा ही है ।'

'अच्छा, तो तू चंडशर्मा, बालुकराय, मकवाणाजी, महासंधि-विग्रहक भोगादित्य आदि सभी को खबर कर दे । महाराज मंत्रणा के लिए इन सबों को किसी भी क्षण बुला सकते हैं । और देख ...' दामोदर ने क्षण-भर सोचकर कहा—'कल तू छाया-शास्त्री के बारे में कह रहा था न ?'

'जी हाँ, महाराज ! वे सूर्योदय के समय प्रत्येक मनुष्य की छाया देखकर उसके कुल का इतिहास बतला सकते हैं ।'

'ओ हो ...यह तो बड़ी ही अद्भुत बात है—क्यों कार्तिक ? जरा इस छाया-शास्त्री को भी बुला लें ? तेरी क्या राय है ?' दामोदर ने विनोदपूर्वक कहा ।

'महाराज ! इसमें मेरी क्या राय हो सकती है ?' कार्तिक को दामोदर की बात निरा विनोद ही लगी ।

'अच्छा, तो आयुष, जरा उस छाया-शास्त्री को भी भेज देना । विमलराज आदि सब आयेंगे तो दो घड़ी आनन्द ही रहेगा ।'

आयुष को गये थोड़ी ही देर हुई थी कि महान् गजराजों की घंटियों की आवाज, दामोदर की पट्टकुटी के पास निनादित हो उठी । दामोदर तत्काल बाहर आया । 'आयुष ! मंत्रीश्वर हैं क्या ?' प्रसन्नतापूर्वक बोलता हुआ विमल अपने हाथी पर से उतरकर आ रहा था । दामोदर और कार्तिक शीघ्रता से बाहर निकलकर उसकी अगवानी को आगे बढ़ा ।

'अरे ! प्रभु ! आप हैं !' दामोदर अत्यन्त विनयपूर्वक बोलता हुआ आगे बढ़ा ।

विमल के ठीक पीछे धंधूकराज आ रहा था । 'महाराज अर्बुदपति भी पधारे हैं क्या ?' दामोदर ने दोनों हाथ जोड़े—'महाराज ! मुझे तो डर था कि अपनी दरिद्र पट्टकुटी मे आपका स्वागत करने का श्रेय पा भी

सकूँगा या नहीं ? परन्तु भगवान सोमनाथ ने कृपा की। पधारिये महाराज, इस तरफ।' दामोदर ने धंधूकराज को हाथों के संकेत से आगे आने की प्रार्थना की। कार्तिक को ढूँढ़ने के लिए दामोदर जरा पीछे रह गया। 'महाराज मैं भी आया....!' उसने कार्तिक को पास ही खडे देखा।

'अरे कार्तिक! देख, तू यहीं रहना।' दामोदर ने पीछे की ओर देखकर धीरे से कार्तिक से कहा। ठीक उसी वक्त सूर्य की किरणों से प्रतिबिम्बित कोई प्रकाश-किरण उसकी आँखें झपकाती हुई निकल गई। दामोदर ने शीघ्रता से किरण की दिशा का अनुसरण किया। थोड़ी दूर, आम के पास खड़े हुए एक हाथी पर उसकी दृष्टि स्थिर हो गई। सूर्य की बाल-किरणें अभी तक एक मनोहर रत्न पर नाच रही थीं और प्रकाश की किरणे उसी में से फूट रही थीं। उसने पूछा—'वह हाथी धंधूकराज का ही है न ?'

'हाँ, महाराज !' कार्तिक ने जवाब दिया।

'अच्छा तो मूर्ख, देख ! इसके ऊपर महावत की जगह बैठा है वही कृष्णराज है !' दामोदर ने बहुत धीरे से कहा। उतना ही धीमा आश्चर्य और जिज्ञासा व्यक्त करता उत्तर मिला—'महाराज !'

'कार्तिक ! बड़े-बड़ों से भी भूल हो जाती है। साज-सज्जा चेहरा-मुहरा अस्त्र-शस्त्र सभी कुछ एक-सा बना लेनेवाले से भी एक छोटी-सी भूल हो ही गई है। अँगुली मे की अमूल्य राज-मुद्रिका के रत्न में से ये प्रकाश-किरणें फूट रही हैं। लेकिन अब उस ओर न देखना। उसे भी यह बात याद हो आई है और उसने अँगुली मे से अंगूठी निकाल ली है। परन्तु महाराज धंधूकराज के यहाँ से लौटकर जाने के पूर्व ही वह दूसरा कल्ल हमारे हाथ में आ जाना चाहिए। अभी यहाँ काफी समय लगेगा। छाया-शास्त्री के करतब, मंत्रणा आदि होंगे। अब तू जा—जयदेव को साथ लेकर दूसरे कल्ल को अधिकार में कर ले। देख, बहुत शोर-गुल न करना, युक्ति से काम लेना।'

'हाँ महाराज !' कार्तिक प्रणाम करके जयदेव से मिलने के लिए मकवाणाजी की पट्टकुटी की ओर चला गया।

विमल और धंधूकराज पट्टकुटी में प्रवेश कर ही रहे थे कि दामोदर आ पहुँचा—'महाराज, मुझे खबर भी नहीं भिजवाई ? मैं आपके योग्य सम्मान-सामग्री तो जमा कर रखता।'

'अरे ! दामोदर ! धंधूकराज की हम पर इतनी प्रीति है कि मुझे भी खबर नहीं दी और आ पहुँचे। आकर कहने लगे—चलो, मन्त्रीश्वर से मिलकर महाराज के पास चलेंगे।'

'महाराज ! मुझे आज असीम आनन्द हुआ ! आपका सत्कार करने के लिए मुझे इससे अच्छा दूसरा कौन-सा समय मिलता ? सिर पर युद्ध के बादल मँडरा रहे हों उस समय इस तरह का मित्र-लाभ सौभाग्य से ही होता है।'

'मन्त्रीश्वर, मुझे महाराज से मिलना है। और अपने मन की बात कहकर जी का भार हलका करना है।' धंधूकराज बोले।

'प्रभु, आज तो महाराज का मन्त्रणा-दिन ही है। आपकी ओर से मैं ही निवेदन कर दूँ। क्यों दंडनायक ?'

'दामोदर, यही ठीक है। मन्त्रणा दिन है तब तो पूरा मंत्रि-मंडल ही उपस्थित होगा।' विमल बोला।

'महाराज के सौभाग्य से अच्छा योग उपस्थित हुआ है।'

'अर्बुदपति की बात तो तुम जानते ही हो ? यदि न मालूम हो तो अब जान लो, जिसमें महाराज के समक्ष निवेदन करते समय कोई कठिनाई उपस्थित न हो। क्यों महाराज ?'

'हाँ . .' धंधूकराज बोला—'बात यही है कि हम परम्परा से आबूगढ़ सँभालते-सहेजते आये हैं और सहेजते रहेंगे।'

'यह तो है ही महाराज !' दामोदर ने कहा—'देखिये न, धरणीवराह महाराज की दूरदर्शिता ? उन्होंने अर्बुदगढ़ भी सहेजा और पाटन-

पति से सम्बन्ध भी बनाये रखे। हमारा और आपका सम्बन्ध क्या आज-कल का है ? आप तो पहले भी पाटन के ही थे और अब भी पाटन के ही रहेंगे। यही बात है न, प्रभु ?'

धरणीवराह के नाम का उल्लेख कर दामोदर ने आबू की सम्पूर्ण अधीनता का संकेत कर दिया था। महाराज धंधूकराज को यह जरा भी अच्छा न लगा।

'मंत्रीश्वर ! बात तो यही-की-यही है। फिर चाहे दो शब्द इधर करो, या दो शब्द उधर करो।'

'शब्दों से तो महाराज, हम निपट लेंगे।'

'मैं महाराज से मिलूँ ...बात करूँ.. .'

'हाँ, हाँ, अवश्य। वैसे आज्ञा हो तो आपका सन्देशा मैं स्वयं ही ले जाऊँ ! कोई हर्ज तो नहीं ?'

'हाँ, हाँ, दामोदर, ऐसा ही करो। तुम महाराज को सलाह देना और मैं भी बात करूँगा। धंधूकराज तो हमारे मित्र हैं और हमारे लिए इतना बहुत है कि मित्र बने रहें।' विमल ने कहा।

धंधूक बोला—'हाँ, मुझे भी यही कहना है। मुझे सब से ज्यादा डर तो अपने पूर्णपाल का है। आडावला भले ही डिग जाये, पर वह नहीं डिगने का। पूछो दंडनायक से।'

'हाँ, महाराज ! मैंने भी यह सुना है। केसर मकवाणा को और पाटन से कुछ और सैनिकों को यहाँ बुलाया तब मेरे मन में यही बात थी। यही सोचता था कि यहाँ का काम पूरा करके ही दूसरा कदम उठाना चाहिये !'

'दामोदर, देखो, मैं तुमसे एक बात कहता हूँ; वह यह कि महाराज धंधूकराज अब युद्ध नहीं चाहते।'

'हमारे और चन्द्रावती के बीच युद्ध का सम्बन्ध है ही कहाँ जो इन्हें युद्ध की आवश्यकता हो ? महाराज ! पूर्णपालजी तो विन्ध्य में ही होंगे और कृष्णराजजी कहाँ हैं ?' दामोदर ने अचानक पूछा।

धंधूक थोड़ा घबरा गया—'कृष्ण—कृष्णराज तो वहीं हैं।'

'बालप्रसाद के पास नड्डूल मे?' दामोदर ने उसकी कठिनाई समझकर स्वयं ही मदद की।

'हाँ, वहीं नड्डूल में ..!' धंधूकराज ने झट से कह दिया।

'अच्छा तो प्रभु!' दामोदर विमल के सामने देखकर बोला—'आप जैसा कहें वैसा सन्देशा महाराज के पास पहुँचा दूँ। पूर्णपालजी तो दिव्यजल लेकर हमारे मित्र बने हैं। महाराज अपने मित्र हैं ही, और कृष्णराज तो हमारे ही हैं ..' दामोदर हँसा—'बालप्रसाद के वहाँ हैं, तो अपने घर-आँगन में ही हुए!'

'मेहताजी, घर-आँगन क्यों कहा?' धंधूकराज ने थोड़ा अकुलाकर पूछा।

दामोदर उसकी व्याकुलता को समझ गया। कृष्णराज के बारे में उसकी धारणा और भी पक्की हो गई।

'घर-आँगन नहीं तो और क्या प्रभु? बालप्रसाद के यहाँ तो महाराज की ननिहाल ही है!'

'हाँ. .हाँ. बिलकुल ठीक है।'

आयुध ने प्रवेश किया—'महाराज! छाया-शास्त्री आये हैं।'

'अरे, महाराज! आपके सत्कार के लिए यह एक वस्तु ईश्वर-कृपा से आ मिली है। कुछ दिन पहले एक छाया-शास्त्री इस ओर घूमते-घामते आ निकले। उनके पास बड़ी अद्भुत विद्या है।'

'कौन-सी?'

'आपकी छाया पर से आपका भविष्य बतला देते हैं।'

'सच?'

'हाँ, महाराज! ऐसी विद्या का कोई जानकार मेरी निगाह में तो आया नहीं। आप आये तभी मैंने उन्हे बुला भेजा।'

थोड़ी देर मे छाया-शास्त्री आ गये। तब विमल दंडनायक, महाराज

धंधूकराज, दामोदर आदि सभी बाल सूर्य की किरणों में खडे होने के लिए पट्टकुटी से बाहर निकलकर मैदान में चले आये।

'शास्त्रीजी, महाराज अर्बुदपति की इच्छा है कि आप अपनी विद्या का परिचय दें।' दामोदर ने कहा।

'प्रभु! मेरे पास दो प्रकार की विद्या है। एक तो मैं छाया पर से भविष्य बतला सकता हूँ. दूसरे छाया पर से पुरुष के कुल का इतिहास कह सकता हूँ।'

'ऐसा—ओ-हो-हो! यह तो अद्भुत विद्या है—तब हमारे इस आयुष का—अथवा ठहरो. .' दामोदर ने आयुष से कहा—'आयुष! तेरा इतिहास तो लोक-समूह में थोड़ा-बहुत मिल सकता है। जरा दौड़कर महाराज और दंडनायक दोनो के महावतों को तो बुला ला।'

'अरे, मेहताजी, क्या जरूरत, ऐसी क्या जरूरत है?' धंधूकराज ने व्यग्रता से कहा—'रहने दीजिये, रुक जाइये!'

इस बीच आयुष दौड़ता हुआ गया और दोनों महावतों को इस ओर बुला लाया। दोनों आदमी आ पहुँचे। दामोदर की दृष्टि धंधूकराज के कल्ल के दाहिने हाथ की ओर शीघ्रता से गई और लौट आई। अँगुली मे रत्न-जटित अँगूठी नहीं थी। किसी को शंका न हो इसलिए दामोदर कृष्णराज की ओर पीठ करके धंधूकराज से बातें करने लगा—'क्या बताऊँ, महाराज, नड्डूल में भी एक छाया-शास्त्री थे। छाया नापकर वह आपका भविष्य बतला देते थे, साथ ही भूत काल भी बतला देते थे। और एक बार नाप लेकर आपका आनुवंशिक-इतिहास भी बतला देते थे।'

'क्या कह रहे हैं, मेहताजी! सच?'

'हाँ, महाराज, सच नहीं तो क्या झूठ? यह भी एक विद्या है।'

इतने मे छाया-शास्त्री हाथ जोडे आगे आया—'महाराज! मैं नड्डूल-वाले छाया-शास्त्री का शिष्य हूँ। गुरुजी ने अपनी सारी विद्या मुझे सिखला दी

है। मैं भी छाया पर से आनुवंशिक इतिहास बतला सकता हूँ।'

'अच्छा, तो फिर बतलाओ, यह हमारे महाराज के महावत हैं—इन्हीं का इतिहास बतलाओ।'

'अरे मेहता, रुको, रुको! हमारे महावत का इतिहास तो हमारे राज्य की गुप्त वार्ता है। ऐसी गुप्त वार्ता इस तरह सार्वजनिक ढंग से कही जाना ठीक हो सकता है?'

'ठीक न सही तो रहने दीजिये, महाराज! शास्त्रीजी आप हमारे इस आयुष का ही इतिहास बतलाइये।'

'महाराज! छाया के लम्बे या छोटे होने पर वंश और कुल निर्भर करते हैं। राजवंशी की छाया लम्बी होती है।'

कृष्णराज यह सुन रहा था। उसकी हिम्मत बँधी। उसने सोचा कि लाओ, मैं राजवंशी नहीं हूँ ऐसा सिद्ध कर ही दूँ। वह आगे आया। धंधूकराज को प्रणाम करके बोला—'महाराज, छाया-शास्त्री भले ही मेरी छाया नापें।'

'परन्तु अपना राज-रहस्य जो प्रकट हो जायेगा?'

छाया-शास्त्री बोला—'नहीं, महाराज! मैं तो सिर्फ वंश बतलाऊँगा।'

'अच्छा तो बतलाइये, मैं खड़ा हूँ ...' कृष्णराज बोला।

छाया-शास्त्री ने छाया का नाप लेना शुरू किया। थोड़ी देर में नाप पूरा करके वह बोला—'महाराज! वंश—जाति—शूद्र ...'

दामोदर ठठाकर हँस पड़ा—'अरे शास्त्रीजी! इन्होंने तो वामन रूप होकर छाया नपवाई है। देखिये, इनके पैरों की ओर तो देखिये।'

सभी ठठाकर हँस पड़े। बात ने विनोद का रूप ले लिया। अब धंधूकराज भी निश्चिन्त हुए। कृष्णराज भी मुँह फेरकर विमल के महावत के साथ ताली बजाकर इस तरह हँसने लगा मानो उसने कोई बढ़िया मजाक किया हो। शास्त्रीजी थोड़ा खिसिया गये।

सिर्फ दामोदर ही इस विनोद के रहस्य को समझ सका। उसे

विश्वास हो गया कि महावत अपना वंश छिपाना चाहता है, इसलिए वह निश्चय ही राजकुलोत्पन्न है। कृष्णराज को उसके बहुरूपियेपन के लिए उसने मन-ही-मन धन्यवाद दिया।

'अच्छा, तो और सभी को रहने दीजिये। मैं ही आगे आता हूँ।' दामोदर ने कहा।

छाया-शास्त्री भी गम्भीरता से उसकी छाया का नाप लेने में दत्तचित्त हो गया।

२१. मंत्रणा-सभा

दामोदर धंधूकराज का सन्देशा लेकर महाराज के पास जाने की तैयारी कर ही रहा था कि कार्तिक आ गया। 'क्यों, कल्ल को अधिकार में कर लिया ?' दामोदर ने उसे देखते ही सीधा प्रश्न किया।

'जी हाँ, महाराज !'

'किस तरह ? किसी को कोई शंका तो नहीं हुई ?'

'नहीं, महाराज ! सँपेरे को बुलाया—कुछ मुद्राएँ दीं और दो-चार साँप अन्दर छुड़वा दिये। इससे घबराकर वह जो भागा तो सीधा बाहर निकल आया। बाहर आते ही जयदेव ने उसकी आँखों मे हरताल (एक धातु) की बुकनी डाल दी। वह चिल्लाता, कुछ शोर मचाता उसके पहले ही मुँह में कपडे ठूँसकर बेहोशी की दवा दे दी। पालकी तैयार थी ही। अब वह पालकी सोलंकी छावनी मे आ गई है।'

'अब वह क्या कर रहा है ?'

'अभी पूरी तरह होश मे नहीं आया है। लाहिनी वावली में है, या चन्द्रावती मे है या हाथी पर है, अभी कुछ भी नहीं जान पाया है।'

'आज महाराज की मंत्रणा-सभा में यहाँ का काम समाप्त हो जायेगा। फिर तुझे और जयदेव को चित्रकोट जाना है।'

'कब ?'

'आज रात को ही रवाना हो जाना है ! जयदेव को भी इसकी खबर दे देना। और तू इस दूसरे कृष्ण कल्ल पर बराबर निगाहें रखना और उस पहले कल्ल का भी ध्यान रखना। महाराज के समक्ष इनकी आवश्यकता

होगी। उस वक्त तू आ जाना।'

कार्तिक प्रणाम करके बाहर चला गया, उसके बाद दामोदर भी महाराज से मिलने के लिए चला। दामोदर का आग्रह होते हुए भी धंधूकराज सामनेवाले किनारे पर अवस्थित सूर्य-मन्दिर मे ही ठहरे थे। अतएव उनके लिए तैयार की हुई पट्टकुटी मे ही मंत्रणा-सभा करने का निश्चय हुआ था। दामोदर वहाँ पहुँचा तो उसे बालुकराय सामने ही मिल गया।

'चंड शर्मा आ गये हैं ?'

'आ गये है।'

'और भोगादित्य ?'

'यह सामने ही उनका हाथी झूम रहा है, इससे मालूम होता है कि वह भी आ गये हैं।'

'ठीक, मकवाणाजी भी अभी आ जायेंगे। और कौन बचा ? दंडनायक—वह तो धंधूकराज के साथ आयेंगे।'

दामोदर अन्दर गया। युद्ध-क्षेत्र में महाराज के साथ ऐसी मंत्रणा-सभा में भाग लेनेवाले अधिकारी तो दो-चार ही होते हैं, इसलिए इस प्रदेश के स्थानीय अधिकारी के अलावा सन्धि-विग्रहक चंड शर्मा, महा-सन्धि-विग्रहक भोगादित्य और सेनापति बालुकराय आदि सभी वहाँ आ गये थे। थोड़ी देर में मकवाणाजी भी आ पहुँचे। सभी बैठे महाराज भीमदेव की प्रतीक्षा करने लगे। इस बीच दामोदर ने उन्हे अपनी बात समझाना शुरू किया—

'चन्द्रावती पाटन के अधिकार मे से निकल जाये यह पाटन को पुसा नहीं सकता। दंडनायक का कहना है कि धंधूकराज सन्धि-प्रार्थना करने आये हैं। मेरी मान्यता है कि सन्धि तो समान व्यक्तियों में होती है। मैंने दंडनायक से कहा है कि धंधूकराज तो पाटन के सामन्त हैं। और सामन्त अपने अनुचित कृत्यों के लिए महाराज से क्षमा-प्रार्थना ही कर सकता है, सन्धि-चर्चा नहीं—अगर यह प्रस्ताव इसी ढंग से महाराज के समक्ष उप-

स्थित किया जाये तभी हम सब का गौरव अक्षुण्ण रह सकता है, और यहाँ का काम भी समाप्त हो सकता है। आपकी क्या राय है, बालुकरायजी ?'

'मैं तो, प्रभु ! पहले से ही कहता आया हूँ कि पाटन का गौरव अक्षुण्ण रखने के लिए हम महाराज भीमदेव के साथ मरने और जीने के लिए तैयार ही हैं। अगर महाराज भीमदेव हमसे कहें कि यह खाई है, कूद पड़ो तो अपने राम तो जय सोमनाथ कहकर उसमें कूद पड़ेंगे ! दूसरी सब बातें आप मंत्रीगण जानें।'

'भाइयो, बालुकराय का कथन मुझे तो सवा सोलह आने सच लगता है। हमारे सिर पर स्वामी बैठा है, वह यदि कहे कि चलो, संघ की ओर तो अपने संघ की ओर—और यदि कहे कि चन्द्रावती पर धावा बोलो तो चन्द्रावती पर ही सही। हम तो महाराज भीमदेव के बिना पैसे के खरीदे हुए गुलाम हैं।' केसर ने कहा।

'मकवाणाजी ! आपकी बात तो मैं भी जानता हूँ।' दामोदर ने कहा—'लेकिन यह न समझिये कि पाटनपति के प्रति मेरी भक्ति में लेश-मात्र भी खामी है !'

'अरे ! शिव ! शिव ! ऐसी कल्पना ही कौन कर सकता है ?'

'यह तो आप जानते ही हैं कि हमारे पाटन की कीर्ति-गाथा समूचे भरतखंड में गायी जाये उसी की बात मैं यहाँ कर रहा हूँ। मेरी बात सीधी और स्पष्ट है—दुश्मनों के समूह का सामना नहीं करना, फिर भी उन्हें एक के बाद एक नष्ट करना। इस क्रम में सबसे पहले धंधूकराज, उसके बाद बालप्रसाद, फिर हम्मुक, उसके बाद चेदिराज और सबके अन्त में अवन्तिनाथ आते हैं। इनमे से किसी को भी छोड़ना नहीं है। परन्तु एक ही साथ सभी को उभारना भी नहीं है। दंडनायक अपने परम बुद्धि-कौशल से धंधूकराज को यहाँ ले आये हैं। अब उन्हें यहीं रखना है और आगे के लिए ऐसी युक्ति सोचनी है जिसमें वह पुनः मालवा के साथ मिल न सकें।'

'परन्तु सुना है कि अगर सन्धि नहीं हुई तो उन्हें निर्भय वापस चले जाने का वचन दंडनायक ने दिया है। और दंडनायक का वचन पाटन-पति का ही वचन हुआ—क्या उसे भंग किया जा सकता है?' भोगादित्य ने कहा।

'अगर वह भंग हो गया तो सम्पूर्ण भरतखंड में पाटन की कीर्ति कलंकित हो जायेगी।' बालुकराय बोला।

दामोदर ने कहा—'पाटनपति का वचन भग न होगा, इसका जिम्मा मेरा....'

'बस, यही तो हम सब चाहते है, और हमें करना ही क्या है!' बालुकराय और मकवाणा आदि सभी ने कहा।

'अब मैं आपसे एक प्रश्न पूछता हूँ।' दामोदर ने कहा—'दंडनायक ने जो वचन दिया है वह तो महाराज भीमदेव का वचन हुआ। सम्पूर्ण राज्य भले ही नष्ट हो जाये, परन्तु वह वचन तोड़ा नहीं जा सकता।' दामोदर ने सब के मन के भावों को प्रतिध्वनित किया।

'वाह! वाह! बिलकुल ठीक है। दिये हुए वचन को निष्ठापूर्वक पालने की पाटन की कीर्ति तो समस्त भरतखड में प्रसिद्ध है।' चंड शर्मा ने कहा।

'प्रसिद्ध है और प्रसिद्ध रहेगी।' दामोदर ने कहा।

'ठीक है, हम भी यही चाहते हैं।'

'परन्तु मान लो कि धंधूकराज हमारी बात को स्वीकार न करें, तो क्या होगा?'

'तो लौट जायें, और युद्ध की तैयारी करें। हम भी शुभ मुहूर्त देखकर चन्द्रावती पर आक्रमण करेंगे। अगर उन्हें तैयारी के लिए पाँच-पन्द्रह दिन की मुहलत चाहिये तो वह भी दे देंगे। और तो क्या कर सकते हैं?' बालुकराय बोले।

मकवाणा ने सिर हिलाकर कहा—'वाह-वाह! क्या रंग है—राज-

वंशी तो इसी तरह युद्ध करते हैं !'

दामोदर ने मिठास से कहा—'बालुकरायजी की यह बात तो पाटन के योद्धा युगों-युगों तक अपने हृदय मे धारण किये रहेंगे। अगर धंधूकराज को हमसे समाधान न करना हो तो वे बेशक लौट जायें। मेरा भी यही विचार है। परन्तु क्या वह अकेले ही लौटें या दूसरा भी कोई उनके साथ लौटे ?'

'दूसरा है ही कौन ? धंधूकराज तो दंडनायक की आधी ही बात पर विश्वास करके अकेले चले आये हैं। वह और उनका महावत दोनों वापस जायेंगे। है न ? कहे तो हम चन्द्रावती तक पहुँचा देंगे। दडनायक ही साथ चले जायेंगे। इससे ज्यादा और क्या हो सकता है ?' बालुकराय ने कहा।

'इतना वचन तो हमने दिया ही है और उसका पालन होगा। धंधूकराज वापस जायेंगे, उनका हाथी वापस जायेगा और उनका महावत कल्ल भी वापस जायेगा। परन्तु इनके अलावा अगर कोई और हुआ तो मैं उसे लौटने नहीं दूँगा।'

'परन्तु दूसरा है ही कौन ?' बालुकराय ने पूछा।

'देखो, बालुकराय, तुम पाटन की सेना के प्राण हो। पाटन के सैकड़ों-हजारों युवक तुम्हारे ही आसरे इन भयंकर पर्वतों में पड़े हुए हैं। ऐसे मे मुझे या तुम्हें कोई यहाँ मूर्ख बना दे और पाटन की सुन्दरियाँ उधर विधवा हो जायें तो शंकर बारोट हम लोगों को सस्ता नहीं छोडेगा। हमारी मूर्खता की गाथाएँ युगों-युगों तक लोगों की जबानों पर चढ़ी रहेगी।'

'परन्तु क्या ऐसी कोई बात है ?'

'बात तो ऐसी कुछ नहीं है—और हो तो भी हमने जो वचन दिया है उसका तो पालन किया ही जायेगा। परन्तु तुमसे यह भी कहे दे रहा हूँ कि पाटन के गौरव का हनन हो—उसकी बुद्धि का कोई उपहास करे—यह मुझे कदापि सह्य नहीं। ऐसे वक्त मे मेरा क्या कर्तव्य है इसे मैं

खूब अच्छी तरह जानता हूँ। बस इतना ही।'

इतने में महाराज भीमदेव के आगमन की सूचना देनेवाले शंख की ध्वनि हुई। बाहर खडे घोड़ों और हाथियों की पंक्तियों में हलचल होने लगी। अनेक सैनिक विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर मैदान में खडे हो गये। धनुर्धारी भी वहाँ खड़े हो गये। चारणों की बिरुदावली से आकाश गूँजने लगा। बादलों के आगमन पर जगह-जगह जैसी हर्ष-ध्वनि होती है वैसी ही हर्ष-ध्वनि हुई। सैनिकों मे जोर का कोलाहल हुआ। गुजरात के लोकप्रिय, यशस्वी और रणोत्साही महाराज भीमदेव पधार रहे थे।

सैनिकों ने उन्हे देखा और प्रत्येक पर्वत से आसमान को गुँजाती हुई 'जय सोमनाथ' की महागर्जना हुई।

२२. महाराज भीमदेव का निर्णय

महाराज भीमदेव के पीछे-पीछे अर्बुदपति भी आ रहे थे। दंडनायक विमल उनके साथ था।

भीमदेव ने पट्टकुटी में प्रवेश किया। समस्त मंत्रिमंडल महाराज के स्वागत-सम्मान मे हाथ जोड़े नतमस्तक खड़ा हो गया।

जरी के मूल्यवान गादी तकियों के सहारे भीमदेव जैसे ही विराजमान हुए, चामरधारी उनके पीछे आकर खड़े हो गये और चँवर डुलाने लगे। चन्द्रमा जिस तरह फाल्गुनी नक्षत्रों के बीच शोभायमान होता है उसी तरह महाराज उस सभा में शोभा पाने लगे। थोड़ी ही देर में पट्टकुटी के द्वार पर सशस्त्र सैनिक पहरे के लिए आ खडे हुए। बाहर का कोलाहल शान्त हो गया। पट्टकुटी के आसपास भी सशस्त्र सैनिक दवे पॉव इधर-उधर चहल कदमी करने लगे।

'महामण्डलेश्वर! आप यहाँ आइये—यहाँ मेरी बगल में—' भीमदेव ने धंधूकराज को अपने समीप बुलाते हुए कहा।

धंधूकराज जरा से महाराज की ओर खिसक आये। परन्तु बीच मे काफी फासला बनाये रखकर अपने स्थान पर ही बैठे रहे। इस आदर-सत्कार का लाभ उठाकर दडनायक ने तत्काल बात छेड़ दी।

'महाराज, अर्बुदपति की वड़ी अभिलाषा थी कि एक बार आपसे स्वयं मिलकर मामले की सफाई कर लें।'

'हाँ, मेहता ने मुझसे कहा था, विमल!'

'यह स्वयं इसी लिए आये हैं कि आबू और पाटन के बीच हमेशा

के लिए मैत्री हो और पुराने सम्बन्ध पुनः प्रारम्भ हो सके। महाराज के समक्ष स्वयं ही अपनी बात रखना चाहते है।'

भीमदेव ने दामोदर की ओर देखा—'मेहता से तो इन्होंने पूछा ही होगा। क्या कहा मेहता ने?'

'किसके बारे में महाराज?' दामोदर ने कहा और धंधूकराज की तरफ इस तरह देखा मानो उनकी बात को समझता ही न हो।

'वही धंधूकराज की सन्धिवाली बात, दामोदर?' विमल ने कहा।

'हाँ-हाँ, यह तो कोई ऐसी नयी बात नहीं है। चन्द्रावती के परमारों का तो हम हमेशा आदर-सत्कार करते ही आये हैं; ये पाटन के महा-मण्डलेश्वर जो हैं। धंधूकराज का भी महाराज निस्सन्देह सत्कार करेंगे ही। लेकिन केवल इन्होंने यह कुल-परम्परा का दोष सिर पर ओढ़ा न होता।' दामोदर ने आखिर मर्मभेदी बात कह ही दी—भावार्थ यह था कि धंधूक के दादा भाग गये थे और यह खुद भी मालवा की शरण में दौड़े चले गये थे।

यह मर्मभेदी बात धंधूक के दिल में जरा गहरे से चुभ गई! उन्होंने कुछ तड़पकर कहा—'मंत्रीराज! अपमान क्यों करते हैं? पाटन के सिर पर अभी नड्डूल का भय मँडरा रहा है; उधर सिन्ध मे हम्मुक है; इधर मालवराज हैं। ऐसे समय में मेरा आपसे सन्धि करने के लिए तैयार होना स्वयं मेरी अपेक्षा आपके ही लिए अधिक लाभदायी है। दुश्मन कई हों, तो बुद्धिमान मंत्री वही समझा जायेगा जो एक दुश्मन को कम करे।'

'धंधूकराज! दामोदर ने निर्भयता से कहा—'महाराज के आपने बतलाये उतने ही दुश्मन नहीं हैं, और भी है। एक तो चेदिराज ही है। भविष्य में और भी दुश्मन हो सकते हैं। जहाँ तक दुश्मनों की संख्या का प्रश्न है, आर्यावर्त मे तो आज महाराज से कोई समानता कर नहीं सकता। परन्तु पाटन की भी सबसे मुकाबला करने की तैयारी है। आप हम पर

दया दिखलाने के बदले महाराज से अपनी जो बात कहनी हो उसी को कहिये।'

'यह तो ठीक है, मेहता!' विमल ने कहा—'परन्तु अब जो करना है उसके बारे मे महाराज से आज्ञा प्राप्त करो! धंधूकराज पाटन के साथ सन्धि करना चाहते है। महाराज उसे प्रदान करें।'

'सन्धि या क्षमा?' दामोदर ने सीधा सवाल किया।

'सन्धि-सन्धि-सन्धि—एक हजार और एक बार सन्धि। परमार किसी से क्षमा-याचना करते नहीं और करें तो वे परमार नहीं।' धंधूक ने कहा।

'धंधूकराज!' भीमदेव ने सगौरव कहा। उनके शब्द सुनने के लिए सभी एकाग्र हो गये।

'हम क्षत्रियों को शब्दाडम्बर से क्या मतलब? आपको युद्ध की तैयारी के लिए समय ही चाहिये है न?'

महाराज भीमदेव के शब्दों को सुनकर दामोदर, विमल और धंधूक तीनों ही घबरा गये। दामोदर को विश्वास था कि धंधूक क्षमा-याचना करके सामन्त ही बने रहेगे। वत-बढ़ाव जो कर रहे हैं सो तो सिर्फ ऊपरी दिखावे और सम्मान-रक्षा के लिए कुछ लाभ उठा लेने की इच्छा से ही। साथ ही दामोदर के मन में कृष्णराज की बात भी घूम रही थी। इससे उसे लगा कि कहीं महाराज जल्दबाजी न कर बैठें। विमल को ऐसा लगा कि कहीं नाव किनारे तक आकर डूब न जाये। उधर धंधूक को डर लगा कि मालवा की शरण के बहाने जो कुछ लाभ मिल सकता था कहीं वह सफा ही हाथ से निकल न जाये।

'हाँ—ठीक है—संक्षेप में ही बात पूरी कीजिये!' बालुकराय ने कहा—'आपको दंडनायक ने जो वचन दिया है उसे महाराज का ही वचन समझिये। आप निर्भय होकर वापस जाइये। तैयारी कीजिये। पूर्णपालजी को भी बुला लीजिये। फिर हमें खबर कर दीजिये। हम

चले आयेंगे। ठीक है न ?'

'वाह! वाह! बहुत बढ़िया बात कही है।' केसर ने कहा—'महाराज को तो रणदेवी की ऐसी ही उपासना शोभा देती है। महाराज के लिए रणक्षेत्र कोई नयी जगह तो है नहीं कि किसी को असावधान रखकर लड़ें। धंधूकराज! आप महाराज की कृपा अथवा रणक्षेत्र दोनों में से किसी एक को चुन लीजिये।'

'बोलिये, धंधूकराज, आप क्या चाहते हैं? सन्धि या युद्ध ?' भीमदेव ने सीधा प्रश्न किया।

'महाराज! मैं तो पाटन से सन्धि का इच्छुक हूँ; युद्ध करने के लिए दूसरों को कमी कहाँ है ?'

'तब तो ठीक है। सन्धि की बात करना हो तो मेहता के साथ चर्चा कर लीजिये और युद्ध की बात करनी हो तो उसके लिए हैं ये बालुकराय।'

'परन्तु अब कौन-सी बात रह गई जिसे मैं महाराज के साथ कर सकूँ ?' धंधूक ने पूछा—'जबकि मुझे तो सीधे महाराज पाटनपति के ही साथ बात करनी है।'

'सीधे पाटनपति से तो केवल एक ही ढंग से बात हो सकती है, धंधूकराज!' दामोदर ने कहा।

'किस तरह? बतलाइये न मंत्रीश्वर!'

'महाराज के चरणों में रत्नजटित मुकुट रखकर। महाराज स्वीकार करते है, या तो युद्ध—या प्रार्थना।'

धंधूकराज सोचने लगे। उनका अभिमान आहत हो रहा था। दामोदर तो उन्हें महामंडलेश्वर के रूप में ही स्वीकार करना चाहता था। धंधूक ने एक बार पुनः प्रयत्न किया।

'तो यह तो हो नहीं सकता। क्षमा और युद्ध के बीच चुनाव करना हो, तो परमार किसी से भी क्षमा-याचना नहीं करते!'

'अच्छी बात है। अब यह बतलाइये कि आप कब जाना चाहते हैं और हमसे क्या आशा रखते हैं?' दामोदर ने जल्दी से पूछा।

धंधूकराज ने शीघ्रता से खडे होने का ढोंग किया। परन्तु विमल ने उनका हाथ पकड़कर बैठा दिया।

'महाराज धंधूकराज!' विमल उन्हें समझाता हो इस तरह बोला—'आपको युद्ध से क्या लाभ होगा, जरा यह भी सोचा है? यदि कीर्ति की इच्छा रखते हों तो इस नश्वर कीर्ति की जिसके सामने कोई बिसात नहीं ऐसी अमर कीर्ति प्राप्त करने का सुयोग मिला है, उसे क्यों छोडे दे रहे हैं? गणधर ने आपके आरासुर के शंखोज्ज्वल संगमरमर के विषय मे जो कुछ कहा उसे आप कहीं भूल तो नहीं गये? यदि आपको स्वर्ग की इच्छा हो—तो क्या आरासुर का संस्थान स्वर्ग नहीं है? और यदि महाराज को राज्य की ही इच्छा हो—तो फिर मैं क्या कह सकता हूँ? हाँ, इतना अवश्य कहना चाहता हूँ कि युद्ध अनेक व्यक्ति कर सकते हैं; राज्य की प्राप्ति भी बहुत से लोग कर सकते हैं; परन्तु जो कोई नहीं कर सकता उसे आप ही कीजिये न—आप संगमरमर के राजा हैं इसलिए संगमरमर को सजीवन कीजिये—यह कोई नहीं कर सकता है।'

'परन्तु नन्दगिरि पर्वत किसी के सामने झुका नहीं है, और झुकेगा भी नहीं। पृथ्वी परमारों की है!' धंधूक ने कहा।

'पृथ्वी भले ही परमारों की हो....' दामोदर ने कहा—'परन्तु सत्ता तो सोलंकियों की है। आपकी चन्द्रावती भले ही अखण्ड रहे; परन्तु विमल-राज वहाँ महाराज की ओर से दंडनायक की हैसियत से रहेंगे।'

'भले ही रहें। उन्हें हम आरासुर दे देंगे।' धंधूकराज ने सम्मानपूर्ण मार्ग स्वीकार करने के अवसर से तत्काल लाभ उठाने का प्रयत्न किया।

'और जिस प्रकार महाराज भगवान सोमनाथ की रखवाली करते हैं, उसी प्रकार अम्बा भवानी की रखवाली आपके जिम्मे।'

'बड़ी खुशी से, हमारे सिर-आँखों पर।'

'आडावला और अर्बुदगिरि के बीच बैठे है,—इसलिए आप पाटन के महामंडलेश्वर द्वारपाल हुए। जो रास्ता माँगे उसे वहीं-के-वहीं रोक दीजियेगा।' दामोदर एक के बाद एक शर्तें रखता गया। धंधूकराज एक बार शर्तें स्वीकार कर लें फिर तो वह उनसे विमुख हो नहीं सकते। दामोदर का विचार उन्हें अन्त मे पूरी तरह मुट्ठी में कर लेने का था।

'यह तो हम प्राचीन काल से ही करते आये हैं। हमारे यहाँ से रास्ता निकालनेवाले, यों समझ लीजिये कि स्वयं होकर यमराज की डाढ़ों मे हाथ डालते हैं। इसका सबूत आपको दंताली का रणक्षेत्र देगा, जहाँ हमने अनेकों को सुला दिया है।'

'ठीक ही तो है, दामोदर!' विमल बात समाप्त करने के लिए अधीर हो गया—'धंधूकराज की विनती महाराज स्वीकार करते है। महाराज आज्ञा दीजिये ताकि धंधूकराज चन्द्रावती मे प्रवेश कर सकें।'

भीमदेव का एक ही वाक्य समस्त विवाद का अन्तिम निर्णय कर देने के लिए बस था। परन्तु महाराज भीमदेव कुछ कहें उसके पहले ही दामोदर ने फिर से कहा—'महाराज शीघ्रही आज्ञा देंगे कि धंधूकराज भले ही चन्द्रावती जायें, परन्तु क्या वह महाराज के साथ सिन्ध के हम्मुक के मुकाबले में चलेंगे? इनके जैसे महामंडलेश्वर के बिना सोलंकी सेना शोभा नहीं पा सकती।'

विमल को दामोदर की यह बात अच्छी नहीं लगी। उसने धधूकराज की ओर से जवाब दिया—'दामोदर, धंधूकराज तो आयेंगे ही—महाराज आज्ञा देंगे तो अवश्य ही आयेंगे, परन्तु उनकी इस अवस्था मे महाराज ऐसी आज्ञा देंगे भी? महाराज के मन की बात जानने के लिए सभी आतुर हैं।' विमल ने दोनों हाथ जोड़कर भीमदेव के समक्ष निवेदन किया।

भीमदेव ने कहा—'विमल! धंधूकराज को इस उम्र में ऐसी सुन्दर पर्वत श्रेणियों में से उठाकर वहाँ रेगिस्तानी युद्ध-क्षेत्र मे नहीं ही ले जाया जायेगा। वह भले ही इन पर्वत-शृंगों में आनन्द करें। वहाँ तो इन मक-

बाणाजी जैसों का काम है। परन्तु मेहता ने मुझसे जो बात कही थी वह ठीक लगती है।'

'कौन-सी बात है, महाराज ?' धंधूकराज ने हाथ जोड़कर पूछा—'महाराज की इच्छा मेरे लिए आज्ञा है!'

'दामोदर कहता था कि आपका महावत अनुपम है। मैंने सुना है कि हस्तमुक गज-युद्ध में अति प्रवीण है। इसके अलावा वह जलदुर्ग में रहता है। इस युद्ध के लिए—युद्ध हो तभी तक के लिए—आप अपने उस महावत को हमें नहीं दे सकते ?'

क्षण-भर के लिए धंधूकराज का मुँह उतर गया, परन्तु शीघ्र ही उन्होंने अपने-आपको संयत कर लिया। वह उत्साह का डौल करते हुए बोले—'ओ हो, महाराज! मेरे महावत का इतना सौभाग्य कहाँ कि रणक्षेत्र में उसके हाथों महाराज का गजराज संचालित हो। अभी जाकर उसे भेजे देता हूँ।' और भीमदेव को प्रणाम करके विदा लेने की तैयारी कर रहे हों इस तरह वह उठकर खड़े हो गये।

दामोदर उनकी ओर देखने लगा। भीमदेव की आज्ञा की प्रतीक्षा में धंधूकराज खड़े थे। उनके मन में घबराहट हो रही थी और वह जाने के लिए अधीर हो गये थे। परन्तु ऊपर से शान्त दीखने का प्रयत्न करते रहे।

'महाराज !' दामोदर ने अत्यन्त शान्ति से कहा—'धंधूकराज का वह महावत यहीं है। क्या बुलाया जाये ? क्या महाराज की उसे देखने की इच्छा है ?'

'यहीं है। हाँ ...' धंधूक ने उतावला होकर कहा—'मैं मन्दिर पहुँचकर तुरन्त ही उसे मुक्तकर महाराज की सेवा के लिए भेजता हूँ। मुझे वहाँ पहुँचाकर वह तुरन्त ही लौट आयेगा और महाराज के चरणों में अपनी सेवा अर्पित करेगा। अच्छा तो महाराज! अब आज्ञा हो—' धंधूक ने नीचे झुककर प्रणाम किया। विमल भी खड़ा हो गया।

धंधूकराज! क्षण-भर के लिए रुकिये! मैं अभी ही ...' दामोदर ने शीघ्रता से पट्टकुटी के बाहर नजर डाली। वहाँ इधर-उधर घूम रहे कार्तिक ने उस दृष्टि के सन्देश को समझा और तुरन्त अदृश्य हो गया। धंधूक ने इस दृष्टि का भेद पाने का प्रयत्न तो किया, परन्तु असफल ही रहा।

'अब क्या है, दामोदर?' विमल ने पूछा।

'यह तो विमलराज! मुझे थोड़ी-सी जानकारी प्राप्त करनी है।'

'किस बात की?'

कार्तिक स्वामी और जयदेव पट्टकुटी के बाहर दोनों तरफ से आते दिखाई दिये।

'मैं अभी बतलाता हूँ। धंधूकराज के पास दो महावत हैं। दोनों एक-से कुशल, दोनों ही अद्वितीय, दोनों का एक ही नाम। और दोनों का एक-सा वेश। है न महाराज?' दामोदर ने जल्दी से धंधूकराज की ओर घूम-कर पूछा।

धंधूकराज का चेहरा काला पड़ गया। उन्हें अपने मन की शंका सत्य होती दिखाई दी। उन्हें विश्वास हो गया कि दामोदर बात जानता है और अब बाजी हाथ से निकल गई। फिर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी।

'मंत्रीराज! आपको दो महावतों का एक जैसा होना इतना अद्भुत क्यों लगता है? मेरे यहाँ तो एक जैसे बाईस महावत निकल आयेंगे।'

'इसी लिए तो मैंने सोचा...' दामोदर बड़ी ही मधुरता से बोला—'कि महाराज तो गज-शास्त्र मे पारगत हैं; दोनों महावतों में कौन महाराज के चरणों मे रखने योग्य है, यह निर्णय भी उन्हीं से करवा लेना चाहिये।'

विमल आश्चर्यचकित रह गया। उसे लगा कि दाल में अवश्य कुछ काला है। धंधूकराज कुछ बोले नहीं, परन्तु वह विकल अवश्य हो गये। महाराज भीमदेव ने दामोदर की ओर देखकर कहा—'दामोदर, क्या दोनों में से चुनाव करना होगा?'

दामोदर ने कहा—'हाँ, महाराज! देखिये, वह दोनों आ गये। दोनों एक-से होशियार हैं, इसलिए धंधूकराज ही हमारे लिए चुनाव करेंगे। क्यों धंधूकराज ?'

धंधूक ने नीचे निगाह किये हुए ही कहा—'हाँ।'

एक ओर से जयदेव और दूसरी ओर से कार्तिक स्वामी एक जैसे दो कल्ल को लिये चले आ रहे थे।

दोनो कल्ल को कार्तिक स्वामी और जयदेव ने विरुद्ध दिशाओं से पट्टकुटी मे एक साथ हाजिर किया। दोनों एक दूसरे को आमने-सामने देख चौंक उठे। 'अरे!' कृष्णराज के मुँह से अकस्मात् उग्दार निकल गया। दामोदर ने इसे लक्ष्य किया। उसने तो पहले ही इशारा कर दिया था, इसलिए पट्टकुटी के प्रत्येक दरवाजे पर सशस्त्र सैनिकों की संख्या बढ़ गई थी। यह देखकर कि लौटने का मार्ग रह नहीं गया है कृष्णराज हिम्मत करके आगे बढ़ा। परन्तु कार्तिक ने उसे वहीं रोक दिया।

'यह क्या है, दामोदर ?' भीमदेव ने पूछा—'यह क्या बात है ? इस मंत्रणा-सभा मे कोई नयी बात हो रही है क्या ?'

दामोदर ने विनयपूर्वक कहा—'महाराज, मैंने आपसे और समस्त मंत्रिमंडल से कहा था कि धंधूकराज और उनका एक महावत ही लौट सकेगा। धंधूकराज ने अभी ही आपकी सेवा मे एक महावत समर्पित करने का वचन दिया है। इसलिए इन दोनों मे जो श्रेष्ठ हो उसी को वह आपके चरणों मे भेंट करें।'

अचानक बात के इस तरह रुख पकड़ लेने से विमल को चिन्ता हुई। वह अभी तक पूरा मर्म जान नहीं पाया था। इसलिए उसने धंधूकराज की ओर देखा, पर धंधूकराज उसको देखकर जवाब देने के लिए तैयार नहीं थे।

दामोदर ने धंधूकराज से विनयपूर्वक पूछा—'इन दोनों मे कौन श्रेष्ठ है, महाराज ? जो श्रेष्ठ हो उसे ही पाटन को सौंपिये।'

धंधूकराज ने कोई जवाब नहीं दिया।

'परन्तु यह सब है क्या, दामोदर ? हमने इनका महावत कुशल गज-शास्त्री है ऐसा समझकर ही माँगा, सो उसमें यह क्या बात निकल आई ? ये दोनों व्यक्ति एक-जैसे क्यो लग रहे हैं ? दोनों ने यह कैसा वेश धारण किया है ?'

'यह क्या है, सो तो महाराज ! मैं खुद भी अभी तक जान नहीं सका हूँ। गज-शास्त्र की बात है इसलिए महाराज धंधूकराज ही समझा सकेंगे !'

'यह क्या है धंधूकराज ! ऐसा किस तरह हुआ ? आपके दोनों महावत एक ही रूप-रंग के क्योंकर !'

भीमदेव का वाक्य अधूरा ही रह गया। दोनों कल्ल मे से एक कल्ल अचानक आगे बढ़ आया था।

'महाराज ! अर्बुदपति से पूछने के बदले आप मुझी से पूछिये। मैं बतलाता हूँ—मैं कृष्णराज हूँ।'

'कृष्णराज ?' सारी मंत्रि-सभा एक साथ बोल उठी। सभी आश्चर्य-चकित हो गये। 'अरे, कृष्णराज ! यह किस लिए किया ?'

'मैं अर्बुदनाथ का कनिष्ठ पुत्र कृष्णराज हूँ। मैंने स्वेच्छा से महावत का यह वेश धारण किया है।' कृष्णराज ने साहसपूर्वक कहा।

'किस लिए ?' दामोदर ने कड़े स्वर में पूछा।

दूसरे सब तो इस बात का यह परिणाम होते देख अत्यधिक आश्चर्य का अनुभव कर रहे थे। परन्तु विमल को क्षोभ होने लगा। उसने धंधूकराज को अपमान सहने का वेदनापूर्ण प्रयत्न करते देखा। अचानक उसे कुछ याद आया हो इस तरह वह जल्दी से दामोदर के समीप खिसक आया और उसके कान मे कुछ कहा।

दामोदर ने विमल की बात सुनते ही भीमदेव से कहा—'महाराज ! अर्बुदपति की विनती है कि महाराज दो क्षण के लिए उनकी बात एकान्त

में सुन लें तो अच्छा हो।'

'ऐसी बात है?' भीमदेव बोले—'तो ठीक है। धंधूकराज की ऐसी इच्छा हो तो उसे स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं। मुझे भी महामंडलेश्वर की इच्छा को जानना है।'

महाराज के ये वचन सुनते ही मंत्रिमंडल के सभी सदस्य एकदम खडे होकर महाराज भीमदेव को प्रणाम करके बाहर जाने लगे। दोनों कल्ल को लेकर कार्तिक स्वामी और जयदेव भी जा रहे थे। तभी भीमदेव ने कहा—'कार्तिक! कृष्णराजजी भले ही यहीं रहें!'

थोड़ी देर मे पट्टकुटी में धंधूक, भीमदेव और कल्ल के वेश में कृष्णराज ही रह गये।

धंधूकराज ने नम्रता से कहा—'महाराज! आपने राजा की तरह मेरे गौरव की रक्षा की।'

'महामंडलेश्वर का गौरव अखंडित देखने की किस की इच्छा नहीं होती? कृष्णराजजी! आपसे भी मुझे दो शब्द कहने हैं। वेश धारण किया है तो उसे पूरा भी करना था?'

कृष्णराज कुछ बोला नहीं।

'अब महाराज! कृष्णराज का जो अपराध हुआ उसके लिए मैं क्षमा माँगता हूँ।'

भीमदेव ने जोर से कहा—'वह तो आपको मिल चुकी है। परन्तु ठहरिये, सिंहनाद!'

सिंहनाद बाहर से दौड़ता हुआ आया।

'दामोदर महता को बुला ला—।'

सिंहनाद दामोदर को बुलाने के लिए दौड़ता हुआ बाहर गया। वह विमल के साथ बातों में तल्लीन था। सिंहनाद वहाँ जा हाथ जोड़कर एक ओर खड़ा हो गया।

'पर यह हुआ कैसे दामोदर?' विमल कह रहा था—'भरी सभा में

राजा का अपमान न हो—राजनीति के इस हेतु से ही, मैंने तुम्हारे कान मे कहा कि महाराज के पास एकान्त मे धंधूकराज इस बात का खुलासा करें ता अच्छा। परन्तु तुम्हे तो सभी बातें मालूम होंगी। कृष्णराज तो नड्डूल थे, वह यहाँ कैसे आ पहुँचे?'

'थे यह तो ठीक है—पर वास्तव मे तो वह चित्रकोट में कुलचन्द्र के साथ चर्चा करने मे सम्मिलित थे।'

'तो क्या अभी भी उन्हें कुलचन्द्र के प्रति विश्वास है?'

'पूरा-पूरा। धंधूकराज को बुलाने के लिए कुलचन्द्र स्वयं ही आया था, इसी लिए तो अब इन्हे यहीं राज-अतिथि के रूप मे रखना होगा।'

'क्या कैद करना है?'

'नहीं, कैद नहीं होंगे—अतिथि रहेंगे।'

'यह तो अच्छा नाम दे रहे हो—परन्तु बालप्रसाद सुनेगा तो?'

'तो यहीं चले आयेंगे; हमें नड्डूल नहीं जाना पड़ेगा।'

'वह नड्डूल है, दामोदर! उसकी चोट भारी पड़ेगी।'

'देखना चाहिये—कौन किसको भारी पड़ता है।'

'खैर, अब इतना तो करना ही, दामोदर, जिसमें धंधूकराज का अपमान अपमान न रहे!'

'मैं भी यही सोच रहा हूँ, प्रभु, कि मैत्री दृढ़ हो और उनके मन मे हमारे प्रति प्रीति उत्पन्न हो।'

विमल अपने गजराज की ओर बढ़ा, और दामोदर ने सिंहनाद के साथ महाराज के पास जाने के लिए पैर बढ़ाये। पट्टकुटी मे प्रवेश करते ही उसने महाराज भीमदेव, धंधूकराज और कृष्णराज को मित्रों की भाँति बातें करते देखा। जो गुड़ से मरे उसे जहर नहीं देना चाहिये, मन मे ऐसा निश्चय करके उसने सिंहनाद से कहा—'सिंहनाद! तू जरा सूर्य-मन्दिर तक जाकर लौट तो आ जल्दी से।'

'क्यों, प्रभु?'

'वहाँ से दिव्यजल ले आ। अभी महाराज को उसकी आवश्यकत पडेगी। दौड़ता हुआ जा।'

दामोदर की आज्ञानुसार सिंहनाद बाहर गया।

दामोदर को आया देख महाराज भीमदेव ने कहा—'दामोदर! कृष्णराज अब अपने हैं। उन्हें योग्य सम्मान से रखो।'

'हाँ, महाराज, लौटने में उनकी भी शोभा नहीं। वह हमारे सम्मा-ननीय अतिथि बनकर रहें। हमें भी धंधूकराज की स्थायी मैत्री का लाभ हो। मैंने सिंहनाद को भेजा है, वह दिव्यजल लेकर आता ही होगा।'

'दिव्यजल? क्यों? क्या शपथ दिलवानी है? राजा का अपमान करने की हमारी प्रथा नहीं। वह तो अनार्यों की रीति है।'

'महाराज राजनीति मे तो दो ही शब्द हैं—मान और सम्मान। अभिमान और अपमान तो क्षुद्र लोगों के लिए हैं। धंधूकराज को हमने महामंडलेश्वर के पद पर पुनः प्रतिष्ठित किया है। अब विमलराज दंड-नायक बनकर इनके आरासुर को दिव्य रूप प्रदान करने का प्रयत्न करेंगे। कृष्णराज तो हमारे अतिथि हुए हैं। महाराज अर्बुदपति दिव्य-जल की शपथ लेकर पाटन के विरुद्ध किसी षड्यंत्र में सम्मिलित न होने का विश्वास दिलायेंगे—इससे अच्छा सुयोग हम सब के लिए और कौन-सा हो सकता है? इसी लिए मैंने दिव्यजल मँगवाया है।'

सिंहनाद दिव्यजल लेकर आ गया। साथ में रुद्रराशि भी थे।

जब थोड़ी देर बाद महाराज भीमदेव के सामीप्य से धंधूकराज बाहर निकले तो वह अकेले ही अपने गजराज के पास आकर खड़े हो गये। इस बीच महावत कल्ल भी वहाँ आ पहुँचा।

एक भी दूसरा शब्द बोले बिना धंधूकराज ने अपने गजराज को सूर्य-मन्दिर की ओर लेने की आज्ञा दी।

दोनों मे से बोलने की शक्ति किसी मे भी नहीं रह गई थी। और दोनों कल्ल में श्रेष्ठ कल्ल महाराज भीमदेव के पास रह गया था।

२३. परन्तु वह जैन साध्वी कौन है ?

कृष्णराज सोलंकियों की छावनी मे नजरबन्द हो गया। दामोदर की भाषा के अनुसार तो वह राज-अतिथि था। यहाँ का काम समाप्त हुआ उसी रात दामोदर ने कार्तिक को अपने पास बुलाकर कहा—'कार्तिक ! तुझे और जयदेव को अब चित्रकोट जाना होगा। जयदेव तो वहीं चित्र-कोट में रहेगा, पर तू वहाँ से नड्डूल चले जाना। नड्डूल में पाटन-विरोधी एक संगठन है—समझा ?'

'पहले भी आपने मुझसे उसके बारे में एक बार कहा था, प्रभु !'

'कहा था ?' दामोदर ने कहा। कार्तिक जिस रहस्य का उद्‌घाटन करना चाहता था—दामोदर के हृदय की जिस शून्यता का पता लगाना चाहता था, उस पर से उसे पर्दा उठता हुआ प्रतीत हुआ। 'मैंने तुझसे कहा था ?' दामोदर ने जैसे स्वगत कहा और उसने अपने अन्तर को विचारों से शून्य होता हुआ अनुभव किया। परन्तु दूसरे ही क्षण उसने अत्यधिक संयम से काम लेकर अपने-आप पर काबू पा लिया। कार्तिक ने उसके इस मनोमन्थन को लक्ष्य किया।

'हाँ .तो याद रखना कि नड्डूल का युवराज बालप्रसाद कृष्णराज का परम मित्र है। जब बालप्रसाद यह समाचार सुनेगा तो वह कृष्णराज को निश्चय ही छुड़ाने का प्रयत्न करेगा। हमे उसके इस प्रयत्न को विफल करना होगा। और वहाँ जो वह जैन साध्वी है, वह कुलचन्द्र के हाथ पाटन को बेचने की बहुत दिनों से तिकड़म कर रही है। इस तरह कुल-चन्द्र है, प्रताप देवी है, यह जैन साध्वी है। बालप्रसाद है, यह कृष्ण-

राज है, और धंधूक था—ये छहों मिलकर एक षट्चक्र (षड्यंत्र) की रचना कर रहे थे। उनमें से धंधूक तो शपथ से बाँधा गया; कृष्ण कैद हुआ, अब बालप्रसाद पकड़ में आ जाये और यदि वह जैन साध्वी भी मुट्ठी में हो जाये तो फिर कुलचन्द्र की ऐसी कोई खास चिन्ता नहीं रह जायेगी।'

'प्रभु! कुलचन्द्र तो मालवा का अति विख्यात रण-विशेषज्ञ है। यह जैन साध्वी उससे भी बढ़कर हो, यह कुछ समझ में नहीं आया।'

'कुलचन्द्र की लड़ाई महत्वाकांक्षा से प्रेरित है; साध्वी की वैर से प्रेरित।'

'परन्तु यह साध्वी कौन है?'

दामोदर एक क्षण कुछ याद करता रहा, फिर बोला—'यह कौन है सो तो तुझे बाद में मालूम होगा, कार्तिक! धीरे ही धीरे तुझे इस बात का पता चलेगा। अभी तो इतना याद रख कि यह साध्वी भयंकर है। इसका वैर व्यक्तिगत है; कुलचन्द्र तो युद्ध का रसिया है।'

'पर फिर भी....'

बाहर से आयुष हाथ जोड़कर अन्दर आने की आज्ञा माँग रहा था।

'क्यों, आयुष! क्या है?'

'प्रभु, मकवाणाजी आये हैं—महाराज की आज्ञा लेकर वह जाने के लिए तैयार हो गये हैं—यह लीजिये, आ ही गये।'

मकवाणा ने अन्दर प्रवेश किया—'मंत्रीश्वर! अब मैं जा रहा हूँ। यहाँ का धंधूकराज का काम निपट जाने से महाराज की आज्ञा भी मिल गई है। महाराज सिन्ध पधारेंगे उस समय मैं पुनः उपस्थित हो जाऊँगा! मेरे घर से जल्दी पहुँचने का सन्देशा आया है!'

'मकवाणाजी! अभी ही रवाना होना है? हमारे यहाँ से तो सिन्धु-पति बहुत ही दूर है। बीच में बालू का महासागर फैला हुआ है। आपसे

कहा है उसी के अनुसार—आपसे जितने साधन इकट्ठा हो सकें कीजियेगा। और देखिये, हम्मुक को तो बल्कि ऐसी खबर भेजियेगा कि महाराज अभी इधर ही फँसे हुए हैं। हम भी सन्धि का प्रयत्न करेंगे—साथ ही दूसरी ओर युद्ध की तैयारियाँ भी।'

'यह काम तो आप ही कीजियेगा। मैं तो सुमरा से यही कहलवाऊँगा कि तैयार रहना, महाराज चले आ रहे हैं। मुझे दुश्मन को सीधी चुनौती दिये बिना लड़ने में मजा नहीं आता, प्रभु! मुझे थोड़े ही दिनों तक जीवित रहना है—फिर क्यों न जीवन के प्रत्येक क्षण में भरे हुए अनमोल रस का आस्वादन करूँ?'

'किसने कहा कि थोड़े दिन जीना है, मकवाणाजी? आचार्य रुद्रराशि की बात में कोई दम नहीं है! वह तो बनाई हुई बात थी।'

'रुद्रराशिजी भला क्या कहेंगे, महाराज! इतना तो स्वयं हम भी समझते हैं कि हम-जैसों को लम्बी आयु पुसा नहीं सकती। अच्छा तो, प्रभु!' मकवाणा ने भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। दामोदर उसके कन्धों पर हाथ रखकर प्रेमपूर्वक मिला—'मकवाणाजी! पुनः मिलेंगे!'

'हाँ प्रभु! शीघ्र पधारिये—मुझे भी यहाँ से सुमरा पर ही धावा मारना है।'

मकवाणा विदा लेकर गया। दामोदर थोड़ी देर तक उसे जाते हुए देखता रहा। इस बीच में उसके मन में कई विचार आये और गये। 'कार्तिक!' उसने कहा। उसका स्वर कुछ आर्द्र हो गया था—'किसी समय मैं भी चाहता था कि योद्धा बनूँ—जब-जब इन मकवाणाजी को देखता हूँ, जवानी के दिनों का मेरा वह स्वप्न पुनः जाग्रत हो उठता है। इस जोशीले रणबाँकुरे राजपूत का कितना मस्त और उदार स्वभाव है—इसके जैसा मालवराज के यहाँ कोई हो तो हो—बाकी समस्त भरतखंड में इसकी जोड़ी मिलना मुश्किल है। महाराज के मुकुट का यह अमूल्य रत्न है। सुना तूने? यह तो हम्मुक से भी चुनौती देकर ही लड़ेगा। ऐसा

ही योद्धा बनने का मेरा भी सपना था। वह तो मैं हो नहीं सका। मेरा यह रूप-रंग—भला, मुझे कौन योद्धा मानता ?'

'आज आपके मुँह से ऐसी वाणी क्यों निकल रही है, प्रभु ? महान युद्ध से भी जो सम्भव न हो पाता उसे आज आपने अपनी राजनीति से सम्भव कर दिखाया है। अनेकों योद्धा हथियार धारण करते हैं—पर अनेकों के हथियार हाथ-के-हाथ में ही रह जाते हैं। महाराज ने तो बिना हथियार के ही वार किये हैं—और वे वार हथियार के वार से भी अधिक करारे पड़े हैं।'

दामोदर सुनता रहा, कुछ बोला नहीं। इतने में ऐसा लगा मानो बाहर अचानक कोई रुका हो। आयुष हाथ जोड़कर पुनः अन्दर आया—'महाराज ! नड्डूल से आये हैं !'

'कौन है ?'

'देवराज !'

'स्वयं ? बुला, बुला, जल्दी बुला—'

थोड़ी देर में देवराज आया। उसका वेष देखकर कार्तिक चौंक उठा। उसकी गरदन से एक बड़ा साँप लिपटा हुआ था। हाथ में बाँसुरी थी। पैरों में घुँघरू बँधे हुए थे। उसने आकर सँपेरे की तरह झुककर प्रणाम किया—'अन्नदाता ! एक साँप का तमाशा....'

दामोदर मुस्कराया—'साँप का खेल तो रहने दे, सँपेरे ! यहाँ किसी से भी कुछ छिपाने की आवश्यकता नहीं है। ये कार्तिकेय तो अपने ही आदमी हैं। बोल, नड्डूल के क्या समाचार हैं ?'

देवराज ने अब भी थोड़ी आशंका से कार्तिक की ओर देखा।

'इसके कारण कोई बाधा नहीं है, तू अपनी बात कह। यही नड्डूल जानेवाला है। बोल, बालप्रसाद क्या कर रहा है ?'

'प्रभु ! बालप्रसाद अब यहाँ से अधिक दूर नहीं है। मालव-सेनापति साढा की गति तो आपने सुन ही ली होगी ?'

'पूरा विवरण तो नहीं मिला, परन्तु साढा तो...'

'स्वर्गवासी हुआ।'

'सचमुच ?'

'हाँ, महाराज ! वह देसूरी के दर्रे की राह मरुभूमि में प्रवेश करने का प्रयत्न कर रहा था। अणहिलराज ने दिखावे के लिए थोड़ी-सी सेना दर्रे के सामने रखी, और स्वयं दूसरी ओर से नीचे उतरकर हाथीगुडा के दर्रे से मेवाड़ में प्रवेश करके, साढा की सेना के पीछे आ लगा। साढा ने मुकाबला किया। परन्तु उसकी सेना दोनों ओर से घिर गई थी। साढा वहीं युद्ध में काम आया।'

'मालवराज—अब मालवराज क्या करेंगे ?'

'अभी तो कुछ नहीं करेंगे।'

'क्यों ?'

'उन्हें भय है कि पाटन और नड्डूल एक हो जायेंगे; कर्नाट भी उन्हीं की ओर झुक रहा है। चेदिराज ने तो उन्हें चुनौती भी दे दी है।'

'काहे की ?'

'इस बात की कि युद्ध में स्थापित की जानेवाली श्रेष्ठता पहले शिल्प में स्थापित कीजिये। निश्चित समय के अन्दर ऊँचे से ऊँचा मन्दिर कौन स्थापित करता है, इसकी होड़ बदी जाये।'

'मालवराज ने चुनौती स्वीकार कर ली ?'

'अभी तो उन्होंने ऐसी गाथाएँ प्रत्युत्तर में भेजी हैं जिनका अर्थ लगाने में विद्वानों की बुद्धि भी चकरा जाये। मालवराज का क्रम ही इस प्रकार है—पहले वे गाथाएँ भेजते हैं, उसके बाद विद्वान, उसके बाद कारीगरों की कला, फिर सन्धिविग्रहक और अन्त में सेना।'

'तो अब साढा का स्थान कुलचन्द्र लेगा ?'

'ऐसा ही होगा। और वह हमारे प्रतिकूल जायेगा। कुलचन्द्र की मान्यता है कि अवन्ती भारतवर्ष का मध्य बिन्दु है। उसने भोजराज की

महत्वाकाङ्क्षा को उत्तेजित किया है। काश्मीर से तैलंग देश तक एक सत्ता स्थापित करने की उसकी तैयारियाँ हैं। वह नड्डूल, चेदि, लाट, तैलंग, मेदपाट, साँभर आदि को वट-वृक्ष की जटाएँ समझता है। और कहता है कि इन्हें तो जब चाहे काटा जा सकता है; परन्तु जो वट-वृक्ष धीरे-धीरे और दृढ़ता से विकसित हो रहा है और जो थोड़े ही समय में अवन्ती को नष्ट करने की शक्ति इकट्ठा कर रहा है उसी को सब से पहले उखाड़ फेंकने की आवश्यकता है। इसलिए कुलचन्द्र सबसे पहले पाटन को ही नष्ट करने का प्रयत्न करेगा। इसमें उसको नड्डूल और अर्बुद-पति की सहायता भी मिलनेवाली थी। परन्तु अब आबू तो पाटन के सामने झुक गया और नड्डूल भी मालवा के विरुद्ध हो गया है—इसलिए उसे कोई नयी योजना बनानी पड़ेगी।'

'परन्तु नड्डूल में कुछेक तो अब भी उसकी सहायता करनेवाले निकल ही आयेंगे।'

'कुछेक निकल आयेंगे? अब भी नडूल का सम्पूर्ण शासन-तंत्र कुलचन्द्र के अनुकूल है। नडूल के राजकुमार और अन्य राज-कुलोत्पन्न भी अहिंसा की उपासना में लगे हुए हैं। कुलचन्द्र भी अहिंसा का उपासक है। मालवराज की विद्या-सभा के कवि-कवीन्द्र भी इसी ओर झुक रहे हैं। कुलचन्द्र पर मालवराज का सम्पूर्ण विश्वास भी है। इसलिए अगर कुलचन्द्र नड्डूल को मिला भी ले तो कोई आश्चर्य नहीं। कुलचन्द्र मानता है कि यदि पाटन की सत्ता नष्ट हो जाये तो सारे भारतवर्ष में अवन्ती का प्रभाव फैलते देर न लगेगी। पाटन ही उसके मार्ग की बाधा है—इस ओर श्रीमाल, कच्छ, सौराष्ट्र और सिन्धु देश की ओर बढ़ने में और उस ओर लाट की ओर बढ़ने में। कुलचन्द्र को नडूल में एक जैन साध्वी की सहायता भी प्राप्त है। कुलचन्द्र को वही परिचालित करती है।'

'परन्तु क्या मालवा पाटन के साथ अभी ही युद्ध करेगा? तेरा क्या खयाल है?'

'कदाचित् अभी युद्ध न करे; परन्तु देर-अबेर अवश्य युद्ध करेगा।'

दामोदर क्षण-भर के लिए चुप हो गया। वह कुछ सोचने लगा था।

'तुझे तो वापस जाना होगा, देवराज !'

'हाँ, महाराज ! परन्तु मुझे जो कुछ कहना है वह तो अब कहता हूँ। अवन्ती और कुलचन्द्र तो अभी दूर हैं; परन्तु नड्डूल का युवराज बालप्रसाद तो समीप ही आ गया है।'

'कृष्णराज यहाँ महाराज की नजरकैद में है, यह समाचार तो उसे कहीं मिल नहीं गया है ?'

'जी नहीं ! अभी तो स्वयं मुझे भी यहाँ आने पर पता चला है। अब तो बालप्रसाद को अपनी योजना बदलनी पड़ेगी।'

'क्यों ? पहले क्या योजना थी ?'

'उनकी योजना यह थी—कृष्णराज महाराज के महावत बन जायें। जब महाराज धंधूकराज के साथ शिकार खेलने के लिए जायें तो कृष्णराज महाराज के हाथी को पागल कर दें और बालप्रसाद अपने थोड़े-से सैनिकों के साथ उस हाथी को वश में करते-करते महाराज को ही अपने वश में कर लें।'

दामोदर जोर से हँस पड़ा—'हा-हा-हा—दोनों ही जवान हैं न ! इस तरह क्या पाटन में... अरे देवराज ! अच्छी याद आई। अगर उनकी यह योजना अब भी कार्यान्वित की जा सके तो इस मामले का भी तत्काल ही निपटारा हो सकता है।'

'सो किस तरह महाराज ?'

'धंधूकराज अभी यहीं हैं। महाराज उन्हें शिकार खेलने का निमन्त्रण देकर थोड़ा समय यहीं रुकने का आग्रह करें। कृष्णराज खुशी से महाराज के हाथी को संचालित करें। बालप्रसाद की कृष्ण के साथ गाढ़ मैत्री है ही इसलिए वह भी इस ओर आये बिना रहेगा नहीं। वह इस ओर आये और आबू की तरह हमारे वश में हो जाये तो हमारा नड्डूल की ओर का

डर दूर हो। तू यहाँ के समाचार लेकर जाये तो उनकी मूल योजना के यथावत् होने की बात उनसे कह सकता है।'

देवराज सोचने लगा।

'हाँ, महाराज ! यह योजना चल तो सकती है। सिर्फ पागल हाथी के विषय में विशेष रूप से विचार करना पड़ेगा।'

'अब तुझे यहाँ से कहाँ जाना है ?'

'मैं तो यहाँ से बालप्रसाद के गुप्तचर के रूप में कृष्णराज से मिलने जानेवाला हूँ।'

'परन्तु तुझे मिलने ही कौन देगा ? वह तो महाराज की पट्टकुटी के समीप अपनी पट्टकुटी में होगा। और वहाँ अब सिंहनाद की आज्ञा के बिना चिड़िया भी पर नहीं मार सकती।'

'तो फिर ?'

'तू दो-एक दिन रुक जा। कल सवेरे महाराज धंधूक के पास शिकार का सन्देशा भेजेंगे। कृष्ण से ये सब समाचार प्राप्त करके तब तू जाना। कृष्ण क्या कहलाता है इसका भी पता उस समय तक लग जायेगा। परन्तु ठहर, तेरे बारे में तो किसी को लेश-मात्र भी शंका नहीं है न ? नहीं तो बड़ी कठिनाई उपस्थित होगी।'

'मेरे बारे में ? नहीं महाराज ! मैं तो बालप्रसाद का अत्यन्त ही विश्वासपात्र गुप्तचर बन गया हूँ। मेरी अँगुली के इशारे पर उसके घोड़े नाचते हैं। मैं अपने इन घुँघरुओं की झनकार से और मुरली के नाद से साँप को नचाता हुआ अनेक व्यक्तियों को रिझाकर सोलंकी छावनी में जा सकता हूँ ऐसा उन सभी का विश्वास है।'

'अच्छा, तो ठीक है। तू आज कार्तिक के पास ही रहना। कार्तिक को भी अब रोकना पड़ेगा। जयदेव से भी कह देना। ठीक है—धंधूक को शिकार का सन्देशा भेजते समय इस बात का ध्यान रखना होगा कि उसे उसमें किसी दूसरी बात की शंका न होने पाये। मैं अब दंडनायक

से मिलूँगा और कहूँगा कि धंधूक के दिल में जितना भी रोष है वह इसी ढंग के निकल सकता है; और विमल के साथ यही तय करूँगा और विमल ही इस सबकी व्यवस्था करेंगे। अच्छा तो अब तू....'

दामोदर ने अँगड़ाई ली। तुरन्त ही कार्तिक और देवराज प्रणाम करके चल दिये।

वे पट्टकुटी में से बाहर निकले ही थे कि कार्तिक ने देवराज के कन्धे पर हाथ रखा। उसके कन्धे पर पड़े हुए सर्प के शीतल स्पर्श से वह चौंक पड़ा।

'चौंको मत—इसमें जहर नहीं है। हमें किस ओर जाना है ?'

'हमें उस ओर जाना है—वहाँ सामने जिधर अलाव जल रहा है। मुझे एक गूढ़ प्रश्न व्याकुल कर रहा है।'

'कौन-सा ?'

'तुम मंत्रीश्वर के पुराने और विश्वासपात्र व्यक्ति हो। तुमने अनेक वर्ष इस राजनैतिक वातावरण में बिताये हैं। तुम मंत्रीश्वर के हृदय से भी परिचित हो। ऐसी क्या बात है कि मन्त्रीश्वर नड्डूल और एक जैन साध्वी का नाम आते ही खिन्न हो जाते हैं ? इस जैन साध्वी की क्या कथा है ? कुछ है भी या नहीं ? और यह जैन साध्वी कौन है ?'

२४. दामोदर का स्वप्न-कथन

कार्तिक स्वामी देवराज का जवाब सुनने के पहले ही अपने पीछे किसी की धीमी पदचाप सुनकर चौंक पड़ा। उसने जल्दी से पीछे घूमकर देखा। उनके पीछे दामोदर खड़ा था। कार्तिक विवर्ण हो गया। परन्तु दामोदर ने कुछ न सुना हो इस तरह कहा—

'मैं देवराज से यह कहने के लिए आया था कि तुझे कोई भी नहीं पहचानता यह तो सही है, परन्तु क्या वह साध्वी भी तुझे नहीं पहचानती? उस साध्वी के बारे में तुझे तो कुछ मालूम नहीं होगा, कार्तिक! परन्तु अब तू उस ओर जा रहा है इसलिए उसके बारे में पूरी जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक है। पाटन के लिए प्रताप देवी जितनी भयंकर है, यह साध्वी भी उतनी ही भयंकर है। यह साध्वी कौन है, यह मैं तुझे बतलाता हूँ। पाटन की जिम्मेवारी आगे-पीछे तुम-जैसों को सौंपनी ही होगी। बोलो उठाओगे न?' दामोदर एक बार खँखारा। उसके इस तरह के प्रयत्न को कार्तिक अब समझने लगा था। अपना भेद प्रकट करने में दामोदर को जो दुःख हो रहा था उसे वह मानो अँधेरे मे भी देख सका।

'कार्तिकेय! यह बड़ी ही पुरानी बात है। उस वक्त मैं युवक था। प्रत्येक युवक स्वप्न-दर्शी होता ही है। मैं भी स्वप्न-दर्शी था। उन दिनों महाराज दुर्लभराज के साथ मैं एक सामान्य जन की हैसियत से नड्डूल गया था। जिस वक्त महाराज भीमदेव के पिता नागराज ने लक्ष्मी देवी से, और महाराज दुर्लभराज ने दुर्लभ देवी से विवाह किया, उन दिनों की यह बात है। वह समय अब भी मेरी आँखों मे रम रहा है।

'वहाँ अनेक नृपति आये हुए थे। गज-सेना, अश्व-सेना और पदाति-सेना के महासमुद्र में घिरा हुआ नड्डूल किसी द्वीप की भाँति लग रहा था। भारतवर्ष के कोने-कोने से वहाँ राजागण आये हुए थे।

'काशीराज, अंगराज, चेदिनाथ, अवन्तिपति, मथुराधिपति, विन्ध्य, लाटेश—जैसे अनेक भूपतियों से नड्डूल के मार्ग शोभायमान हो उठे थे। उन दिनों मैंने वहाँ समस्त भारतवर्ष की सर्वोत्तम वीर-श्री को देखा। उन्हीं दिनों मुझे यह विश्वास हो गया कि गुर्जरेश्वर का पाटन एक महासमृद्धि-शाली राज्य का केन्द्र बनने योग्य है। महाराज दुर्लभराज और नागराज की तुलना में ठहर सकने योग्य एक भी व्यक्ति वहाँ मुझे दिखाई न पड़ा।

'इस दुनिया में कभी-कभी ही ऐसा सुयोग मिलता है कि तुम्हें जिसके सौन्दर्य से प्रेरणा प्राप्त होती है वह सौन्दर्य जीवन-सुरभि से भी ओत-प्रोत हो। लक्ष्मी देवी ऐसी ही महिला थीं। और उनकी एक सखी थी।'

दामोदर थोड़ी देर रुका।

'लक्ष्मी देवी को तूने देखा नहीं. यह एक तरह से अच्छा ही हुआ। कवि जिस सुन्दर-से-सुन्दर रूप की कल्पना कर सकते हैं, उससे भी अधिक सुन्दर वह देवी थीं। और उनकी सखी भी उतनी ही सुन्दर थी। अत्य-धिक सौन्दर्य का दर्शन जीवन में कभी-कभी एक प्रकार की करुणता का कारण भी बन जाता है। मुझे इसका अनुभव हुआ है। जिसे ऐसा अनु-भव न हो वह भाग्यवान है। मैं कामना करता हूँ कि किसी भी युवक को ऐसा अनुभव न हो।

'मैं वैभवपूर्ण पाटन को महाराज्य का रूप देने के स्वप्न देख रहा था। इस स्वप्न से परिपूर्ण मेरी कल्पना के लिए दुनिया में कुछ भी असम्भव नहीं था। मैं स्वयं को पाटन का महामंत्रीश्वर मानकर खुश हो रहा था।

'मैंने जब लक्ष्मी देवी की सखी से अपने इस स्वप्न के बारे में कहा तो वह हँस पड़ी—"ब्राह्मण देव! पहले धनुष उठाना तो सीखिये, फिर इस महास्वप्न की बातें कीजियेगा।"

'मैंने कहा—"देवी ! मेरा यह महास्वप्न आपकी ही अदृश्य प्रेरणा का प्रतिफल है।"

' "ऐसा है तो मेरे पास आते-जाते रहियेगा। परन्तु हमारी भूमि तो मरुभूमि है। यहाँ की सुन्दरियाँ स्वप्न या स्वरूप का नहीं, स्वपराक्रम का वरण करती हैं।" उसने कहा। मैं पाटन लौट आया। परन्तु अब मेरे हृदय मे उस सुन्दरी ने अपना स्थान बना लिया था।

'पाटन आकर सैनिक-शिक्षा प्राप्त करने के लिए मैंने कई रात्रियाँ दिन की तरह व्यतीत कीं। जिस समय जल में तारे नहाते होते मैं शब्दवेधी बाण चलाने का अभ्यास करता। मैं सरस्वती नदी के किनारे की घनी झाड़ियों में घूमने लगा। विमल से स्पर्धा करने के लिए मैंने धनुर्विद्या की सतत शिक्षा प्राप्त करनी प्रारम्भ की।

'जब-जब मैं अपनी प्रेरणा-मूर्ति से मिलता, वह मुझे प्रोत्साहित करती थी। महान पाटन, महान राज्य और उसका महान मंत्रीश्वर—इस प्रकार की त्रिवेणी में अवगाहन करते हुए हम कभी अघाते नहीं थे।

'अखिल विश्व की सम्पत्ति भी इसके चरणों में धर दी जाये तो वह भी कम ही रहे,—इस प्रकार की असम्भव विचार-तरंगों में मेरी जीवन-नौका बह रही थी। मैं युवक था। स्वप्नों को मूर्त रूप देने का उन्माद मुझमें था। अपनी प्रियतमा को रिझाने की लगन भी मुझमें थी। अनेक रसिकों की भाँति मैं भी गाथाएँ रचता और उन्हे उसके चरणों मे समर्पित करता और उसकी एक मुस्कराहट के लिए अपने-आपको बड़े-से-बड़े जोखिम में डालने के लिए हमेशा तैयार रहता था।

'महाराज दुर्लभदेव ज्ञानी थे, तो नडूल की राजपुत्री दुर्लभ देवी भी संसार को नगण्य समझती थीं। अपनी धार्मिक श्रद्धालुता में वे दोनो अडिग थे। उनके कोई सन्तान नहीं हुई। लक्ष्मी देवी के पुत्र-जन्म हुआ। नाग-राज की मृत्यु हुई। मेरी महत्वाकांक्षा शनैः-शनैः बढ़ती रही। मेरे मन मे ऐसी कल्पनाएँ उत्पन्न होने लगीं कि लक्ष्मी देवी का पुत्र जगत्-प्रसिद्ध हो

और चारों ओर उसके नाम की धाक बैठ जाये।

'परन्तु जहाँ से दुर्लभ देवी आई थीं, वहाँ अहिंसा का बोलवाला था, और वही संसार की सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था समझी जाती थी।

'एक दिन मुझे पता चला कि नडूल के अन्य राज-कुलोत्पन्नों की भाँति दुर्लभ देवी भी राज्य-सत्ता को धर्म की दासी मानती हैं। और दुर्लभ देवी की भाँति ही लक्ष्मी देवी की दासी भी उसी पन्थ की उपासिका है।

'लक्ष्मी देवी की मृत्यु के बाद यह बात अधिकाधिक उजागर होती गई। अब मुझे शंका होने लगी कि कहीं मेरी प्रियतमा अपनी योजना के लिए ही तो मुझे एक सर्वोत्तम प्यादा मानकर मुझसे लिपटी हुई नहीं हो! जबकि मैं तो अब भी उसकी सौन्दर्य-प्रेरणा से अनुप्राणित होकर महान पराक्रम करने का प्रयत्न कर रहा था। अन्त में प्रियतमा या पाटन दोनों में से केवल एक को चुनने की स्थिति आ गई। मैंने पाटन लिया—प्रियतमा को छोड़ दिया।

'और उसने भी मेरा अत्यधिक उपहास किया—"इतनी अधिक बुद्धि होते हुए भी तुम इस बात को समझ न सके कि अगर पारलौकिक सिद्धि प्राप्त करने की आकांक्षा न हो तो कोई भी नारी तुम्हारे इस कुरूप और बेडौल, अति साधारण काले, नाटे शरीर को भला क्योंकर चाह सकती है? मैं तो तुम्हे केवल इसलिए चाहती थी कि अगर मेरे द्वारा धर्म-शासना की वृद्धि हो रही हो तो दो क्षण के लिए इस देह को भले ही यह बेढंगा व्यक्ति भी देख ले, कोई हर्ज नहीं!'

दामोदर बोलता-बोलता अचानक रुक गया। अँधेरे में भी दामोदर के हृदय की वेदना को देख सकते हों इस तरह कार्तिक और देवराज बिलकुल चुप थे।

'वह नारी—वही यह जैन साध्वी है। उसे पाटन की महत्ता खटकती है। उसकी योजना वैर-प्रेरित है। उसमें कट्टर धर्मान्धता का अदम्य बल है। वह एक बार पाटन को अवश्य नष्ट करेगी—यह मैं मानता

हूँ। बस, अब तुम जाओ। मुझे जो कहना था, वह मैंने कह दिया।'

देवराज और कार्तिक प्रणाम करके चल दिये। रास्ते में थोड़ी देर तक दोनों मे से कोई भी नहीं बोला। इतना परदा उठ जाने के बाद कार्तिक को मंत्रीश्वर के जीवन की कई-एक घटनाएँ पुनः-पुनः याद हो आईं। उसे लगा कि अपने भग्न-जीवन को नित नये रंगों से रँगने के लिए ही दामोदर अपने-आपको प्रतिक्षण राजनैतिक कार्यों मे पिरोये रखता है।

'मंत्रीश्वर के जीवन की एक करुण घटना और भी है।' थोड़ी देर पश्चात् देवराज मन्द स्वर में बोला—'वे उसे भूलना चाहकर भी भूल नहीं सकते। एक बार प्रेम करनेवाला कोई भी व्यक्ति कभी भी भूल नहीं सकता इतनी अनुपम और आकर्षक उसकी सुन्दरता है। उस साध्वी को मैंने देखा है। इसी लिए तो मंत्रीश्वर पाटन और पाटनपति को महान बनाने के लिए अपने जीवन की करुण कथा पर परदा डालकर प्रत्येक क्षण का राजकार्य में उपयोग करते हैं। समयानुसार कभी मंत्रीश्वर की पद-प्रतिष्ठा और महत्ता को तिलाजली देकर किसी अति सामान्य व्यक्ति की ही भाँति उन्होंने समस्त कार्य स्वयं अपने हाथों भी किये हैं। राजा को महान पराक्रमों के लिए प्रेरित करने और आगे बढ़ाते रहने की नीति ही उन्होंने सदा-सर्वदा अंगीकार की है। समझौते की अपेक्षा शत्रुता में ही अधिक आनन्द का अनुभव किया है। इतना सब होते हुए भी उनका महान पद तो संधि-विग्रहक का ही है। उनकी एक ही महत्वाकांक्षा है और वह यह कि देर-अबेर अवन्तीनाथ की प्रबल सत्ता पर पाटन ऐसे वार करे जिससे वह पुन उठ न सके। उसी के लिए वह समय की प्रतीक्षा में हैं। उनकी ऐसी नीति को कुटिल-नीति कहकर दोष देनेवाले भी कई हैं। और सबसे अधिक करुण प्रसंग तो यह है कि जिन महाराज के लिए वह अपने जीवन का प्रत्येक क्षण निचोड़े दे रहे है वह महाराज भी उनकी नीति का निरादर करते हैं।'

'क्या महाराज भी उन पर अविश्वास करते है?'

'महाराज ऐसा मानते हैं कि सैनिक योद्धा के रूप में वह जिस कीर्ति की उपासना करते हैं उसे मंत्रीश्वर की नीति से धक्का पहुँचता है। महाराज के अन्य सलाहकार भी उनके इस विचार का समर्थन और प्रोत्साहन देते हैं।'

'अरे! वर्षों पहले भग्न-हृदय होकर भी मंत्रीश्वर जिस तरह का पराक्रम कर रहे हैं उसमें यह करुणता सामान्य नहीं; क्योंकि इनकी पराक्रम-वृत्ति को न तो कहीं से प्रेरणा मिलती है और न कहीं से प्रोत्साहन। केवल अपनी राजनीति के एकान्त गौरव पर अपने-आपको टिकाये रख वह आगे बढ़ रहे हैं। क्या तुमको ऐसा नहीं लगता कि एक दिन वह स्वयं अपने ही गौरव के भार से टूट जायेंगे?'

'मुझे तो ऐसा लगता है कि रण-प्रदेश के जिस भयंकर युद्ध का मंत्रीश्वर ने श्रीगणेश किया है वह एक तरह से उन पर किये जानेवाले सभी आक्षेपों और दोषारोपणों का उत्तर देने की उनकी तैयारी ही है। यह योजना इतनी विशाल है कि स्वयं महाराज को भी अपनी सामरिक कीर्ति के मुकुट को बनाये रखने के लिए आकाश-पाताल एक करना पड़ रहा है। इतने दुश्मनों के रहते हुए भी पाटन से इतनी दूर, उस भयंकर रेतीले-प्रदेश में जाने की हिम्मत करना कोई मामूली बात नहीं है—नड्डूल में तो सब यही माने बैठे हैं कि पाटन वहाँ सिन्ध में गर्क हो जायेगा! पाटन सिन्ध में गर्क हो या न हो परन्तु अपने-आपको अत्यधिक कठिन कामों में डुबो देने की मंत्रीश्वर की यह जो एक अपरिहार्य आवश्यकता है, इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं।'

इतना कहकर देवराज चुप हो गया। कार्तिक स्वामी दामोदर से सम्बन्धित प्रसंगों को आज प्राप्त की हुई नूतन दृष्टि से परखने लगा; वह जितनी ही गहराई से देखता गया दामोदर उसकी दृष्टि में उतना ही महान होता चला गया। अन्त में वह मन-ही-मन कह उठा—'अरे-रे! इनकी जोड़ी मिलाने के लिए तो ठेठ गुप्त-वंश तक जाना होगा।'

२५. दामोदर की चिन्ता

देवराज और कार्तिक स्वामी के जाते ही दामोदर दो क्षण के लिए इस तरह इधर-उधर चक्कर मारने लगा, मानो सब कुछ भूल जाने का प्रयत्न कर रहा हो।

जब दामोदर ने देवराज से कहा था कि कृष्णराज की योजनानुसार महाराज अब भी शिकार खेलने के लिए जा सकते हैं—और उस तरह की व्यवस्था सम्भव है, तब स्वयं उसे भी यह खयाल नहीं हो पाया था कि यह काम कितना कठिन और संकटपूर्ण है।

वह अपनी पट्टकुटी में बैठकर इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगा। ज्यों-ज्यों विचार करता गया उसका मन अनेक शंका-कुशंका से भरता गया।

कृष्णराज द्वारा उन्मत्त किये हुए हाथी को घने जंगल में किस तरह वश मे किया जा सकेगा? और यदि वह काबू मे न आ पाया तो उसके दुस्साहस का कितना भयंकर परिणाम होगा, इस विचार के आते ही वह स्वयं भी काँप उठा।

फिर मानो स्वयं अपने ही दुस्साहस से विकल होकर वह पट्टकुटी के एक कोने में बैठ गया।

किसी अन्य व्यक्ति को नहीं बल्कि स्वयं पाटनपति को ही इस योजना के द्वारा सकट मे डाले दे रहा है, जब यह विचार आया तो वह इतना उद्विग्न हो उठा मानो कोई भयंकर पाप कर्म कर रहा हो; और फिर तत्काल खड़ा होकर जल्दी-जल्दी घूमने लगा मानो उससे मुक्ति चाहता हो।

काम बड़ा ही साहसपूर्ण था, परन्तु यदि उसमे सफलता मिल गई तो आबू की ही भाँति नड्डूल भी वश मे हो जायेगा; और दिन-प्रतिदिन जोर पकड़ते जाते हम्मुक को पराजित करने का अवसर पाटन को मिल जायेगा —विजय प्राप्ति का यह लाभ भी उतना ही लुभावना था।

लाभ और हानि, विजय और पराजय, साहस और फल-प्राप्ति के बीच मंत्रीश्वर तुलना करने लगा।

अचानक उसे कुछ याद हो आया; और वह घूमता-घूमता रुक गया और उसने जोर से ताली बजाई।

मंत्रीश्वर की हलचल का अभ्यस्त आयुष अन्दर की ओर दौड़ा आया।

'आयुष! तुझे अभी ही जाना होगा।'

'कहाँ, महाराज?'

'पाटन! यह ले मेरी अँगूठी....' दामोदर ने अपनी अँगूठी उसकी ओर फेंकी, 'देख इतनी सावधानी से जाना होगा कि पाटन मे किसी को यह खबर न होने पाये कि तू युद्ध-भूमि से आ रहा है, समझा?'

'हाँ, महाराज!'

'जाकर देवी से मिलना होगा।'

'किससे—महारानीजी से?'

'नहीं, देवी से। पाटन में देवी एक ही है—चौला देवी! चौला देवी से यह कहना कि पाटन को महान संकट से उबारने के लिए यहाँ सभी आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं!'

'जी, महाराज!'

'देख, यहाँ अथवा वहाँ किसी को भी यह पता नहीं लगना चाहिये कि तू गया है। चौला देवी वहाँ से आई हैं यह भी किसी को मालूम नहीं होना चाहिये। किसी को भी नहीं। बोल, हो सकेगा न?'

'हाँ, प्रभु!' आयुष ने हाथ जोड़कर कहा।

'अच्छा, तो ले, यह दूसरी अँगूठी—अपनी छावनी मे से तू बिना किसी कठिनाई के निकलकर जा सकेगा। परन्तु किसी को भी, अदने-से-अदने आदमी तक को यह मालूम नहीं होना चाहिये कि तू कहाँ जा रहा है और किसको ले आया है। थोड़ा ठहर—देवी को देने के लिए सन्देशा तैयार कर दूँ।' दामोदर दीपक के पास बैठकर कुछ लिखने लगा। स्वयं ही उस पर मुहर लगाकर ठीक से देखा और आयुष के हाथ में बाँस की एक भोंगली रख दी।

'ले, इसमें सब लिख दिया है। तू अभी ही रवाना हो जा—मेरी साँढ़नी ले जाना। लौटकर उत्तर की ओर की एक पट्टकुटी मे उतरना। कल वह पट्टकुटी तैयार हो जायेगी। पहचान के लिए उस पट्टकुटी के ऊपर रेशमी कपड़े का बना हुआ एक मुर्गा टँका होगा। जा, और एक क्षण भी खोये बिना और किसी भी स्थान पर विश्राम किये बिना लौटकर आना। तेरे इसी काम पर मेरी प्रतिष्ठा आधारित है। पाटन की प्रतिष्ठा भी तेरे ही हाथ में है। देखना, लेश-मात्र भी भूल न होने पाये। अब जा।'

आयुष प्रणाम करके चला गया। उसके जाते ही दामोदर धंधूक-राज से मिलने के लिए गया।

शिकार खेलने की योजना बन गई थी। दामोदर के हिसाब से जिस रात आयुष को लौट आना था उसी रात वह अपनी पट्टकुटी में बैठा आयुष की प्रतीक्षा कर रहा था। अभी तक कोई आया नहीं था। प्रति-क्षण आयुष के आ पहुँचने का उसे भ्रम हो रहा था। तभी किसी ने अचा-नक प्रवेश किया।

'कौन, आयुष?' दामोदर ने पूछा।

'महाराज! यह तो मैं हूँ—देवराज।'

'क्या बात है?'

'महाराज! अब मैंने कृष्णराज से सारी बात मालूम कर ली है। उन्हों-ने कहा है कि धंधूकराज को महाराज ने शिकार खेलने का न्योता दिया

है। उस वक्त वह स्वयं ही महाराज के महावत बनेंगे। पर्णाशा नदी का किनारा, जहाँ बालप्रसाद बारम्बार वन-विहार करता है—कार्य-क्षेत्र के रूप में चुना गया है। कृष्णराज के पास ऐसी हिकमत है कि वह औषधि पिलाकर हाथी को निश्चित समय पर पागल बना देगा। और उसी समय शंख बजाकर वह जंगल को गुंजायमान कर देगा।'

'यह शंख-ध्वनि बालप्रसाद के लिए इशारा होगी?'

'हाँ, महाराज! शंखनाद होते ही चारों ओर की पहाड़ियों में छिपे हुए बालप्रसाद के सैनिक, पागल हाथी को वश मे करने के बहाने महाराज के हाथी की ओर बढ़ आयेंगे। कृष्णराज तो अन्त समय तक इसी प्रकार का व्यवहार करता रहेगा मानो महाराज के हाथी को वश में करने का प्रयत्न कर रहा हो।'

'ठीक है—तब तो हमें उस स्थान के बारे मे अधिक सतर्क और चौकस रहना चाहिये। और देख, यह तो पाटन के जीवन-मरण का प्रश्न है। महारानी चौला देवी को ...'

बाहर से आयुष की आवाज सुनाई दी।

'यह आयुष भी आ पहुँचा। अब तू मेरे साथ ही चल—क्यों आयुष?'

आयुष अन्दर आ गया था। देवराज को देखकर वह स्वयं कुछ न बोला। प्रणाम करके खड़ा हो गया और दामोदर के बोलने की प्रतीक्षा करने लगा।

'आ गई हैं?'

'महाराज!' आयुष ने पुनः सिर नवाकर केवल प्रणाम किया।

दामोदर बाहर निकला। उसने देवराज को अपने साथ आने का संकेत किया। दोनों आदमी चुपचाप चल रहे थे। जिस पट्टकुटी में जाना था जब वह दिखाई दी तो दामोदर ने कहा—'जहाँ वह दीपक का प्रकाश दिखाई दे रहा है, मैं वहीं जा रहा हूँ। वहाँ महादेवी चौला देवी आई हुई हैं!'

'महाराज!' देवराज आश्चर्यचकित हो गया।

'देवराज ! पाटन के भाग्यविधाता को ऐसे खतरे मे डालकर सही-सलामत निकाल ले आने की शक्ति मुझ अकेले में नहीं है। जिनके सहारे मैं ऐसी हिम्मत कर सकता हूँ उन्हीं को मैंने बुलवाया है। देवी की आज्ञा-नुसार मैं तुझे बुलाऊँगा। तब तक तू यहीं अकेला खड़ा रहना,।'

देवराज को वहीं अन्धकार मे अकेला छोड़कर दामोदर उस पट्टकुटी की ओर चला गया, जिसमें चौला देवी ठहरी हुई थीं।

२६. चौला देवी की श्रध्दालुता

दामोदर पट्टकुटी की ओर आया। चौला देवी की द्वारपालिका वहाँ खड़ी थी। दामोदर ने विना कुछ बोले केवल अर्थपूर्ण मुद्रा से चौला देवी को अपना आगमन सूचित करने के लिए उससे कहा। द्वारपालिका ने भी विना कुछ बोले एक ओर हटकर दामोदर को रास्ता दे दिया—और स्वयं नतमस्तक भाला झुकाकर मानो मंत्रीश्वर से अन्दर जाने की विनती कर रही हो इस प्रकार प्रणाम करके खड़ी रही।

दामोदर को वातावरण का यह परिवर्तन अत्यन्त अर्थपूर्ण लगा। स्वयं उसके यहाँ यदि कोई आता तो उसकी सूचना देने के लिए आयुष दौड़ता हुआ अन्दर आता था। पर यहाँ तो मानो एक भी शब्द न बोलने की देवी की आज्ञा हो इस प्रकार कुछ भी बोले बिना उस शस्त्रधारिणी नारी ने विनम्रतापूर्वक झुककर देवी की अनुमति की सूचना दे दी थी।

मंत्रीश्वर अन्दर की ओर बढ़ा।

दोनों ओर सुगन्धित तेल की दीपावली शोभा पा रही थी। उसने अन्दर के खण्ड में नजर डाली तो सामने लाल चन्दन का नक्काशीदार एक सुन्दर आसन दिखाई दिया। आसन खाली था; अन्दर के हिस्से में भी कोई नहीं था। दामोदर अपने आने की सूचना देने के लिए क्षण-भर वहीं खड़ा रहा।

'देवी!' उसने जोर से पुकारा।

दामोदर की नजर सहज ही अन्दर की ओर चली गई, और वह आश्चर्यचकित रह गया। भगवान् सोमनाथ के एक सुन्दर स्फटिक मन्दिर

के पास दीपक जल रहा था। मानो युगों-युगों की श्रद्धा और भक्ति विनत हो रही हो, इस प्रकार चौला देवी अत्यन्त सुन्दर भंगिमा मे वहाँ झुकी हुई थी।

कुछ देर पश्चात् चौला का सुन्दर उत्तुंग शरीर दिखाई दिया। उसके मुँह पर अब भी श्रद्धा की ज्योति जगमगा रही थी।

दामोदर ने उसे देखते ही दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया। चौला बाहर आकर खड़ी हुई और उसने दामोदर का प्रणाम स्वीकार किया। जिस प्रकार पाटन में उसकी उपस्थिति से वातावरण मे एक प्रकार की दिव्य सुगन्धि भर जाती थी वैसा ही दामोदर ने यहाँ भी अनुभव किया। मानो उसकी उपस्थिति-मात्र से बुद्धि सतेज हो गई हो इस प्रकार दामोदर अपनी योजना में शंका-कुशंका के स्थान पर आशा की रेखा देखने लगा। चौला आगे बढ़ी और चन्दन के उस पटे पर बैठ गई। सामने के आसन की ओर देखकर उसने कहा—'बैठिये, मंत्रीश्वर!'

दामोदर अभी भी खड़ा ही था। वह चौला के बैठने की मोहक छटा को देखता रहा और सोचता रहा कि इस नारी में ऐसा क्या है जिससे यह जो कुछ भी करती है वह सुसंस्कृत लगता है और इसका प्रत्येक क्रिया-कलाप मनोहर वातावरण की सृष्टि करता है!

'मंत्रीश्वर! मैं आपकी ही प्रतीक्षा कर रही थी!' दामोदर के कानों में मधुर स्वर सुनाई पड़ा। उसने चौला की ओर देखा और दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए बोला—'देवी! सबसे पहले तो मुझे आपसे क्षमा-याचना करनी है!'

'पहले बैठिये तो सही, क्षमा-याचना फिर कीजियेगा।' चौला बोली।

दामोदर चौला देवी के सामने के आसन पर बैठ गया और बोला—'लगता है आपको यात्रा में बहुत कष्ट हुआ है।'

'साँढ़नी पर मैंने पहले भी यात्रा की है। और आयुष का हाथ बहुत सधा हुआ है। वह भी आपकी योजना का एक अद्वितीय रत्न ही है।'

'देवी! पाटन को महान बनाने का मैंने अभियान तो किया, परन्तु अब मुझे अपनी ही श्रद्धा समाप्त होती हुई मालूम दे रही है।'

'मेहता! क्या महाराज के मित्र भस्मांकदेव का वचन सत्य होकर ही रहेगा? साम्राज्य स्थापित करनेवाली बुद्धि का क्या भारतवर्ष में ह्रास ही हो गया है? इतनी ही देर में तुम्हारी श्रद्धा समाप्त हो गई?'

'देवी! एक अकेला पाटन ही महान हो सकता है, यह तो मेरा वर्षों पुराना स्वप्न है। परन्तु मेरी बाजू में ...' दामोदर ने वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया, और थोड़ा खिन्न भी हो गया।

'तुम्हारी बाजू में कोई नहीं है, यही न? लो, मैं तुम्हारी सहायतार्थ खड़ी हूँ। मैं तुम्हारी श्रद्धा में अडिग विश्वास रखती हूँ। बोलो, क्या करना है?'

'दंडनायक की महानुभावता, त्वरित युद्ध-रचना और बुद्धि-कौशल से हमने अर्बुदपति को तो अपने वश में कर लिया है। अब नड्डूल बचा है।'

'ठीक है—'

'नड्डूल में अणहिल चौहान है। मालव सेनापति साढा को मारकर उसने बड़ा पराक्रम किया है। उसका राज्य छोटा, सेना भी छोटी—परन्तु इतनी तेज-तर्रार कि अभी उसे छेड़ने का समय महाराज के पास नहीं है। वहाँ विजय हुई तो उसका कोई महत्व नहीं, परन्तु अगर हार हुई तो प्रतिष्ठा की असीम हानि होगी। अर्बुदपति के कुमार कृष्णराज को महाराज ने जो नजर-कैद किया है उस परिस्थिति से यदि नड्डूल-विजय सम्भव हो जाये—और उस पर तात्कालिक अंकुश लग जाये तो हम्मुक-विजय के पश्चात् महाराज नड्डूल की ओर प्रयाण कर सकेंगे। हम्मुक का दबाव दिनोदिन बढ़ता ही जा रहा है; इसलिए अभी यहाँ युद्ध करना सिन्ध के युद्ध को हारने जैसा ही है। अभी तो युद्ध मे विजय अथवा पराजय समय और सेना के बचाव पर ही आधारित है। आपको इसी लिए बुलाया

है, देवी !'

'मुझे क्या करना होगा ?'

'आपने उस समय मालवा के मुकाबले में महाराज का विजय-ध्वज भरे दरबार में फहराया था, ठीक वैसा ही एक दूसरा प्रसंग उपस्थित हुआ है !'

'कौन-सा ?'

'देवी, मैंने सुना है कि कर्नाटक में मृदंग के निनाद से पागल हाथियों को वश में करनेवाली स्त्रियाँ हैं। आप भी कर्नाटक की सुन्दरियों के सम्पर्क में आई हैं। क्या आपके पास भी ऐसी सिद्धि है ? अगर हो तो मैं आपसे उसे पाटन के लिए माँगता हूँ।'

'तुमसे इस सिद्धि के बारे किसने कहा ! महाराज ने !'

'अभी तक महाराज को तो इस बात की कोई जानकारी होने नहीं दी है और न होने ही देनी है। यदि वे जानते होंगे तो भी लगता है कि अभी तो भूल ही गये हैं।'

'तो फिर !'

'मुझे लगता है कि वह सिद्धि अगर किसी के पास हुई तो आपके ही पास हो सकती है।'

चौला क्षण-भर चुप बैठी रही; वह कुछ भी नहीं बोली। दामोदर हतप्रभ हो गया।

'देवी, आप कुछ भी बोलीं क्यों नहीं ? पाटन के लिए भी न दी जा सके, क्या वह सिद्धि ऐसी है ?'

'मैं छोटी थी—पाटन में अपनी बुवा के पास रहती थी, उन दिनों कर्नाटक की एक अनुपम नर्तकी हमारे यहाँ आया करती थी। उसका नाम नट्टा देवी था। उसके मृदंग के नाद-निनाद से उन्मत्त-से-उन्मत्त हाथी को भी वश में होते हुए मैंने प्रत्यक्ष देखा है। उसी ने यह विद्या मुझे सिखाई है।'

'मैंने तो पाटन के जीवन-मरण का यह प्रश्न आपके समक्ष रख दिया है। अगर महाराज मालव-विजय से गर्वित नडूल के साथ इस समय युद्ध करेंगे तो एक ओर से मालवा—और दूसरी ओर से सिन्ध—दोनो दुष्मन मिलकर पाटन को तूम डालेंगे। नडूल से लड़ना नहीं है, युद्ध भी करना नहीं है और उसे जीते बिना लौटना भी नहीं है—अब तो लौटने-जैसी स्थिति भी रह नहीं गई है!'

'यह किस तरह होगा, मंत्रीश्वर?'

'मैंने आपको जो सन्देशा भेजा उस तरह—बालप्रसाद को वश मे कर लेने से। वह नडूल का युवराज है। बड़ा लाड़ला है। राजा अणहिल चौहान को भी प्रिय है। उसकी बात कोई नहीं टालेगा। उसे महाराज भीमदेव के चरणों में झुकना ही पड़े—ऐसी स्थिति हमें उत्पन्न करना होगी।'

'और जब महाराज को इस बात का पता लगेगा . '

'तब वह गौरव से झूम उठेंगे।' दामोदर ने कहा।

चौला ने मुस्कराकर कहा—'नहीं, ऐसे नहीं। मैं तो कहती हूँ कि देर-अबेर जब उन्हें पता लग ही जायेगा तो फिर पहले से ही क्यों न खबर कर दी जाये? वह कुछ सावधान हो जायेंगे।'

'नहीं, देवी, ऐसे नहीं। अपने पास अर्जुन के गाडीव-जैसी सचोट विद्या हो तभी इस बात में आगे बढ़ना ठीक होगा। जिन्होंने अकेले ही हजारों के साथ युद्ध करने में कभी आगा-पीछा नहीं किया उन रणबाँकुरे महाराज को अब सावधान करना या इस योजना के बारे में बतलाना संभव नहीं है। वह तो कदाचित् वहीं-के-वहीं नडूल को युद्ध के लिए ललकार बैठेंगे, और तब हजारों पाटनवासियों को आडावला में निरर्थक नष्ट कर देने का महापातक और महान राजनैतिक भूल इस गरीब दामोदर के सिर पड़ेगी। दामोदर तो, यदि उसकी अल्प श्रद्धा को आपकी अनुपम श्रद्धालुता का आधार मिल जाये, तभी इस विषय में कदम

बढ़ायेगा। नहीं तो यह अपरिपक्व योजना भले ही काल के गर्भ में पड़ी रहे। मैं तो तभी कदम बढ़ाऊँगा जब कि स्थल, समय, रचना, परिणाम आदि सभी के अंक बराबर मिल जायें और यह विश्वास हो जाये कि सव्यसाची के बाण की ही भाँति काम का लक्ष्यवेध हो जायेगा। न होता हो तो— आयुध और उसकी साँढ़नी को आपके पास भेजे देता हूँ। अभी मुझमें बुद्धि, कल्पना, श्रद्धा आदि कुछ भी नहीं है। आपकी बुद्धि, कल्पना और श्रद्धा पर ही मेरा दारोमदार है। बोलिये, देवी! आपका जवाब ही मेरी प्रतिष्ठा, आपका जवाब ही पाटन का गौरव, आपका जवाब ही महा...'

'मंत्रीश्वर, वंश-परम्परा और संस्कार से मैं नर्तकी हूँ। इस जीवन के हजारों प्रकार के विष-बुझे डंकों को अमृत-स्रोत से गला देने के लिए सभी कोई एक अमृत-स्रोत निर्मित करते हैं। मैंने भी अपने लिए एक अमृत-स्रोत निर्मित किया है। जीवन के अन्तिम क्षण में उसे भगवान् चन्द्रमौलीश्वर के चरणों में समर्पित कर देने की मेरी आकांक्षा है। मैं पाटन के लिए जीती हूँ। जिसमें पाटन की भलाई होगी वह सब करूँगी, परन्तु अपनी विद्या को किसी तुच्छ राजनीति का साधन बनाये जाने से पहले तो मैं अपने-आपका और अपनी उस विद्या का ही विसर्जन कर दूँगी। अगर पाटन का गौरव नष्ट होने का महत्त्वपूर्ण प्रश्न न हो तो मेरे इस जीवन-स्रोत को अखंड ही रहने देना। जिस प्रसंग पर नट्टा देवी ने इसका उपयोग किया था वह मैं आपको सुनाती हूँ।' चौला बोली— 'महाराज चामुण्डराज की दृष्टि दूषित हो गई थी। मालवपति के द्वारा आक्रमण किये जाने का भय प्रतिक्षण था। प्रजा बड़ी ही संत्रस्त हो गयी थी। धर्म पर संकट था। स्त्री-जाति का शील संकट में था। उसी समय वाचिनी देवी ने एक ही रात में राज्य परिवर्तन कर सवेरे महाराज को गादी पर से अलग कर दिया था—आपको वह प्रसंग याद है मंत्रीश्वर! उसी प्रसंग पर नट्टा देवी ने इस विद्या का उपयोग किया था। और उसने मुझे जो विद्या-दान दिया है वह किसी ऐसे ही महत्त्वपूर्ण प्रसंग पर उपयोग

किये जाने के लिए है। क्या आज का प्रसंग उतना ही महत्त्वपूर्ण है?' मैं तुमसे यही पूछती हूँ?'

दामोदर क्षण-भर के लिए विचार-मग्न हो गया।

'क्यों, बोले क्यों नहीं? पाटन का गौरव तो मुझे भी उतना ही प्रिय है जितना कि तुम्हें; परन्तु जहाँ से मैं आई हूँ, भगवान सोमनाथ के समुद्र की तरंगों में से, वहाँ समर्पित किये जाने की वस्तु कहीं भी समर्पित कर दूँ, ऐसा धर्म-द्रोह या विद्या-द्रोह मेरे हाथों न हो, बस मैं इतना ही चाहती हूँ! और फिर यह विचार भी है कि कहीं लोग ऐसा न कहें कि पाटन की एक सामान्य नारी की सहायता से महाराज ने विजय प्राप्त की। क्या यह बात भी विचारणीय नहीं है?'

'और क्या लोग यह नहीं कहेंगे कि पाटन की नारी ने जिस अनमोल रत्न को भगवान के चरणों में समर्पित करने के लिए जीवन-भर सहेज-कर रखा उसी अनमोल रत्न को समय आने पर बिना किसी हिचक और द्विधा के पाटन के लिए समर्पित कर दिया, देवी? पाटन के लिए अनेक वीर नारियों ने पुत्र दिये हैं, सम्पत्ति दी है, वैभव दिया है, स्वयं को समर्पित कर दिया है। परन्तु अनेक संस्कारों की वसीयत-जैसी और परलोक तक में फलीभूत होनेवाली विद्या किसी ने भी नहीं दी है। उसे देने का सौ-भाग्य आपको प्राप्त हुआ है। काश, मुझे भी ऐसा कोई सौभाग्य मिला होता!'

चौला दामोदर की ओर देखने लगी। दामोदर भी मानो चौला से आत्म-विश्वास माँग रहा हो इस प्रकार उसकी ओर देखने लगा। 'मैंने जो सुना वह यदि सच हो, देवी, और आपकी साधना यदि परीक्षा के द्वारा प्रमाणित हो चुकी हो, तो यह पाटन की प्रतिष्ठा और जीवन का प्रश्न है। अगर महाराज नड्डूल पर आक्रमण न करें तो प्रतिष्ठा की हानि होगी, आक्रमण करते हैं तो प्राणों की हानि होगी, युद्ध करें, तो कोई लाभ नहीं, युद्ध न करें तो हानि का कोई वार-पार नहीं। बालप्रसाद को वश में करने

बढ़ायेगा। नहीं तो यह अपरिपक्व योजना भले ही काल के गर्भ में पड़ी रहे। मैं तो तभी कदम बढ़ाऊँगा जब कि स्थल, समय, रचना, परिणाम आदि सभी के अंक बराबर मिल जायें और यह विश्वास हो जाये कि सव्यसाची के बाण की ही भाँति काम का लक्ष्यवेध हो जायेगा। न होता हो तो—आयुष और उसकी साँढ़नी को आपके पास भेजे देता हूँ। अभी मुझमें बुद्धि, कल्पना, श्रद्धा आदि कुछ भी नहीं है। आपकी बुद्धि, कल्पना और श्रद्धा पर ही मेरा दारोमदार है। बोलिये, देवी! आपका जवाब ही मेरी प्रतिष्ठा, आपका जवाब ही पाटन का गौरव, आपका जवाब ही महा....'

'मंत्रीश्वर, वंश-परम्परा और संस्कार से मैं नर्तकी हूँ। इस जीवन के हजारों प्रकार के विष-बुझे डंकों को अमृत-स्रोत से गला देने के लिए सभी कोई एक अमृत-स्रोत निर्मित करते हैं। मैंने भी अपने लिए एक अमृत-स्रोत निर्मित किया है। जीवन के अन्तिम क्षण में उसे भगवान् चन्द्रमौलीश्वर के चरणों में समर्पित कर देने की मेरी आकांक्षा है। मैं पाटन के लिए जीती हूँ। जिसमें पाटन की भलाई होगी वह सब करूँगी, परन्तु अपनी विद्या को किसी तुच्छ राजनीति का साधन बनाये जाने से पहले तो मैं अपने-आपका और अपनी उस विद्या का ही विसर्जन कर दूँगी। अगर पाटन का गौरव नष्ट होने का महत्वपूर्ण प्रश्न न हो तो मेरे इस जीवन-स्रोत को अखंड ही रहने देना। जिस प्रसंग पर नट्टा देवी ने इसका उपयोग किया था वह मैं आपको सुनाती हूँ।' चौला बोली—'महाराज चामुण्डराज की दृष्टि दूषित हो गई थी। मालवपति के द्वारा आक्रमण किये जाने का भय प्रतिक्षण था। प्रजा बड़ी ही संत्रस्त हो गयी थी। धर्म पर संकट था। स्त्री-जाति का शील संकट में था। उसी समय वाचिनी देवी ने एक ही रात में राज्य-परिवर्तन कर सवेरे महाराज को गादी पर से अलग कर दिया था—आपको वह प्रसंग याद है मंत्रीश्वर! उसी प्रसंग पर नट्टा देवी ने इस विद्या का उपयोग किया था। और उसने मुझे जो विद्या-दान दिया है वह किसी ऐसे ही महत्वपूर्ण प्रसंग पर उपयोग

किये जाने के लिए है। क्या आज का प्रसंग उतना ही महत्त्वपूर्ण है?' मैं तुमसे यही पूछती हूँ?'

दामोदर क्षण-भर के लिए विचार-मग्न हो गया।

'क्यों, बोले क्यों नहीं? पाटन का गौरव तो मुझे भी उतना ही प्रिय है जितना कि तुम्हें; परन्तु जहाँ से मैं आई हूँ, भगवान सोमनाथ के समुद्र की तरंगों में से, वहाँ समर्पित किये जाने की वस्तु कहीं भी समर्पित कर दूँ, ऐसा धर्म-द्रोह या विद्या-द्रोह मेरे हाथों न हो, बस मैं इतना ही चाहती हूँ! और फिर यह विचार भी है कि कहीं लोग ऐसा न कहें कि पाटन की एक सामान्य नारी की सहायता से महाराज ने विजय प्राप्त की। क्या यह बात भी विचारणीय नहीं है?'

'और क्या लोग यह नहीं कहेंगे कि पाटन की नारी ने जिस अनमोल रत्न को भगवान के चरणों में समर्पित करने के लिए जीवन-भर सहेजकर रखा उसी अनमोल रत्न को समय आने पर बिना किसी हिचक और द्विधा के पाटन के लिए समर्पित कर दिया, देवी? पाटन के लिए अनेक वीर नारियों ने पुत्र दिये हैं, सम्पत्ति दी है, वैभव दिया है, स्वयं को समर्पित कर दिया है। परन्तु अनेक संस्कारों की वसीयत-जैसी और परलोक तक में फलीभूत होनेवाली विद्या किसी ने भी नहीं दी है। उसे देने का सौभाग्य आपको प्राप्त हुआ है। काश, मुझे भी ऐसा कोई सौभाग्य मिला होता!'

चौला दामोदर की ओर देखने लगी। दामोदर भी मानो चौला से आत्म-विश्वास माँग रहा हो इस प्रकार उसकी ओर देखने लगा। 'मैंने जो सुना वह यदि सच हो, देवी, और आपकी साधना यदि परीक्षा के द्वारा प्रमाणित हो चुकी हो, तो यह पाटन की प्रतिष्ठा और जीवन का प्रश्न है। अगर महाराज नड्डूल पर आक्रमण न करें तो प्रतिष्ठा की हानि होगी, आक्रमण करते हैं तो प्राणों की हानि होगी, युद्ध करें, तो कोई लाभ नहीं, युद्ध न करें तो हानि का कोई वार-पार नहीं। बालप्रसाद को वश में करने

के अलावा मुझे तो दूसरा कोई मार्ग दिखता नहीं—मुझे तो लग रहा है कि केवल आप ही यह कर सकेंगी। भगवान सोमनाथ की चरण-रज से पवित्र हुई यह विद्या-सिद्धि यदि आप पाटन के लिए—'

दामोदर का वाक्य अधूरा ही रहा, वह चुप हो गया था। सामने बैठी हुई चौला अद्भुत, रम्य स्वप्न देख रही हो इस तरह एकदम शान्त, स्थिर और गम्भीर हो गई थी। वह साँस भी ले रही है या नहीं, ध्यान से देखे बिना कहा नहीं जा सकता। वह किसी अतल गहराई मे कुछ देख रही हो, उसकी नजर पृथ्वी को भेदकर पार चली गई हो, ऐसा लग रहा था। थोड़ी देर के वाद अपनी सुन्दर वेणी को एक हलकी-सी हिलोर देकर अभी ही जाग्रत हुई हो इस प्रकार बोली—'अरे, यह मैंने क्या देखा ? मैं तो यह भूल ही गई कि तुम कुछ कह रहे थे। क्या कह रहे थे ? तुम क्या कह रहे थे ? क्या विद्या की सचोटता के विषय मे कुछ कहा है ?'

'हाँ, देवी !'

'जीवन-भर स्वर की साधना करनेवाले को क्या स्वर अंतिम समय में दगा देगा ?' चौला दृढ़ता से बोली—'क्या मैंने कर्ण की तरह गुरु से विद्या चुराई है, जो मेरी भूल होगी ? मृदंग के नाद-निनाद से जिस प्रकार वृक्ष शान्त और स्थिर हो जाते हैं, उसी प्रकार गजराज भी आनन्द-मग्न होकर डोल उठेगा—मंत्रीश्वर, मेरी विद्या की आवश्यकता हो तो मेरा वह भाण्डार प्रसन्नता से पाटन के चरणों मे समर्पित करती हूँ। पाटन की तुम्हारी गौरव गाथा मे एक छोटे-से पद की तरह मेरा भी समावेश कर लो। इसे भगवान् चन्द्रमौलीश्वर की आज्ञा ही समझे।'

दामोदर का कुछ पूछने का मन तो हुआ—परन्तु चौला के इन वाक्यों के बाद कुछ कहना किसी पवित्र संकेत की अवहेलना करने की भाँति ही था।

उसने चौला को प्रणाम किया—'देवी ! आपने आज पाटन को पुनः बचा लिया !'

'मैं यहाँ बैठी तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी। समय—स्थान—रचना—'

'वह सब हो जायेगा। जो बड़ा प्रश्न था, वह तो सुलझ गया—अब मेरी बुद्धि पुनः काम मे प्रवृत्त हो गई है।'

'अच्छा ?' चौला हँसी—'फिर तो मैं अब महाराज से कहूँगी कि मंत्रीश्वर के बदले मुझी को मालव दरबार में भेजिये !'

'वह भी करना ही होगा, देवी ! महाराज ने हठ पकड़ ली है कि जब यहाँ तक आ गये हैं, तो अवन्तीनाथ से मिले बिना सिन्ध नहीं ही जायेंगे।'

'हैं ! सच ?'

'महाराज से किसी ने अवन्तीनाथ की विद्वत्सभा के बारे मे कह दिया है। और महाराज को वही बात लग गई है।'

'पर, मंत्रीश्वर, कहीं इसकी खबर किसी को हो न जाये ! अवन्तीनाथ के गुप्तचरों की तत्परता तो प्रख्यात ही है।'

'मुझे भी यही चिन्ता है। नड्डूल का काम निपटने के तुरन्त बाद ही यह प्रसंग उपस्थित होगा। और हो सके तो . ' दामोदर बात दबा गया।

'हो सके तो क्या ?'

'भोजराज के साथ महाराज के द्वन्द्व-युद्ध की व्यवस्था कर दी जाये, जिससे थोड़े समय के लिए पाटन निर्भय हो सके।'

'मंत्रीश्वर, तुम्हारी बुद्धि तुम्हारे कथनानुसार ही पुनः काम में प्रवृत्त हो गई प्रतीत होती है !'

'यह तो आपकी छाया का प्रताप है, देवी !' दामोदर प्रणाम करके विदा हुआ।

२७. मृदंग का घोष-निर्घोष

महाराज भीमदेव के साथ धंधूकराज के मृगया-विहार का समाचार अवन्तीनाथ के गुप्तचरों को शल्य के घाव की तरह लगा। उन्होंने दौड़कर यह संवाद भी चित्रकोट पहुँचा दिया कि अर्बुदपति तो अब महाराज भीमदेव के महामंडलेश्वर बनने में ही गौरव का अनुभव करने लगे हैं। परन्तु यह सम्पूर्ण प्रसंग नड्डूल के युवराज बालप्रसाद के लिए तो एक महोत्सव के समान ही था। उसने इस प्रसंग के लिए अपनी योजना विशेष रूप से तैयार की थी। उसके विचारों के अनुसार तो पाटनपति आडावला के अनेक दर्रों में से एक दर्रे मे सेनापति साढा की ही भाँति फँस रहा था। युद्ध, योद्धाओं और शस्त्रों के बिना ही प्राप्त होनेवाली इस विजय का वह मन-ही-मन खुश होकर मजा ले रहा था। पर्णाशा के किनारे के घने जंगल में वह महाराज भीमदेव की प्रतीक्षा कर रहा था। देवराज उसे पाटन के नित-नूतन और अद्‌भुत ऐतिहासिक प्रसंग सुनाकर मुग्ध कर रहा था।

'देवराज! अगर पाटन की पराजय हो जाये तो पूरी घुड़साल तुझे सौंप दूँगा, और गज-सेना भी तेरे ही हाथ में रहेगी!'

'महाराज! मुझे न तो अश्व-सेना की आवश्यकता है और न गज-सेना की। मुझे तो आप मेरे इस भुजंग द्वारा अपनी सेवा करने का अवसर दिये रहियेगा!' देवराज ने कहा, और मन-ही-मन हँसा।

'परन्तु यदि स्वयं कृष्णराज हाथो पर न हुए, तो?'

'अरे, ऐसा हो ही कैसे सकता है? और मान लीजिये कि वह नहीं

भी हुए तो क्या हुआ ? जिसे छुपकर वार करना है, वह तो दूसरे ढंग से भी वार कर ही सकता है।'

इतने में तीन हाथी पासवाले जंगल में से आते हुए दिखाई दिये। आगे-आगे धंधूकराज थे। बीच मे महाराज भीमदेव थे। सबसे पीछेवाले हाथी पर दामोदर बैठा था।

'लगता है कि सैनिक बिखर गये हैं!' बालप्रसाद ने कहा।

'हॉं, है तो ऐसा ही। और संकेत यह है कि जैसे ही गजराज उस वृक्ष के नीचे पहुँचेगा, शंखनाद होगा, महाराज! कृष्णराज का यह ज्ञान तो अद्‌भुत ही समझा जायेगा कि वह निश्चित समय पर हाथी को उन्मत्त बना देते हैं। उन्हें ऐसी औषधियों का ज्ञान है।'

'क्यों, वह कृष्णराज ही हैं न ? लगता तो यही है।' बालप्रसाद ने कहा।

'लगता क्या है, हैं ही। देखिये, उनकी दृष्टि भी वृक्ष की शाखा की ओर ही लगी हुई है।'

तीनों गजराज थोड़ा आराम करने के विचार से वृक्ष की ओर चले आ रहे थे। वह जगह चारों ओर छोटे-बड़े पहाड़ों से घिरी हुई थी। बीच मे एक अच्छी तरह खुला हुआ विशाल मैदान था। मैदान के एक किनारे पर पर्णाशा का तट था, जो वृक्षों से ढका होने के कारण दिखाई नहीं पड़ता था। बालप्रसाद उसी किनारे पर वृक्षों की ओट में छिपा अपने प्रतिद्वन्द्वी की प्रत्येक हलचल को देख रहा था। देवराज के मन की चिन्ता प्रति-क्षण बढ़ती जाती थी। वह बार-बार उस वृक्ष की ओर और उधर वृक्षों की ओट मे छिपे हुए-से एक खडहर-जैसे शिव-मन्दिर की तरफ देख रहा था।

वृक्ष के पास आकर तीनों गजराज खड़े हो गये। धंधूकराज का हाथी जरा दूर था। भीमदेव और दामोदर के गजराज पास-ही-पास खड़े थे।

'महाराज! क्या शंखनाद करके सैनिकों को बुलाऊँ ?' कृष्णराज ने

अचानक पूछा।

महाराज भीमदेव ने सिर हिलाकर कहा—'नहीं-नहीं, सब आते ही होंगे।'

'महाराज! जरा हम भी तो सुनें कि कुमार कृष्णराज के शंख की कितनी मनोहर प्रतिध्वनि होती है!' दामोदर ने कहा।

भीमदेव के प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही कृष्णराज ने तत्काल शंख-ध्वनि से आकाश गुँजा दिया। पर्वतों में से उसकी प्रतिध्वनि हुई। उस शंख-ध्वनि को सुनते ही जिस हाथी पर महाराज भीमदेव बैठे थे वह गजराज आकुल-व्याकुल हो उठा। वह अपने भीमाकार शरीर को इधर-उधर हिलाने लगा; और सूँड से वृक्ष की शाखा को पकड़कर उन्मत्त हो गया। कृष्णराज ने मानो उसे वश में करने के लिए अंकुश का प्रहार किया। लेकिन उस प्रहार ने तो उस हाथी को और भी बौखला दिया।

'अरे! कृष्णराज, यह क्या कर रहे हो?' भीमदेव ने जोर से कहा और अपने हौदे मे खड़े होकर उन्होंने बाण-संधान किया—'दामोदर! अपने गजराज को पीछे लेना—यह तो मालूम पड़ता है कि उन्मत्त हो गया है।'

उसी वक्त दामोदर ने चारों ओर के पर्वतों में घोड़ों की टापों की आवाज सुनी। तत्काल अनेक स्थानों से आते हुए अनेक घुड़सवार उस मैदान में दिखाई दिये। सब चारों ओर से उस वृक्ष की ही ओर आ रहे थे। महाराज भीमदेव का हाथी ही उन सब का लक्ष्य था। और वह हाथी वृक्ष की शाखा को तोड़, सूँड हिलाता हुआ, कृष्णराज के अंकुश-प्रहार के नीचे जोर से चिंघाड़ता हुआ आगे की ओर झपटा। कृष्णराज उस हाथी को वश में करने का डौल कर रहा था। उधर महाराज के हाथी को घेरने के लिए नड्डूल के सैनिक चारों तरफ से आगे बढ़ते हुए दिखाई दिये। महाराज भीमदेव ने, जो हौदे मे अपने-आपको बड़ी मुश्किल

से टिकाये हुए थे, जोर से एक बाण छोड़ा । सामने के एक घोड़े को बींधकर तीर सरसराता हुआ निकल गया और सवार मृत-प्रायः होकर नीचे आ गिरा । 'दामोदर !' महाराज जोर से बोले—'अपने हाथी को अंकुश में रखना । मेरेवाला तो और भी अधिक उन्मत्त होता जा रहा है । और, यह क्या ? नड्डूल का राजचिन्ह यहाँ कैसे ?'

बालप्रसाद पर्णाशा के किनारे की ओट छोड़कर मैदान की तरफ आ रहा था । देवराज उसके पीछे ही था । महाराज के गजराज के पृष्ठ भाग में आ सके इस प्रकार उसने अपने घोड़े की बाग मोड़ी । दामोदर ने अपने हाथी को जल्दी से महाराज के हाथी के पिछाये में लेने का आदेश आयुष को दिया ।

परन्तु अंकुश आयुष के हाथ में उठा का उठा ही रह गया । क्योंकि ठीक उसी वक्त मानो आडावला के पहाड़ों की परतों को चीरता हुआ नमोचारी मेघों के गुरु गंभीर गर्जन-जैसा, सतत कड़कड़ाता और गड़गड़ाता, कायरों के हृदय को कँपाता, किसी महाकालरात्रि की सूचना देता हुआ-सा, रौद्र नृत्य में तल्लीन भगवान् शंकर की डमरू-ध्वनि की याद दिलाता, अति भयंकर घोष-प्रतिघोष गरजने-गूँजने लगा । वह कहाँ से आ रहा है इसे कोई देख नहीं सका । मृदंग को कौन निनादित कर रहा है यह भी किसी को मालूम न हो सका । जिस प्रकार आषाढ़ के पानी-भरे बादल आपस में टकराकर अपने घोष से पृथ्वी को विदीर्ण कर वृक्ष-झरनों और नदी-पर्वतों को प्रतिध्वनित कर देते हैं और समूची सृष्टि गूँजने लगती है उसी प्रकार इस घोष से भी समस्त सृष्टि गूँज उठी थी और स्थान-स्थान से इसकी प्रतिध्वनि होने लगी थी । सभी चौंक पड़े । 'दामोदर !' महाराज ने पूछा—'क्या कोई धोखा तो नहीं है ?'

दामोदर ने दोनों हाथ जोड़कर महाराज को प्रणाम करते हुए कहा—'नहीं, महाराज ! संभवतः समीप के शिव-मन्दिर में कोई नाद कर रहा है ।'

उधर महाराज के हाथी पर उस भीषण स्वर का बड़ा ही अद्भुत

प्रभाव हुआ। नाद-प्रवाह कानों में पड़ते ही वह उन्मत्त गजराज वृक्ष की भाँति स्थिर हो गया। मानो किसी आनन्दमय समाधि में हो इस प्रकार आँखें मूँदकर वह स्वरों की सृष्टि में डोलने लगा। हौदे में स्थिर खड़े हुए महाराज ने जैसे ही इस बात का अनुभव किया तत्काल दामोदर से कहा—'दामोदर! ये सैनिक नड्डूल के मालूम पड़ते हैं। और वह बाल-प्रसाद ही है। दुश्मन घेरना चाहते हैं—तू अपने हाथी को उन पर हूल दे!'

'महाराज! जो आ रहे हैं उन्हें एक बार तो आ ही जाने दीजिये!' और दामोदर ने जल्दी-जल्दी बाण चलाना शुरू कर दिया। महाराज के दूसरे तीर ने एक और घोड़े को धूल चटा दी। और उसके बाद तो महा-राज ने तीरों की झड़ी ही लगा दी। हाथी नाद में लीन हो गया है, और अब आगे या पीछे एक कदम भी नहीं हिल सकता, यह ज्ञात होते ही महाराज भीमदेव जल्दी से नीचे कूद पड़े। दामोदर ने भी उनका अनु-सरण किया। धंधूकराज भी अपने हाथी को इधर-उधर दौड़ाने का व्यर्थ प्रयत्न करने के बाद नीचे कूद पड़े।

महाराज भीमदेव अपनी विकराल तलवार को खींचकर सीधे बाल-प्रसाद की ओर झपटे। यह देख देवराज बालप्रसाद के बिलकुल समीप आ गया। बालप्रसाद ने अपना घोड़ा महाराज भीमदेव की ओर ही दौड़ाया। हाथ बढ़ाकर उसने महाराज की ओर भाला फेंका। महाराज ने उछलकर वार चुकाया और भाला नीचे जा गिरा।

'सँभल जा, सोलंकी!' बालप्रसाद ने जोर की किलकारी लगाकर अपने सैनिकों को प्रोत्साहित किया—'घेरो! पकड़ो इसे....'

परन्तु उसी समय महाराज से विलग हुए सैनिक पहाड़ियों के ऊपर से पानी की बाढ़ की भाँति झपटते चले आये और दोनों पक्ष के सैनिकों में गुत्थम्-गुत्था हो गई। बालप्रसाद घोड़े पर था। महाराज भीमदेव पैदल थे। धंधूक किसी के पक्ष में न हो इस तरह 'हू-हा' कर रहा था। कृष्णराज

महाराज के हाथी को चला रहा हो इस प्रकार का निरर्थक प्रयत्न कर रहा था। दामोदर महाराज भीमदेव पर पीछे की ओर से होनेवाले वारों को बचाने के लिए उनके पास-ही-पास घूम रहा था। बालप्रसाद ने तीर चलाया, परन्तु वह महाराज के कन्धे को छूता हुआ निकल गया। अब अपनी विकराल खुली तलवार को लेकर महाराज बालप्रसाद की ओर झपटे। ठीक उसी वक्त बालप्रसाद के पीछे किसी ने एक छोटी-सी मृदंग बजाई, जिसे सुनकर उसका घोड़ा आगे बढ़ने के बदले वहीं नाचने लगा। महाराज भीमदेव ने गले में मृदंग लटकाकर घूमते हुए देवराज को पहचान लिया।

'देवराज! अबे, मृदंग बजाना बन्द कर; घोड़े को काबू में रखना है।' बालप्रसाद ने चीखकर कहा और अपने-आपको घोड़े की पीठ पर बनाये रखने के भगीरथ प्रयत्न में लग गया। परन्तु देवराज अधिकाधिक कूदने लगा था।

'अरे, ऐ दुष्ट!'

परन्तु देवराज सुनी-अनसुनी कर अपनी छोटी मृदंग बजाता जोर-शोर से घूमने लगा। घोड़ा भी रणक्षेत्र में उतना ही अधिक नाचने लगा। यहाँ तक कि बालप्रसाद के लिए निशाना साधना असम्भव हो गया।

इतने में तो मौका पाकर महाराज भीमदेव की यम-जिह्वा जैसी लम्बी तलवार के एक ही वार से घोड़ा कटकर नीचे गिर पड़ा। बालप्रसाद कूद पड़ा था, इसलिए बच गया। जैसे ही महाराज ने दूसरा वार करने के लिए तलवार उठाई, कृष्णराज बालप्रसाद और भीमदेव के बीच आ खड़ा हुआ।

'हट जाओ, कुमार!' महाराज भीमदेव की रणगर्जना सुनाई दी; परन्तु कृष्णराज वहाँ हाथ जोड़े निःशस्त्र खड़ा था। बालप्रसाद की तलवार छूटकर दूर जा गिरी थी। वह भूमि पर से झुककर तलवार ले उसके पहले ही देवराज ने उसे उठाकर दूर फेंक दिया।

'महाराज ! मैं इनकी ओर से क्षमा माँगता हूँ ।' कृष्णराज ने कहा—'बालप्रसाद ! आप किस लिए महाराज से भिड़ रहे हैं ? यह क्यों नहीं देखते कि आपका रक्षक ही विश्वासघाती हो गया है ? ऐसे मे आप भला किस तरह पार पा सकते हैं ?'

बालप्रसाद लज्जित हो गया । वह बड़ी कठिनाई से खड़ा हुआ और आगे आया । उसे निःशस्त्र देखकर महाराज भीमदेव ने भी तलवार फेंक दी । अब उस पर अपनी वज्र मुष्टि का प्रहार करने के लिए महाराज आगे बढ़े, परन्तु वह उस पर वार करते उसके पहले ही सिंहनाद और देवराज ने बालप्रसाद को दोनों ओर से घेरकर अपने वश में कर लिया। दामोदर उन्हें आज्ञा देता सुनाई पड़ा—'सिंहनाद ! नड्डूल के युवराज के योग्य सम्मान से ही इन्हें अपने साथ रखना होगा ।'

बालप्रसाद गिरफ्तार हो गया था । अब तक वह इसका निर्णय नहीं कर सका था कि इस प्रकार के अन्त के लिए किसे उत्तरदायी समझा जाये ! युद्ध का इतना स्पष्ट अन्त देखकर धंधूकराज भी दौड़े आये—'महाराज ! महाराज ! आपको तो अब क्षमा ही शोभा देती है । जो रणक्षेत्र में पड़े हैं, पहले उनकी सार-सँभाल कीजिये !'

महाराज भीमदेव ने थोड़ा रुककर चारों ओर नजर डाली । नड्डूल और सोलंकी के कितने ही सैनिक घायल पड़े थे । रणक्षेत्र में कोई भी नहीं था । नड्डूल के कई-एक सैनिक तो भाग निकले थे, और कुछेक नीचे पड़े थे । महाराज ने कहा—'दामोदर ! घायलों के लिए डोलियाँ मँगवाओ और सभी को अपनी छावनी में ले चलो । इस बालप्रसाद के भी घाव लगा है, सबसे पहले इसी की सार सँभाल करो । एक आदमी भेजो जल्दी से !'

दामोदर ने पुकारा—'देवराज ! तू ही चला जा ।'

बालप्रसाद ने यह सुना । वह मन-ही-मन देवराज पर बहुत क्रोधित हुआ ।

दामोदर इसे समझ गया—'बालप्रसादजी! आप तो पाटन के सम्बन्धी हैं। महाराज नड्डूल को अधिक नहीं सतायेंगे—परन्तु इस देवराज-जैसे तो असंख्य पाटन-निवासी अपनी जान हथेली पर लेकर पाटन का गौरव बढ़ा रहे हैं, इस बात की शायद आपको खबर नहीं होगी।'

'मंत्रीश्वर! जीत तो उन्मत्त हाथी को वश में करनेवाले उसी मृदंगी-नाद की हुई है। ऐसी सिद्धि आपके यहाँ है, इसका पता हमें नहीं था।'

'पहले इन घायलों को सँभालो, इस बात की जानकारी बाद में प्राप्त करना। सिंहनाद! तू बालप्रसाद को सँभालकर साथ ले ले। उन्हें धीरे-से घोड़े पर बिठाना। चोट तो जोर की नहीं न लगी है, बालप्रसाद?' भीमदेव ने सस्नेह पूछा।

बालप्रसाद को भीमदेव से सम्बन्धी-जैसी प्रीति तो थी ही। महाराज के इन शब्दों ने उसे गद्‌गद् कर दिया—'नहीं बड़े भैया! लगा तो नहीं, लेकिन गिरा जरूर हूँ।'

'अरे! आयुष! दामोदर! इस बालप्रसाद को अपने हाथी पर ले लो। चलो, मैं और धंधूकराज साथ ही चलेंगे। हमारे यहाँ अब एक के बदले दो राज-अतिथि हो गये हैं।'

२८. बालप्रसाद झुका

महाराज भीमदेव को पूरी जानकारी मिल गई थी। इसलिए कृष्ण-राज को आगे से अधिक कड़ी देखभाल में रखा गया। उसके ऊपर सशस्त्र सैनिकों का पहरा लगा दिया गया। यह सुनकर बालप्रसाद बहुत खिन्न हुआ। वह सूचना देकर दामोदर से मिलने आया। उसके ऊपर तो केवल निगरानी ही थी।

'मंत्रीश्वर! राजवंशियों की विजय अथवा पराजय तो होती ही रहती है। आज हमारी जीत हुई है तो कल आपकी जीत होगी। परन्तु राज-वंश के इतने अपमान से महाराज की अपकीर्ति होगी, और वैर का कारण पैदा हो जायेगा। कृष्णराज भी राजकुमार है। उसके लिए इतनी कड़ी कैद उचित नहीं!'

'आपको तो महाराज भीमदेव ने अपना छोटा भाई माना था। चौहान-राज अणहिल जीवन-भर पाटन के साथ लड़ते रहे हैं। अब वह तो वृद्ध हो गये। परन्तु ठेठ महाराज दुर्लभराज के समय से चले आ रहे पाटन और नड्डूल के आपसी सम्बन्धों को आप भी नहीं निबाहेंगे, इस बात को महा-राज जानते नहीं थे। आपके राज-पिता तो खैर उग्र स्वभाव के हैं; परन्तु आप भी किसी और के विरुद्ध नहीं—महाराज भीमदेव के विरुद्ध हुए! उन्होंने तो हमेशा आपके साथ बड़े भाई की तरह स्नेहपूर्वक बर्ताव किया है। और आप ही ने ऐसा काम किया! यह जानकर महाराज का हृदय टूक-टूक हो गया है। अब तो महाराज के मन को जीतना आपके ही हाथ में है। मैं भला क्या कर सकता हूँ? कहिये तो आपके साथ चला चलूँ!

'महाराज कृष्णराज को छोड़ेंगे ?'

'यह तो अब आपके ही हाथ में है। आप उनके छोटे भाई हैं और वह आपके बड़े भाई। मैं तो आपसे यही कहता हूँ कि विनम्रता से उनके हृदय को जीतिये।'

'यह भी करेंगे—परन्तु अगर महाराज तब भी न माने ?'

'न माने तो उसके लिए आपके मित्र ही जिम्मेवार हैं। महाराज ने कृष्णराज को अपना समझकर राजवंशी के योग्य सम्मान से रखा, उसका यह परिणाम हुआ। इसलिए अगर आपके वचन—भगवान सोमनाथ के दिव्यजल से शपथ लेकर कहें तभी मैं साथ आ सकता हूँ। और सुनिये, मैं आपसे एक गुप्त बात कहता हूँ। महाराज को सिन्ध जाने की जल्दी है....'

'यह बात तो उजागर है....'

'अपने पिता का राजकाज अब आप ही देखते हैं। आपके पिताजी तो लगभग निवृत्त ही हो गये हैं। इसलिए आप महाराज को वचन दीजिये कि जीवन-मरण के सभी अवसरों पर नड्डूल पाटन के साथ ही रहेगा।'

'दिया!'

'ऐसे नहीं—यह बड़ा गम्भीर प्रश्न है ..'

तभी आयुष अन्दर आया—'महाराज! दंडनायक आये हैं।'

दामोदर खड़ा हो गया—'आइये-आइये, विमलराज! बालप्रसाद को आपकी सलाह की आवश्यकता है।'

'मैं इसी लिए आया था, दामोदर! चौहानराज ने मेरे पास सन्देशा भेजा है। एक सोने की पालकी भी महाराज को भेंट देने के लिए भेजी है....'

चार आदमी उठाकर सोने की एक सुन्दर पालकी भीतर लाये। दामोदर ने उसकी नक्काशी को देखा—'क्या कहलवाया है चौहानराज ने ?'

'महाराज से यही विनती की है कि—दोनों कुमारों को इस ओर आने दिया जाये; और महाराज उनका अपराध क्षमा कर दें।'

'मैं भी यही कह रहा हूँ, विमलराज!' बालप्रसाद ने कहा।

'तो अब बाधा ही क्या है, दामोदर? हमे भी तो नडूल के साथ वैर नहीं बाँधना है।' विमल ने कहा।

'वैर बाँधना नहीं है, और भविष्य में कोई बाँध सके इसे भी असम्भव बना देना है। चलिये, महाराज को सूचना की जाये।'

सभी महाराज भीमदेव के पास पहुँचे। विमल ने महाराज को पालकी भेंट की—'महाराज! नडूल की वस्तु है!'

भीमदेव ने उसकी अनुपम नक्काशी को देखा—'दामोदर! तुम जिस कुशल कारीगरी के बारे में कह रहे थे, वह यही है क्या?'

'हाँ, महाराज! मालूम तो यही होता है।'

'महाराज! चौहानराज का सन्देशा है। कुमारों को मुक्त करने की प्रार्थना की है!' विमल ने कहा।

'किसके नाम? तुम्हारे नाम आया है?'

'हाँ, महाराज!'

'और मुक्त न हो सकें तो? यदि इसी लिए यह पालकी भेजी हो तो लौटा दो।' भीमदेव ने कहा।

'नहीं—महाराज! इसे तो चौहानराज ने महाराज को सादर भेंट किया है। चौहानराज वृद्ध हो गये हैं। बालप्रसाद के अभाव में राज-काज चल नहीं पा रहा होगा, मेरे खयाल में इसी लिए जल्दी की है। बाकी, महाराज ने तो यहाँ उनके आदर-मान में किसी तरह की कमी होने नहीं दी है। कुमार बालप्रसाद की भी अभिलाषा है...' दामोदर अत्यन्त विनय से बात की भूमिका बाँधने लगा।

'क्या इच्छा है?'

'उनकी अभिलाषा तो यही है कि कृष्णराज के राजसी गौरव को

महाराज खंडित न होने दें।'

'और उसे मुक्त कर दें—क्यों?'

'हाँ, महाराज!' दामोदर ने हाथ जोड़कर कहा।

'देख, दामोदर! कृष्णराज मुक्त नहीं होगा; बालप्रसाद भी मुक्त नहीं होगा, बालुकराय को बुला...'

दामोदर भीमदेव को पहचानता था। एक बार बिगड़ जाने पर बात का बनना मुश्किल था। वह और भी विनम्रता से बोला—'महाराज! बालप्रसाद कुछ पराये तो हैं नहीं कि उन्हें मुक्त करना पड़े? वह तो हमारे अतिथि ही हैं। परन्तु उन्हें कृष्णराज के लिए चिन्ता है। वृद्ध पिता धंधूकराज का भी दुःखित होना स्वाभाविक ही है। बालप्रसाद अब नड्डूल और पाटन को जुदा नहीं समझते हैं। वे हमारे साथ ही रहेंगे!'

'और जैसे ही तुमने पीठ फेरी कि....'

'नहीं-नहीं, महाराज! ऐसा नहीं होगा। क्यों कुमार? बोलते क्यों नहीं?'

'मैं क्या बोलूँ? अपराध स्वीकार करता हूँ, और क्या कह सकता हूँ। कृष्णराज मुझे प्राणाधिक प्रिय है। उसी के लिए मैं महाराज के चरण-स्पर्श करता हूँ।' बालप्रसाद ने महाराज भीमदेव के चरणों में सिर झुका दिया।*

'और महाराज! भगवान सोमनाथ के दिव्यजल से शपथ भी ले रहे हैं कि नड्डूल हमेशा ही पाटन के साथ रहेगा। हरेक अवसर पर पाटन का साथ देगा—जिस तरह धंधूकराज दे रहे हैं। फिर तो महाराज को कोई आपत्ति नहीं है?'

भीमदेव ने अपने पाँवों पर से बालप्रसाद का हाथ धीरे से हटाते

---

*जज्ञे भूभृत्तदनु तनयस्तस्य बालप्रसादो
भीमक्ष्माभृच्चरणयुगलीमर्दनव्याजतो यः। (सुधा का लेख)

हुए कहा—'वस, तो फिर मुझे कोई आपत्ति नहीं। मुझे भी अभी बहुत-से काम करने हैं। दंडनायक से कहो—वे दोनों कुमारों को सम्मानपूर्वक भेज देंगे!

इसी बीच सोमनाथ का दिव्यजल आ गया। इधर बालप्रसाद भगवान् के दिव्यजल से महाराज भीमदेव के समक्ष नड्डूल की मैत्री की प्रतिज्ञा ले रहा था, उधर कृष्णराज को बुलाने के लिए एक सेवक गया।

थोड़ी देर बाद दंडनायक के साथ दोनों कुमारों ने महाराज को प्रणाम करके विदा ली।

जब राजा और मंत्रीश्वर अकेले रह गये तो, भीमदेव ने कहा—'दामोदर! पूरी बात तो मालूम हो गई—परन्तु एक बात का पता अभी तक नहीं चल पाया!'

'कौन-सी बात, महाराज!'

'वहाँ इस तरह मृदंग बजाकर उन्मत्त हाथी को वश मे करनेवाला कौन निकल आया?'

'वह शिवालय पुराना है। सम्भवतः कोई नर्तकी वहाँ रहती हो।'

'अरे! जा रे! तू भी ऐसा ही है। वहाँ भला ऐसी कौन हो सकती है? कहीं चौला तो नहीं आई थी? सिंहनाद भी कुछ पता नहीं लगा सका। उसने खोज तो की, परन्तु कोई मिला नहीं!'

'तो फिर कोई अकस्मात् ही आ निकला होगा। मुझे भी पता नहीं चला। आज आयुग्र को पुनः खोज करने भेजूँगा। अवन्ती से भी सन्देशा आया है।'

'क्या है?'

'बालप्रसाद के वचन का उल्लंघन तो अणहिल चौहान नहीं ही करेंगे। अब अर्बुदपति—और नड्डूलपति को भी हमने अपने वश में कर लिया है। और यहाँ तक आ गये हैं तो चित्रकोट भी हो आना चाहिये।'

'हाँ, दामोदर! मेरी भी ऐसी ही इच्छा है। चलो, अवन्तीनाथ और

उनकी विद्वत्सभा को अपनी आँखों देख आयें।'

'समाचार तो यह है, महाराज ! कि कर्नाटक की दो सुन्दरियाँ आई हैं, और उन्होंने सम्पूर्ण विद्वत्सभा को चुनौती दी है।'

'निश्चय ही यह जयसिंह का काम होना चाहिये। मालूम होता है कि उसने मालवा के साथ धीरे-धीरे शत्रुता शुरू कर दी है। इसलिए हमको चाहिये कि अवन्ती को अपने वश में कर लें।'

'यह भी होगा, महाराज ! उन सुन्दरियों ने कहा है कि हम दीपक राग गाकर दीये जलायेंगी—आप उन्हें बुझाकर दिखाइये।'

'दामोदर ! देखना हाँ, कहीं किसी दिन ऐसी बातों में कोई पाटन की नाक न काट जाये। फिर अवन्तीनाथ ने क्या कहा?'

'इस अमावस्या को ही यह चुनौती स्वीकार की है!'

'स्वीकार कर ली?'

'हाँ!'

'तब तो उनके यहाँ कोई विख्यात संगीतज्ञ होना चाहिये। हम भी यदि इसी अवसर पर वहाँ पहुँच जायें, तो कैसा रहे?'

'मैं भी यही कहता हूँ, महाराज ! छद्मवेश धारण करना होगा!'

'जो दशा हमने कृष्णराज की है—कहीं वैसी ही हमारी हो गई, तो?'

'ऐसा तो नहीं होने पायेगा। मैं इस योजना पर विचार कर ही रहा हूँ। जब तिल-भर भी फर्क न रह जायेगा, तभी महाराज को खबर करूँगा। परन्तु महाराज ! उसके पहले 'हम सिन्ध जा रहे हैं' ऐसी घोषणा करके छावनी उठाना आरम्भ कर दीजिये। और ऐसा प्रबन्ध कीजिये कि पहला पड़ाव चन्द्रावती हो।'

'यह ठीक है—इससे किसी को शंका भी नहीं होगी!'

शाम को महाराज भीमदेव की छावनी में कोलाहल होने लगा। महाराज ने सिन्ध जाने की तैयारियाँ शुरू कर दी थीं। सैनिक और सरदार घूम-घूमकर नयी आज्ञा और नयी बातें मालूम कर रहे थे।

२९. चित्रकोट के पद्म-भवन में

महाराज भीमदेव के यहाँ से दामोदर सीधा चौला देवी के पास गया। दामोदर ने उसकी पट्टकुटी की रचना एक छोटी वाटिका में इस तरह से कारवाई थी कि आयुष और देवराज के सिवाय अभी तक अन्य किसी को इस स्थान के बारे में मालूम नहीं हो पाया था। दामोदर चौला के पास गया उस समय वह अर्धोन्मीलित नेत्रों से इस प्रकार शान्त बैठी थी मानो अपनी ही सुरम्य स्वरावली में तल्लीन हो।

'देवी! महाराज को भी शंका तो हुई है...' दामोदर प्रणाम करके बैठते हुए बोला।

'काहे की?'

'यही कि आपके सिवाय मृदंग का ऐसा घोष भला और कौन कर सकेगा।'

'अब तो आप लोग भी पाटन जा ही रहे हैं, इसलिए अच्छा यही रहेगा कि मैं महाराज का स्वागत करने के लिए पहले ही वहाँ पहुँच जाऊँ! नहीं तो महाराज मुझे यहीं पकड़ लेंगे।'

'महाराज तो इस ओर का काम पूरा करने के बाद ही यहाँ से चलेंगे।'

'और आज जो यह घोषणा हुई है कि महाराज की छावनी कल ही रवाना हो जायेगी—सिन्ध की ओर—सो उसका क्या मतलब हुआ?'

दामोदर ने चारों ओर एक नजर डालकर धीरे से कहा—'महाराज तो अवन्तीनाथ को देखने के लिए उधर चित्रकोट जानेवाले हैं, इसी लिए

यह घोषणा की गई है !'

'सच ? परन्तु आप लोगों ने अर्बुदपति को वश में किया यह खबर फैल चुकी है, नड्डूल के बालप्रसाद को इस प्रकार झुकना पड़ा, यह बात भी जग जाहिर हो गई है, कृष्णराज की बात भी उजागर है; ही ऐसे मे मालवराज के गुप्तचर प्रत्येक बात जानने के लिए आकाश-पाताल एक कर रहे होंगे—तब इस तरह की कार्रवाई क्या दुस्साहस नहीं है, मंत्रीश्वर ? ऐसा दुस्साहस पाटनपति करें—और वह भी बिना मतलब के करें—इसमे लाभ ही क्या है ?'

'बिलकुल निष्प्रयोजन तो नहीं ही है। अवन्तीनाथ की विद्वत्सभा मे मैं और महाराज दोनों जो आ रहे हैं, उसका एक हेतु यह भी है कि अब तक मालवराज की आन्तरिक इच्छा जानी नहीं जा सकी है। सिन्ध से युद्ध किये बिना गत्यन्तर नहीं। इसी लिए महाराज पाटन से दूर जायें तब मालवा किस तरह का बर्ताव करेगा—चेदि, तैलंग, कर्नाटक आदि के साथ उसके उलझ जाने की संभावना है या नहीं—यह मालूम कर लेना आवश्यक है।'

'और अगर आप लोग पकडे गये ? फिर पाटन का क्या होगा ?'

'आप छुड़वाने आइयेगा—आयेंगी न ?' दामोदर ने विनोदपूर्वक कहा और क्षण-भर के लिए विचारों में खो गया—'है तो दुस्साहस ही, परन्तु यदि पकडे नहीं गये और सफल हुए तब ?'

'तो क्या होगा ?'

'अवन्तीनाथ की विद्वत्सभा भारतवर्ष का सांस्कृतिक शृंगार है, देवी ! महाराज उसे देखकर प्रसन्न हुए और बात उनके मन मे समा गई तो अवन्तीनाथ के महान पराक्रम से स्पर्धा करने के लिए किसी दिन पाटन भी अपने आँगन में सरस्वती-कंठाभरण की यशोरेखा स्थापित करेगा। अवन्ती की उत्कृष्ट वेश्याओं को देखकर महाराज को भी भगवान सोमनाथ के मन्दिर की ऐसी ही रचना करने की प्रेरणा मिलेगी और वहाँ

भी नर्तकियाँ नृत्य करते हुए चन्द्रनाथ की चन्द्रिका कि भाँति शोभायमान हो उठेंगी। अपनी दृष्टि से देखूँ तो चेदि और कर्नाटक ने अवन्ती को जो चुनौती दी है, उसकी वास्तविक जानकारी भी वहीं से प्राप्त होगी। इतने समीप आ गये हैं, तो यह काम भी कर ही लेना चाहिये। अवन्तीनाथ की विद्वत्सभा को देखने की महाराज की भी बहुत दिनों से आकांक्षा है। हमारी सेना तो सिन्ध की ओर रवाना हो ही रही है। फिर कौन जानता है, वहाँ जाने पर संभवतः महाराज को अवन्तीनाथ के साथ द्वन्द्व-युद्ध करने का सुयोग ही मिल जाये। यदि ऐसा हुआ तो पाटन के महाराज के युद्ध-कौशल की कीर्ति-कलंगी में एक मयूर-पिच्छ की और शोभा वृद्धि होगी।'

'मंत्रीश्वर! क्या आप भी गाथाएँ रचते हैं?'

'पहले कभी रचता था। परन्तु अब तो किसी की गाथा में प्रसन्न हो लेता हूँ।'

'मेरा भी मन कभी तो होता है और कभी आगा-पीछा करता है कि मैं भी वहाँ क्यों न चली चलूँ! सुना है कि वह विद्वत्सभा देखने योग्य है।'

'देवी, एक बात है, और वह आपको प्रिय भी लगेगी। कुन्तल देश की दो सुन्दरियों ने अवन्तीनाथ की विद्वत्सभा को चुनौती दी है।'

'क्या?'

'हम दीपक राग गाकर दीये जलायेंगी; आप भी या तो जलाइये या बुझाइये।'

'ओ ...हो! तो अवन्तीनाथ की निद्वत्सभा ने चुनौती स्वीकार कर ली है?' चौला ने उल्लासपूर्वक पूछा।

'स्वीकार न करें तो अपकीर्ति हो और स्वीकार कर लें तो पराजय हो। आगामी अमावस्या के दिन वे दोनों सुन्दरियाँ प्रत्युत्तर प्राप्त करने के लिए चित्रकोट आ रही हैं!'

'तब तो मैं भी चलूँगी! मैं प्रकट नहीं होऊँगी!' चौला बोल उठी।

'देवी, यदि आपको जाना ही हो तो आज ही आधी रात के समय देवराज के साथ रवाना हो जाइये। दो दिनों के बाद तो यहाँ इस छावनी का नामोनिशान भी नहीं रह जायेगा। देवराज वहाँ की चप्पा चप्पा भूमि से परिचित है, परन्तु ध्यान रखियेगा, वहाँ कोई संकट न आ पड़े। आपको तो कोई पहचानता नहीं है, और देवराज छिपकर रहने में कुशल है ही।'

'आप लोग कब आयेंगे ?'

'हमने एक योजना बनाई है। महाराज तो ताम्बूलवाहक हैं और मैं काश्मीर के पापसूदन कुंड का अवन्तीनाथ का जलवाहक हूँ ! उन दोनों को हमने मिला लिया है। कार्तिक स्वामी भी वहीं है !'

'अच्छा !'

चौला कुछ सोचने लगी—'मंत्रीश्वर, कहीं यह तो नहीं कहा जायेगा कि मैं वहाँ जाकर महाराज की प्रतिष्ठा को भंग कर रही हूँ !'

'जब कि आप स्वयं ही अपनी प्रतिष्ठा और गौरव को नये ढंग से स्थापित कर रही हों, और जबकि आपकी प्रतिष्ठा और गौरव के नाप-दण्ड भी सभी से निराले हों तब भला यह कौन कह सकेगा कि आपने प्रतिष्ठा भंग की ? परन्तु इतना अवश्य कीजियेगा कि वहाँ से तुरन्त ही देवराज के साथ रवाना होकर महाराज का स्वागत करने के लिए सीधे पाटन पहुँच जाइयेगा। हम तो चन्द्रावती होते हुए लौटेंगे।'

'और सेना ? तथा सरदारगण ?'

'उनमें से कुछ तो मरुभूमि की राह और कुछ पाटन मुकाम करके वहाँ से दूसरे दिन वर्द्धिपंथक की राह सिन्ध की ओर जायेंगे।'

चौला देवी उसी रात देवराज के साथ चित्रकोट जाने के लिए रवाना हो गई। पूर्व निश्चयानुसार दामोदर और भीमदेव भी उसी मार्ग पर चल दिये। जब दोनों आडावला में स्थित अवन्तीनाथ के पद्म-भवन में पहुँचे तो लगभग सन्ध्या हो रही थी। महाराज भीमदेव तो रास्ते-भर

ऋतुराज की अनुपम वाटिकाएँ ही देखते आये थे; परन्तु जब उन्होंने पद्म-भवन के सीमावर्ती प्रदेश में प्रवेश किया तो ऐसा लगने लगा मानो सदेह ही स्वर्ग-भूमि में चल रहे हों। रास्ते पर जगह-जगह मीठे पानी के अनेक छोटे-बडे झरने आड़े-टेढ़े कल-कल छल-छल करते हुए झर रहे थे; स्थान-स्थान पर छोटे-छोटे नैसर्गिक कुंज-निकुंज पास-पड़ोस की पहाड़ियों पर फैले हुए थे, यहाँ-वहाँ सुन्दर ढंग से लगाई हुई वाटिकाएँ दिख रही थीं। सभी मार्गों पर लता मंडप शोभायमान हो रहे थे, यत्र-तत्र वृक्ष की शाखाओं में सुन्दर हिंडोले पड़े हुए थे; निर्भय होकर अनेक हिरन इधर-उधर विचर रहे थे, केका-ध्वनि से समस्त वन-प्रदेश को गुंजारित करते हुए मयूर नाच रहे थे; जाने कहीं छिपी हुई गिरि-कोकिला अपने मधुर स्वर से समस्त वन को भरती हुई कूक रही थी; और उसकी कूक को भी लज्जित करनेवाली कोई मधुर-ध्वनि दूर की किसी पहाड़ी पर की छोटी वाटिका में से तरंगित होती हुई मुसाफिरों को मुग्ध कर रही थी।

इतना सुन्दर दृश्य देखकर महाराज ने दामोदर से पूछा—'दामोदर! क्या यही भोजराज का पद्म-भवन है?'

'महाराज! अभी तो हम भोजराज के पद्म-भवन के बाहर की वाटिकाएँ ही देख रहे हैं।'

'और पद्म-भवन? वह कहाँ है? और कैसा है?'

'कहाँ है यह तो अभी मालूम हो जायेगा; और कैसा है सो तो देखने पर ही पता चलेगा। महाराज! यह जो आप देख रहे हैं, यह तो पद्म-भवन की तुलना में पासंग भी नहीं है।'

'दामोदर! क्या हमारे पाटन मे ऐसा नहीं हो सकता? हमारे वहाँ तो दुर्लभ सरोवर है....'

'महाराज! हमारा सौभाग्य है कि भोजराज के इस पद्म-भवन में कोई गुप्तचर, सैनिक या रक्षक नहीं रखे जाते। यहाँ तो स्वप्न-दर्शी कवि, शिल्पी, सुन्दरियाँ, विद्यापति, चित्रकार नृत्यकार और देश-विदेश के

पण्डित ही प्रवेश कर सकते हैं। इसलिए आपने जो पाटन का नाम लिया, उसे किसी ने सुना नहीं; परन्तु महाराज! हमे यह भूलना नहीं चाहिये कि हम दुश्मन की धरती पर हैं। हमे अपना छद्म-वेष पूरी तरह निबाहना है। और अभी तक हमने जो देखा वह आगे जो देखेंगे उसकी तुलना में कुछ भी नहीं है।'

'तू कहता है—यह कुछ भी नहीं है?' भीमदेव को बड़ा आश्चर्य हुआ।

'हाँ। पद्म-भवन देखकर आप भी यही कहेंगे। ये तो पद्म-भवन की ओर जानेवाली सामान्य वाटिकाएँ ही हैं।'

इतने में हरियाली से ढकी हुई अनेक छोटी-छोटी पहाड़ियों के मध्य मनोहर रस-वाटिका के समान, अनेक शिखरों से शोभायमान एक छोटी सुन्दर नगरी-जैसी एक अति रमणीक जगह महाराज भीमदेव को दिखाई दी। गरुड़ और साँप की आकृतिवाली अनेक ध्वजाएँ वहाँ फहरा रही थीं। वह स्थान पहाड़ियों के बीच इस प्रकार अवस्थित था मानो उनकी गोद में बैठा हो; मानो किसी ने उसका निर्माण नहीं किया, वह पर्वतों की गोद से आप ही जन्मा हो!

'वह जो अत्यन्त मनोहर स्थल दिख रहा है, वह क्या है, दामोदर?'

'महाराज! वही भोजराज का पद्म-भवन है।'

'ओ-हो-हो! दामोदर! ऐसा लगता है मानो यह तो अलकानगरी की अति सुन्दर, स्फटिक प्रत्याकृति ही हो।'

'महाराज! इस भूमि का प्रताप ही ऐसा है, कि जो यहाँ आता है वही कवि बन जाता है!'

'कैसे?'

'देखिये न, आपने भी अलंकारों और उपमाओं में बोलना प्रारम्भ कर दिया है।'

'परन्तु यह तो अनुपम है। तू मुझे यह पद्म-भवन दिखाने लाया

है—तो....'

'मैं नहीं लाया। आप ही ने तो मुझसे कहा था कि एक बार मुझे महाराज भोजराज को—जब वह अपने विद्या-मन्दिर में हों, देखना है!'

'परन्तु जब तू मुझे ले ही आया है तो मैं तुझसे कह ही दूँ...'

'क्या महाराज?' दामोदर भीमदेव के शब्द सुनकर चौंक उठा। वह डरने लगा कि कहीं यह अपने-आपको प्रकट करके परिस्थिति को उलझन-भरा न बना दें।

'हम्मुक भले ही भाड़ में जाये, गर्जनकवासी भले ही पंजाब को रौंदें, चेदि का कर्णराज भले ही हम लोगों का निरादर करे...'

दामोदर चकित होकर सुनता रहा। उसे राजा की मनोवृत्ति का यह परिवर्तन अत्यन्त आश्चर्यजनक प्रतीत हुआ। उसे पछतावा भी होने लगा कि वह इस रणबाँकुरे राजा को यह सुन्दर और मनोरम प्रदेश दिखाने क्यों ले आया। अभी वह कोई उपाय सोच भी नहीं पाया था कि भीमदेव बोल उठे—

'ये सभी जो चाहें करें, मुझे तो अपने पाटन को अलकानगरी की टक्कर का बना देना है। वहाँ सतमंजिले प्रासाद बनवाने हैं, सरस्वती का बहाव घुमाकर एक विशाल सरोवर की रचना करनी है और उसमें काश्मीर के कमल खिलाने हैं....'

'हाँ, महाराज!'

'और दामोदर! जगह-जगह चन्दन के वृक्ष लगवाने हैं—और पाटन के नागरिक....'

'जब नौका-विहार कर रहे हों, उस समय गर्जनक चढ़ आयें....'

महाराज भीमदेव हठात् कल्पना के लोक से वास्तविक जगत् में आ गये—'दामोदर, तू सचमुच बड़ा ही भयंकर है!'

'आपसे भी अधिक?' मंत्री ने मित्र की भाँति राजा से विनोद किया।

'और नहीं तो क्या? मैं कहाँ था—और तू मुझे कहाँ ले आया?'

'महाराज! आपको यह पद्म-भवन देखना था, इसी लिए मैं आपको यहाँ ले आया। परन्तु पद्म-भवन के स्वामी को जीते बिना आप पद्म-भवन की बातें न करें, तभी हम आगे बढ़ेंगे। नहीं तो महाराज, यहाँ से आगे बढ़ते ही इतना सुन्दर दृश्य देखने को मिलेगा कि विश्वकर्मा भी चकित रह जाये। उसे देखकर, महाराज, यदि आप कुछ कर बैठे तो पद्म-भवन तो मिलेगा नहीं, और पाटन भी हाथ से निकल जायेगा!'

अपने मित्र-जैसे मंत्री की बात सुन और समझकर राजा बोले—'ठीक है, भाई! अच्छा, चल। यहाँ अब तू कहेगा उतना ही बोलूँगा।'

'यहाँ आप पाटनपति नहीं हैं, और मैं मंत्री नहीं हूँ। मैं तो पापसूदन कुंड का जलवाहक हूँ।'

'हुँ, बिलकुल ठीक है, चलो, आगे बढ़ो!'

राजा और मंत्री अनेक वाटिकाएँ पार करते हुए आगे बढ़े। चलते-चलते दोनों पद्म-भवन के मुख्य द्वार पर आ पहुँचे।

जैसे ही उन्होंने द्वार में प्रवेश किया दोनों ओर से संगमरमर की प्रतिमाओं-जैसी दो सुन्दरियों ने नतमस्तक हो उन पर स्वर्ण-पात्रों से सुगन्धित जल का छिटकाव किया। रंगीन संगमरमर के रास्ते पर आगे बढ़ते ही एक ओर को झुकी हुई पारिजात की शाखा से उन पर पुष्प-वृष्टि हुई। दामोदर ने महाराज भीमदेव को आश्चर्य-चकित होते देखकर कान में कहा—'महाराज! यह सम्मान यहाँ प्रवेश करनेवाले प्रत्येक कवि-पंडित को मिलता है। मुझे मिला इसका कारण यह है कि मैं इस पवित्र जल का वाहक हूँ। परन्तु अब याद रखियेगा कि मैं केवल एक जलवाहक हूँ, और आप केवल ताम्बूलवाहक हैं। याद रखियेगा, भूलियेगा नहीं। यह है आपकी पान की टोकरी। नहीं तो महाराज! पद्म-भवन मिलेगा नहीं, पाटन भी चला जायेगा और बेचारे दामोदर को आपको यहाँ लाने का दंड भुगतने के लिए विन्ध्याचल में भटक-भटककर प्राण त्यागना पड़ेंगे।

महाराज भीमदेव ने आँखों से संकेत कर आगे बढ़ने के लिए कहा।

'क्या यह पारिजात बारहों महीने खिलता है?' मोहक मादक सुगन्ध से अंग-उपागों में एक प्रकार की स्फूर्ति का अनुभव करते हुए भीमदेव ने दोनों ओर दृष्टि डालकर पूछा।

दामोदर ने कहा—'यह तो चन्दन-वीथिका है। दोनों ओर जो खड़े है वे चन्दन के वृक्ष हैं। इनके ऊपर चढ़ाई हुई नागरवेल में से महाराज भोजराज की ताम्बूलवाहिनी बढ़िया पान ढूँढ़ रही है। देखिये '

भीमदेव ने उस ओर दृष्टि की तो देखा कि एक दासी पान की आकृति-वाले सुन्दर रत्न-जटित स्वर्ण-पात्र में पान सजा रही थी।

थोड़ी दूर जाने पर मानो राजहंस की ध्वनि से गुंजायमान एक छोटा सुन्दर तालाब दिखाई दिया। उसमें अनेक कमल मुँद रहे थे और कुमुदिनियाँ खिल रही थीं। पर्वतों में से आता हुआ पानी का गुप्त निर्झर सोने के घुँघरुओंवाले एक स्फटिक स्तम्भ के ऊपर से होकर कुंड में गिर रहा था जिससे वह तालाब राजहंसों की ध्वनि से गुंजारित होता हुआ जान पड़ता था। आगे चलने के बाद वे पहाड़ियाँ आई जिनकी गोद में पद्म-भवन अवस्थित था। वहाँ जाने के लिए लाल रंग के संगमरमर की सुन्दर सीढ़ियाँ शोभा पा रही थीं। प्रत्येक सीढ़ी के दोनों ओर फूलों से लदे हुए पौधे थे। प्रत्येक पौधे पर खिले हुए फूलों के रंग एक दूसरे से भिन्न थे; और वे इन्द्रधनुष की छटा दिखा रहे थे।

पौधों के पासवाले सुन्दर स्फटिक जलकुंड के ऊपर स्वर्ण दीपिका में सुगन्धित तेल के रत्न-जटित पात्र रखे हुए थे।

भीमदेव और दामोदर पद्म-भवन की सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। अभी तक मार्ग में उन्होंने जो कुछ देखा था उससे यहाँ का दृश्य बिलकुल ही निराला था।

अब तब उन्हें कोई भी मनुष्य नहीं दिखाई दिया था। एकाकिनी प्रकृति ही मानो आकाश के दर्पण में अपना नैसर्गिक रूप निहारती हुई

पृथ्वी पर सोई पड़ी थी। परन्तु यहाँ प्रकृति गौण हो गई थी, और मानव-समूह प्रमुख हो उठा था।

दामोदर और भीमदेव दोनों ही सीढ़ियाँ चढ़कर एक विशाल चौकोर मैदान मे प्रविष्ट हुए। इस मैदान के चारों ओर हरियाली से ढकी हुई छोटी-छोटी कृत्रिम टेकरियाँ थीं। प्रत्येक टेकरी के ऊपर स्फटिक की एक छोटी सुन्दर छतरी बनी हुई थीं। छतरी के शिखर पर लाल पत्थर से उत्कीर्ण नृत्य करता हुआ एक मयूर खड़ा था। मयूर की कलंगी के स्थान पर शंख की आकृतिवाला, सुगन्धित तेल से भरा हुआ, एक दीया रखा था। सभा के स्थान को अभी तक खाली देख दामोदर एक ओर चलकर वहाँ खडा हो गया जहाँ हमेशा वह जलवाहक खड़ा रहता था। उसके पास ही महाराज भीमदेव भी ताम्बूलवाहक के रूप में सिर पर पान की टोकरी रखकर खडे हो गये।

अभी वे दोनों अपने स्थान पर खडे हुए ही थे कि चारों ओर से सभासदगण आने लगे। दामोदर ने महाराज भीमदेव को आँखों के इशारे से इस बात की सूचना दी। मंडप के चारों ओर से धीमे-धीमे सोने के नूपुरों की झनकार सुनाई पड़ने लगी। एक के बाद एक अनुपम लावण्यवती सुन्दरियाँ आने लगीं, और महाराज भीमदेव जहाँ खडे थे उस कोने से थोड़ी दूर सभा-मंडप में अनुक्रम से अपना स्थान ग्रहण करती चली गईं। प्रत्येक ने रेशमी वस्त्र धारण किये थे और प्रत्येक के गले मे मोतियों की माला शोभा पा रही थी। उनके केश-कलाप में खोंसे हुए राजचम्पा के परिमल से सारा सभा-मंडप गमगमा उठा था। वे स्वर्ग-लोक की अप्सराओं की भाँति वहाँ खड़ी थीं। इतने में एक टेकरी की छतरी में से शंख-ध्वनि हुई। उस शंख-ध्वनि को सुनकर सभामंडप में चारों ओर खड़ी हुई सुन्दरियों ने अपने-अपने दाहिने हाथ फैला दिये। महाराज भीमदेव ने अत्यधिक आश्चर्य-चकित होकर देखा कि प्रत्येक सुन्दरी की फैली हुई हथेली पर लंका की मोटी सोना-रूपा सीपियों में से काटकर

बनाई हुई शख की आकृतिवाली छोटी-छोटी सुन्दर प्यालियाँ शोभा पा रही थीं। अभी वह उनकी उपयोगिता के बारे में अटकलें लगा ही रहे थे कि स्फटिक-मणि के पात्र मे से उन कटोरियों में सुगन्धित तेल पूरती हुई एक नारी सभा-मंडप मे घूमने लगी।

महाराज ने दामोदर की ओर देखा। दामोदर ने धीरे से कहा—'महाराज! यह दृश्य तो बड़ा ही विचित्र है। क्या है इसका पता अभी थोड़ी देर मे लग जायेगा।'

तभी दामोदर की ओर देखती हुई महाराज की दृष्टि अपने सामने के दृश्य पर स्थिर हो गई।

महाराज भोजदेव के सिंहासन के सामने एक अनुपम लावण्यवती युवती आकर खड़ी हो गई थी।

'यह कौन है?' भीमदेव ने आँख के इशारे से पूछा।

दामोदर ने धीरे से कहा—'यही कुन्तल देश की सुन्दरी मालूम पड़ती है।'

'वही तो नहीं, जिसने चुनौती दी है!'

'हाँ।' दामोदर ने और भी मन्द स्वर से उत्तर दिया।

महाराज भीमदेव उस अनुपम लावण्यवती, अप्सरा-जैसी सुन्दरी को देखते रह गये। यह बतलाना बड़ा ही मुश्किल था कि वह सुन्दरी उस स्थान से अधिक सुन्दर थी या वह स्थान उस सुन्दरी की अपेक्षा अधिक सुन्दर था। अन्त में दामोदर की चेतावनी के उपरान्त भी भीमदेव से बोले बिना नहीं रहा गया—'दामोदर! यह तो मुझे किसी ऐन्द्रजालिक स्वप्न की तरह लग रहा है।'

दामोदर के जवाब देने के पहले ही कुन्तल की उस सुन्दरी ने वातावरण को प्राण-पूरित करते हुए अद्भुत स्वर में गाना शुरू किया।

समस्त वातावरण मन्त्राहत की भाँति शान्त और स्थिर हो गया।

एक क्षण बीतते न-बीतते तो नर्तकी ने अपने स्वर के आरोह-अवरोह

से सभी को वशीभूत कर लिया।

दामोदर और भीमदेव सुनते रहे।

सभा-मंडप की सुन्दरियाँ नतमस्तक, दाहिना हाथ फैलाये हथेली पर दीपक धरे शान्त और स्थिर खड़ी थीं।

नर्तिका के सुरम्य कण्ठ-स्वर की दौड़ और तान-पलटे क्षिप्रतर होते गये। थोड़ी देर के बाद सभी सुननेवालों को ऐसा अनुभव हुआ मानो उनके श्वासोच्छ्वास में कुछ प्रविष्ट हो रहा है। भीमदेव ने दामोदर की ओर देखा। दामोदर ने शान्तिपूर्वक कहा—'महाराज! यह तो दीपक राग है।'

उस सुन्दरी की रागिनी के स्वर ज्यों-ज्यों मन्द्र से तीव्र और तीव्र से पंचम पर पहुँचते गये, वे शान्त और स्थिर खड़ी हुई सुन्दरियाँ कुछ अस्वस्थ होने लगीं। दामोदर को ऐसा लगने लगा मानो उसका शरीर तप्त हो रहा है। महाराज भीमदेव के सिर पर रखी हुई टोकरी थोड़ी-सी हिली। यह देखकर दामोदर ने कहा—'महाराज! इसे सँभालिये, और चारों ओर जरा चौकस होकर देखिये।'

महाराज भीमदेव ने चारों ओर दृष्टि डाली। टेकरी के ऊपर की छतरी पर नृत्य-भंगिमा में खड़े मयूर की कलंगी में एक दीया जल उठा था। भीमदेव आश्चर्य-चकित होकर उस ओर देखते ही रह गये। इस बीच तो शिखरों के ऊपर एक के बाद एक दीये जलने लगे। वे जिन सीढ़ियों पर होकर यहाँ आये थे, उधर भी भीमदेव की नजर गई। सीढ़ियों के किनारे की स्वर्ण-दीपिकाएँ भी एक के बाद एक प्रज्वलित होती जा रही थीं। अब उन्होंने अपने पास-पड़ोस में देखा तो पार्श्व में खड़ी सुन्दरी के दाहिने हाथ के दीये की ज्योति जग रही थी। उसके बाद दूसरी और तीसरी सुन्दरी के हाथ के दीये जल उठे। महाराज ने नजर घुमाकर देखा। किसी अलक्षित जादू-भरी प्रकाश किरण के स्पर्श से दीये जल रहे हों इस तरह एक के बाद एक दीया जलता चला जा रहा था। देखते ही देखते

समस्त सभा-स्थान जगमगाते दीयों के प्रकाश में मानो स्नान कर उठा।

भीमदेव महाराज तो आश्चर्य के अतिरेक से विमूढ़ ही हो गये। सभा-स्थान में चतुर्दिक खड़ी हुई सुन्दरियों के हाथ मे सुगन्धित तेल के दीये प्रज्वलित होकर उनके चेहरों को अनिर्वचनीय शोभा प्रदान कर रहे थे। अकस्मात् शंख बजने लगा और सभी सुन्दरियों के मस्तक झुक गये। पीछेवाली पहाड़ी की स्फटिक पगडंडी पर स्वयं महाराज अवन्तीनाथ आते हुए दिखाई दिये।

३०. अवन्तीनाथ की विद्वत्सभा

भोजराज मालवपति के उपयुक्त गौरव से चले आ रहे थे। भारतीय संस्कृति के उत्तमोत्तम अंग मानो उनमें मूर्तिमान हो गये हों, इस प्रकार उनके शरीर, मन और आत्मा के बीच एक प्रकार का ससंजस्य दृष्टिगोचर हो रहा था। भोजराज को आते हुए देखकर वह वारागना सिंहासन के समीप से हटकर पीछे के हिस्से में अदृश्य हो गई।

भीमदेव भोजराज को आता हुआ देख रहे थे। उन्हें देखकर भीमदेव को ऐसा लगा कि यहाँ आने का अवसर मानो जीवन का एक अनमोल प्रसंग ही है। भोजराज चेहरा प्रतापी और की दृष्टि को वरबस आकर्षित करनेवाला था। अन्ति सरस, सुन्दर, सुरेख, नन्हें और पतले लाल ओठों के ऊपर उठी हुई, रुपहली गरुड़-जैसी सुघड़ नासिका बिजली की रेखा की तरह शोभायमान हो रही थी। छरहरा होते हुए भी अधिक लम्बा न दीखनेवाला, उनका शरीर चपल और अग्नि की समर्थ रेखा-जैसा तेजोपूर्ण था। उनकी दृष्टि जिस ओर भी जाती उस ओर की अतल गहराई में छिपे हुए काव्य-सौन्दर्य का मानो आविष्कार करती हुई प्रतीत होती थी। उनके कण्ठ में पड़ी हुई मौक्तिक माला जितनी सुन्दर लग रही थी कमर में लटकती हुई तलवार भी उतनी ही सुन्दर लगती थी और हाथ में ल हुई भूर्जपत्र की पुस्तिका भी उतनी ही सुन्दर मालूम पड़ती थी। उन्हें देखने के साथ ही किसी सुन्दर स्वप्न की स्मृति जाग्रत हो जाती, अधिक परिचय होने पर स्वप्न में देखी तेजस्विता प्रत्यक्ष होती हुई जान पड़ती और अन्त में किसी सुशोभन रसिकदेव-जैसे वीरपुरुष की छाप हृदय-

पटल पर दृढ़ता से अंकित हो जाती थी। कितने ही मनुष्य भूमि पर रहते हुए भी भू-लोक के नहीं हो पाते—उनकी दृष्टि नभोमण्डल के उडुगनों मे ही विचरण करती रहती है। अवन्तीनाथ को देखकर ऐसा ही लगता था, मानो अनन्त आकाश मे विहार करनेवाला कोई पृथ्वी पर आ गया हो। भीमदेव उन्हे आते हुए देख रहे थे, तभी दामोदर ने धीरे से कहा—'महाराज! देखा आपने! अवन्तीनाथ के सान्निध्य मे आदमी की कल्पना प्रखर हो जाती है यह सत्य प्रतीत होता है न? आपको इनमें रूप अधिक दिखाई देता है, या रसिकता?'

'रसिक तो हैं ही, दामोदर! परन्तु जो समझ मे न आ सके ऐसे एक आकर्षण का भी अनुभव क्या तुझे नहीं होता?'

'महाराज! यों तो भारतवर्ष का रहा-सहा महत्त्व इन्हीं के कारण है। साथ ही इनके स्वरूप में इतनी मोहकता भी है कि क्षण-भर के लिए सब-कुछ भूल-भालकर केवल इनके समीप रहकर काव्यमय जीवन बिताने की इच्छा हो आती है। ऐसे शत्रु की शत्रुता मे भी एक प्रकार के गौरव का अनुभव होता है। इसलिए इनकी आकर्षकता को तो मानना ही होगा।' फिर यह देखकर कि किसी का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो रहा है वे दोनों एकदम चुप हो गये।

भोजराज ने धीर गम्भीर चाल से चलते हुए विद्वत्सभा मे प्रवेश किया। उनके सिंहासन पर स्थान ग्रहण करते ही विद्वत्मंडली का आगमन शुरू हुआ। वे सभी आ-आकर अपने-अपने स्थानों पर बैठने लगे। सबसे पहले आये वयोवृद्ध कवि धनपाल—एक सुकोमल सुन्दरी के कन्धे पर हाथ रखकर सहारा लेते और पाईयलच्छी के शब्दों का चिन्तन करते हुए। उनके निकट निखिल विश्व शब्दों के सागर-जैसा था। अपनी शब्द-सृष्टि में निमग्न वह बैठ गये। सहज भाव से सिर झुकाकर मधुर मुस्कान करती हुई वह अवन्ती-सुन्दरी भी उनके समीप ही बैठ गई। फिर आये कविराज परिमल। उनके आते ही कमल की मन्द सुगन्ध प्रसारित करने-

वाले मिट्टी के इत्र से सारा सभा-मंडप महक उठा। महाराज मुंज की स्मृति अभी भी उन्हें खिन्न किये रहती थी। मानो अब भी वाग्पतिराज के समय की अवन्ती के सपने देख रहे हों इस प्रकार वह अपने स्वप्नों में आप ही खोये हुए थे। अभी कविराज परिमल बैठ भी नहीं पाये थे कि पंडिता सीता आईं। भोजराज की विद्वत्सभा में प्रशान्त मधुर जीवन की रेखा के समान वह शोभायमान हो रही थीं। अपनी ही मनोरम कल्पना में मग्न शिल्पकार मंथल आया और इस तरह बैठ गया मानो किसी अतीन्द्रिय लोक में दृष्टि गड़ाये सरस्वती के नूपुरों की झनकार सुन रहा हो। सरस्वती की अभंग प्रतिमा का निर्माण करके उसने सबके लिए स्वर्गोपम सन्तोष की परन्तु स्वयं अपने लिए तो चरम असन्तोष की ही उपलब्धि की थी। तत्पश्चात् वसन्ताचार्य आये। महाकवि कालिदास के नामधारी कवि कालिदास आये—अपने मानस-सरोवर में नल और दमयन्ती की कल्पना करते हुए, राजहंस को आकाश में उड़ाते हुए और रामायण के पात्रों की मनोलोक में सृष्टि करते हुए। विद्यापति भास्कर भट्ट आये—आर्यावर्त को संस्कृत भाषा की मनोरम पदावली से आच्छादित करने की महत्त्वाकांक्षा से भरे हुए और अनेक शिष्यों को एक साथ पाठ करने में सुगमता हो सके, इस तरह की कृष्ण-शिलाओं पर श्लोक खोदने की लेखन शैली के विषय में विचार करते हुए। मंडप दुर्ग* विद्यालय के अध्यक्ष गोविन्द भट्ट आये। परिमल से वातावरण को सुगन्धित करती, मोहक-गति से आकाश को कविता का रूप देती बदलियों-जैसी नर्तकियाँ आईं। इन्द्रधनुष के रंगों में सब-कुछ रँगती हुई-सी, और जीवन को आवेश और उल्लास भरा आनन्द और रस-भरा बनाती हुई वारांगनाएँ आईं। सुरम्य स्वरावली के सौन्दर्य से सोये स्वप्नों को जगाते और निद्राधीनों को सपने लुटाते हुए संगीतज्ञ आये।

---

* मॉडू

ऐसा लग रहा था मानो कल्पना के शिल्पी कलाकारों की एक अनोखी सृष्टि ही वहाँ निर्मित हो गई हो।

अन्यान्य समादृत गुणीजन आये। आप्तजन आये। उत्कृष्ट गाथाओं की सुन्दर शब्दावलियों-जैसी राजरानियाँ आईं, जो मद से उन्मत्त और मनोज के कुसुमरज से भी अधिक रसीली थीं।

दामोदर ने चारों ओर देखा तो उसे एक ओर उव्वट भी खड़ा दिखाई दिया; उसी के समीप उसको सहायता करनेवाले दास के वेष में खड़े देवराज को भी उसने देखा।

दामोदर ने धीरे से भीमदेव से कहा—'उस वृद्ध पुरुष को देखा ? वह अपने गुजरात के आनन्दपुर का है*—कर्मकांडी है। यहाँ आकर महाराज अवन्तीनाथ के आश्रय में बस गया है।'

'हमारे यहाँ किसी ने आश्रय नहीं दिया ?'

दामोदर के उत्तर देने के पहले ही सोने के नूपुरों की मन्द, मधुर झनकार सुनाई दी—ठक्-ठक् बजती हुई नहीं, बल्कि शान्ति से बहते हुए झरने की गति की भाँति प्रवहमान। कुन्तल देश की दोनों वारांगनाएँ निर्भयतापूर्वक आती हुई दिखाई दीं। दामोदर ने भीमदेव का हाथ धीरे से दबाया—'यही दोनों हैं!'

महाराज अवन्तीनाथ को प्रणाम करके दोनों वारांगनाएँ वहाँ खड़ी हो गईं। अपने रूप से उन्होंने अनेक सभाजनों को लुभाया, यहाँ तक कि अवन्ती की अनेक नर्तकियाँ भी उनके सौन्दर्य को निर्निमेष दृष्टि से देखती रह गईं।

क्षण-भर के लिए सर्वत्र मौन छा गया। एक वारांगना ने सिर नवाकर कहा—'महाराज अवन्तीनाथ ! हम कुन्तल देश से आई हैं। हमने अनेक विद्वत्सभाएँ देखी हैं। मेदपाट, चेदि, साँभर, अंग, बंग आदि

* के० ह० ध्रुव के एक लेख के आधार पर

देश देखती हुई हम वहाँ आई हैं। हमारी चुनौती प्रत्येक प्रतिस्पर्द्धा में विजयी होती रही है।'

'चेदि देश की पंडित सभा देखी?' भोजराज ने पूछा।

'हाँ, महाराज! चेदिनाथ के भी दर्शन किये। हमारी चुनौती को पहले उन्होंने स्वीकार किया, फिर आदर दिया; और अन्त मे विजय-लेख द्वारा सम्मानित किया।'

दामोदर और भीमदेव सुनते रहे।

'महाराज ने भी हमारी चुनौती को स्वीकार किया है। अब विजय-लेख का सम्मान प्राप्त करने के लिए हम आई हैं। हमने हजारों दीपक जलाकर अपनी चुनौती अभी ही दी है, महाराज भी इसके साक्षी हैं। अगर महाराज इन दीपकों को बुझवा सकें तो हम अवन्ती की विद्वत्सभा को प्रणाम करके आगे बढ़ जायेंगी; और अगर महाराज मान छोड़कर विजय-लेख द्वारा हमें सम्मानित करें तो विजय-लेख को कुन्तलेश्वर के चरणों में रखने के लिए लौट जायेंगी।'

'आहवमल्ल क्या कर रहे हैं? क्या अपने कवियों द्वारा रची हुई प्रशस्तियों में ही प्रसन्न हो रहे हैं?'

अवन्तीनाथ के इन शब्दों ने दोनों वारागनाओं को विचार-मग्न कर दिया।

'महाराज!' एक वारागना ने प्रत्युत्तर दिया—'कुन्तलेश्वर अपने विषय में कवि अप्पय दीक्षित द्वारा रचित प्रशस्ति को चरितार्थ करने का प्रयत्न कर रहे हैं!'

वारागना के चातुर्यपूर्ण प्रत्युत्तर से भोजराज के चेहरे पर थोड़ी-सी मुस्कराहट फैल गई—'क्या लिखा है उन्होंने?'

वारागना का चेहरा कुछ तेजोपूर्ण हो आया। 'महाराज!' उसने प्रणाम करके उत्तर दिया—'समुद्र नर्मदा से पूछता है...'

विद्वज्जन और कवि-मंडली सुनने के लिए आतुर हो गई; भीमदेव

और दामोदर भी सुनने के लिए एकाग्र हुए।

'समुद्र नर्मदा से पूछता है—महाराज ! कि "तुम्हारा जल इतना श्याम कैसे हो गया ?" '

'फिर नर्मदा ने क्या उत्तर दिया ?' भोजराज ने कविता की पहली पंक्ति सुनते हा अत्यधिक आनन्दित होते हुए पूछा।

'नर्मदा ने उत्तर दिया, महाराज !' वारागना ने मधुर किन्तु निर्भय स्वर में कहा, "कि जब कुन्तलेश्वर ने मालवभूमि पर आक्रमण किया तो रणक्षेत्र में उन्होंने अनेक मालवी योद्धाओं को सुला दिया; उस समय मालव-नारियों की कज्जल-मिश्रित अश्रुधारा मुझमें मिली; उसी से मेरा जल श्याम हो गया है।" '

कविता की इन पंक्तियों को सुनकर अनेक कवि-गणों के सिर डोल उठे, परन्तु उन शब्दों में प्रच्छन्न शर-संधान ने अनेकों के हृदयों को विदीर्ण भी किया।

'महाराज !' विद्यापति भास्कर बोला—'नर्मदा का उत्तर सुनकर समुद्र ने जो प्रत्युत्तर दिया उसकी जानकारी संभवतः कुन्तल देश की इस रमणी को नहीं है।'

'उस प्रत्युत्तर को सुनने के ही लिए तो, पंडितराज, हमने यह प्रवास किया है। समुद्र ने क्या उत्तर दिया, कवीश्वर ?'

भोजराज ने विद्यापति की ओर देखा।

विद्यापति बोला—'महाराज ! जो उत्तर समुद्र ने नर्मदा को दिया वह इस प्रकार था—तुम्हारा जल श्याम हुआ सो तो ठीक है; तुम मुझमें लाकर उसे ठेल देती हो। परन्तु जब धारापति की हस्ति-सेना रण-अभियान करेगी और उस सेना के मदोन्मत्त हाथी कुन्तलेश्वर के योद्धाओं को आकाश मे फेकेंगे तब कुन्तल देश की नारियों के आँसू मुझे भी श्याम कर देंगे। तुम तो मुझमे आकर अपनी श्यामलता ठेल देती हो; परन्तु मैं समुद्र इतना कज्जल मिश्रित अगाध जल कहाँ ले जाकर ठेलूँगा ?'

सभासदों को शर से शर का प्रत्युत्तर देने का सन्तोष हुआ। वारांगनाओं ने महाराज भोजराज को प्रणाम किया और सहज स्मित करती हुई बोलीं—'महाराज अवन्ती की विद्वत्सभा तो भारत विख्यात है, सिर को डोलायमान कर दे ऐसी कवि-वाणी तो सुन ली; अब हमारी चुनौती का प्रत्युत्तर भी कोई संगीतज्ञ दे—महाराज ऐसी आज्ञा करें!'

'मनोज्ञा, हमारे यहाँ तो संगीत राजरानी के पद पर प्रतिष्ठित है।' अपना नाम सुनकर वारांगना चौंकी, उसने वृद्ध कवि धनपाल और उनकी सामर्थ्य को मन-ही-मन प्रणाम किया।

'कविराज! आप तो शब्द और अर्थ के स्वामी हैं, और सब-कुछ समझते हैं। सभी देशों की विद्वत्सभा में संगीत की वही—राजरानी के पद पर आसीन होने की—प्रतिष्ठा है। आपका यह कथन कि दीपक दासी भी जला सकती है, बिलकुल सत्य होते हुए भी हमारी चुनौती विद्या से दासी का काम करवाने के लिए नहीं है। हम तो यही जानती हैं कि स्वरों पर अधिकार प्राप्त किये बिना दीपक राग गाया नहीं जा सकता। यदि शब्द-स्वामी-जैसा कोई स्वर-स्वामी आपके यहाँ न हो, तो आप भले ही अपनी इस अपूर्णता को 'विद्या किसी की दासी नहीं है' की ओट में ढकने का प्रयत्न कीजिये; परन्तु भारतवर्ष में तो यह अपूर्णता उजागर हो ही जायेगी। मालवा की विद्वत्सभा के समक्ष तो मस्तक झुकाना भी गौरव की बात है। हमारे लिए प्रश्न यही है, महाराज, कि हम मस्तक उन्नत रखें या झुकायें?'

मनोज्ञा के शब्द सुनकर विद्वत्सभा क्षण-भर के लिए मूक रह गई। महाराज अवन्तीनाथ ने नर्तकियों के समूह की ओर देखा—किसी के भी चेहरे पर उल्लास नहीं दिखाई दिया फिर उनकी दृष्टि वारांगनाओं की ओर मुड़ी—सभी नयी बात को जानने के लिए उत्सुक दिखाई दीं। इस विषय की पारंगत किसी भी दृष्टि से उनका साक्षात्कार न हो सका।

संगीतज्ञों को उन्होंने अवनत मुख बैठे देखा; राग-रागिनियों के जानकर

शास्त्रीय-चर्चा में मग्न दिखाई दिये; अवन्ती की भारत-विख्यात नर्तकी राधा की ओर महाराज ने नजर की। वह भी इस प्रकार बैठी थी मानो पृथ्वी मे समा जाना चाहती हो। यह देखकर महाराज को अपनी पराजय की आशंका हुई। मनोज्ञा को अपनी विजय होने का आभास हुआ। वह और अधिक उत्साह से बोली—'महाराज! विजय लेख की भाषा तो गीर्वाण ही उपयुक्त रहेगी। पाईयलच्छी का हमारे मन अधिक मूल्य नहीं है!'

'तो कुन्तलेश्वर से कहना. '

'महाराज!' मनोज्ञा प्रणाम करके सन्देशा ग्रहण करने के लिए सिर झुकाये खड़ी रही।

'कहना कि, रजनीपति की भाँति यह एक दोष हमारे यहाँ भी रह गया है; केवल यही एक कला हमारे यहाँ से भूलती-भटकती तुम्हारे वहाँ पहुँच गई होगी। बाकी हमारी कला-श्रेष्ठता के बारे में जानना हो तो जाकर पूछना पाटन के भीमदेव से।'

'पाटनपति भीमदेव से क्या पूछना होगा, महाराज?'

'तुम पाटन तो जाओगी ही, वहाँ जाकर पता लगाना कि यहाँ से एक गाथा जाती है तो वहाँ विद्वानों की सारी सभा किस तरह काँप उठती है! इन विद्यापति कवि का केवल एक शब्द कई दिनों की चर्चा का विषय बन जाता है और जाने कितनी रात्रियों का अखण्ड जागरण करवाता है।'

'गुर्जर देश में तो, महाराज, विद्या नहीं ही होगी; परन्तु अवन्ती की नर्तकियाँ तो वर्षों से कला की आराधना और संरक्षण करती आई हैं, उज्जयिनी की वारागनाओं ने महाकवि कालिदास से प्रेरणा प्राप्त की है। पाटन में तो विद्या, वारागना या ललित कला नहीं भी हो सकती है और गुर्जर देश में तो नहीं ही होगी; परन्तु क्या मालवा में भी नहीं है?'

दामोदर ने भीमदेव को उत्तेजित होते हुए देखा। उसने संकेत किया।

उन्हे कुछ शान्त करके दामोदर ने विद्वत्सभा की ओर दृष्टि डाली और आश्चर्यचकित रह गया। उसके मुँह से निकल पड़ा—'अरे!'

भीमदेव ने राजरानियों की ओर के समूह में से एक अनुपम लावण्यवती नारी को खड़े होकर सभा की ओर आते हुए देखा।

'दामोदर! यह कौन है?'

दामोदर ने उत्तर नहीं दिया। महाराज भीमदेव ने पुनः उस ओर देखा और वह भी आश्चर्यचकित रह गये। 'अरे! दामोदर!' वह कुछ जोर से बोल गये—'यह कौन है? देख तो सही!'

'महाराज!' दामोदर ने धीरे से परन्तु दृढ़ स्वर मे कहा—'मैं दामोदर नहीं हूँ और आप महाराज नहीं हैं। पाटन बहुत दूर है, चन्द्रावती भी दूर है, पास मे तो केवल अवन्ती है। जरा-सी भी भूल हुई तो आपके भाग्य मे होगा कठिन रणक्षेत्र और मेरे भाग्य मे विन्ध्या का वास! इसलिए जो होता है उसे चुपचाप देखा कीजिये। कुछ बोलिये नहीं ..'

'परन्तु इधर देख तो सही—यह तो चौला है!'

दामोदर ने उत्तर नहीं दिया। इसी बीच चौला विद्वत्सभा के मध्य मे आकर खड़ी हो गई। अनेक आँखें उसकी ओर उठ गईं। विद्वान और कवि उसकी ओर देखने लगे। अवन्तीनाथ को भी इस अद्‌भुत नारी के बारे मे जिज्ञासा हुई। मनोज्ञा तो उसके खडे रहने का ढंग देखकर ही समझ गई कि इसके पास अवश्य कोई कला-सिद्धि होनी चाहिये। इसलिए उसे कुछ व्यग्रता भी हुई। तभी अत्यन्त मनोरम, मधुर और स्पष्ट किन्तु साथ ही दृढ़ और निर्भय स्वर सुनाई पड़ा—'महाराज अवन्तीनाथ! हमारे वहाँ गुजरात मे तो कुन्तल देश की इस रमणी ने जिसका प्रदर्शन किया उसे कोई भी अद्‌भुत विद्या नहीं समझता। हमारे वहाँ तो यह अति सामान्य विद्या मानी जाती है। क्या यहाँ अवन्ती मे इसे विरल कला समझा जाता है?' फिर उसने किंचित् विस्मय-पूर्वक मनोज्ञा से पूछा—'क्या तुम्हारे यहाँ इसे कला-सिद्धि माना जाता है?'

भोजराज की विद्वत्सभा ने चौला की वाणी की प्रभविष्णुता का अनुभव किया। विद्वानों के कानों म उसका स्पष्ट मधुर शब्दोच्चार गूँजने लगा, नर्तकियों की आँखों में उसकी मनोहारी छटा बस गई, संगीतज्ञों को उसके स्वर की टंकार बड़ी सुहावनी लगी, राजनीतिज्ञों को उसका कोमल दृढ़ता ने आकर्षित किया। गुजरात का उव्वट तो अपने स्थान पर गर्व से थोड़ा तन ही गया। इस जगह भी गुजरात के गौरव की बात सुनकर भीमदेव आनन्दोन्मत्त हो गये। उन्हें चौला की यह विजय नड्डूल-विजय से भी अधिक गौरवपूर्ण प्रतीत हुई।

'कवीश्वर धनपाल ने भी यही कहा था—गुजरात में विद्या नहीं है, इसलिए वहाँ विरल कला को अविद्या ही समझा जाता है।' मनोज्ञा ने कटाक्षपूर्वक कहा।

'हाँ, यह सच है कि तुम्हारे कर्नाटक की तरह विद्या का ठौर-ठौर दासी की भाँति प्रदर्शन करते फिरना तो गुजरात में नहीं ही है।" चौला ने सगौरव प्रत्युत्तर दिया।

'यहाँ से हम गुजरात ही जायेंगी—तुम्हारे वहाँ की विद्या —विद्या तो होगी नहीं, इसलिए उसे देखने नहीं, अविद्या का ही दर्शन करने!' मनोज्ञा के स्वर में कटुता और अहंकार की पुट थी।

ऐसी अभिमान-भरी वाणी सुनते ही चौला का शरीर स धा, उन्नत और गौरवपूर्ण हो गया। उसने विद्युल्लता-जैसे तड़ित्पूर्ण स्वर में कहा—'मनोज्ञा! वहाँ गुजरात में तो ऐसी अनेकों नारियाँ हैं जो तुम्हारे दीये जलाने के इस खेल को विद्या और कला का उपहास ही समझती हैं।'

'अथवा यों कहो कि इस प्रकार की विद्या न होने से अपना ही उपहास करवाती हैं....'

महाराज भोजराज इस संवाद को आगे बढ़ने से रोकने के लिए मध्यस्थ हुए—'तो क्या तुम गुजरात से आ रही हो?' उन्होंने चौला से पूछा।

'गुजरात से आ नहीं रही हूँ, महाराज ! मैं तो गुजरात की ही हूँ। मैं महाकालेश्वर के समक्ष नृत्य करने जा रही हूँ। बीच मे इस विद्वत्सभा को देखने के लिए यहाँ चली आई। गुजरात के बारे में बातें होती सुनीं तो विद्वत्सभा को गुजरात का सच्चा परिचय देने के लिए आ खड़ी हुई हूँ। परन्तु क्या यहाँ कोई ऐसा नहीं है जो इन दीयों को बुझा दे ? पाटन की सभा में तो इन्हें अवनत मुख लौटाने के लिए इतनी देर कभी न लगती।'

भोजराज को चौला का यह गौरवपूर्ण स्वर चुभ गया। मनोज्ञा अधीर हो उठी। विद्वान लोग एक गुजराती नारी के महत्त्व को स्वीकार करने के बदले उसे पराभूत करने के लिए कोई दूसरा मार्ग ढूँढ़ने का प्रयत्न करने लगे। मालवपति को एक गूढ़ प्रश्न परेशान करने लगा।

'हमारे वहाँ उज्जयिनी की नर्तकियाँ .' भोजराज ने कहा।

'तब तो महाराज ! हम उज्जयिनी होकर तभी इस विद्वत्सभा के समक्ष उपस्थित होंगी .' मनोज्ञा बोली।

'महाराज अवन्तीनाथ !' चौला ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया—'मैंने भी भगवान महाकालेश्वर के समक्ष नृत्य किया है, और उज्जयिनी की नर्तकियों से मेरा परिचय है। वहाँ किसी के पास यह विद्या नहीं है, इतना मैं जानती हूँ।'

'तो क्या तुम्हारे गुजरात में है ? तुम्हारे पास है ?' भोजराज ने पूछा।

'हाँ कहना इस विद्या का अपमान करना है, महाराज ! और ना कहना सत्य का अपमान करना है ! परन्तु गुजरात में इस विद्या को कोई अद्भुत नहीं समझता और मैं गुजरात की हूँ।'

'तब तुम्हीं चुनौती स्वीकार कर लो . ' मनोज्ञा ने कहा।

'किसकी चुनौती ? तुम्हारी ? चुनौती तो वहाँ महाराज पाटनपति के सिंहासन के समक्ष देने की अब भी तुम्हारी हिम्मत हो तो—मैंने, गुजरात की एक सामान्य नारी ने—कभी की स्वीकार कर ली है, यही समझ लो। यह तो जब इस विद्वत्सभा में गुजरात की बात होने लगी—गाथाओं के

द्वारा गुजरातियों को कँपानेवाले विद्वानों का महाराज ने स्मरण किया—तब मेरे मन में सहज ही वह बात लग गई। यहाँ तो कोई मालवी नारी ही तुम्हारी चुनौती स्वीकार करेगी। देखो, इन राजरमणियों में इस विद्या का परिचय देनेवाली संभवतः कोई-न-कोई निकल आये।'

भोजराज से चौला का यह विजय दर्प सहा न गया। उन्होंने रसिक किन्तु ग्राम्य-विनोद किया—'तुम इस चुनौती को स्वीकार कर लोगी, और तुम्हें इस विद्या का ज्ञान भी होगा परन्तु इससे मरुभूमि का कुग्राम-वास और कुलहीन-सेवा के जो दूषण, तुम्हारी विद्या पर लग चुके हैं, कहाँ छिपेंगे? तुम जिसे अपनी विद्या का परिचय रोज देती हो वह भीमदेव संगीत-साहित्य में तो नहीं, परन्तु नापित विद्या में कुशल हो तो हो।'

भीमदेव यह सुनकर बहुत उत्तेजित हुए। दामोदर ने उनका हाथ पकड़ लिया—'महाराज! देखिये....देखिये।'

चौला जरा भी उत्तेजित न हुई। सौ टंच के सोने की खनक-जैसे स्वर में उसने उत्तर दिया—समस्त सभा-मंडप में उसका वह शान्त और दृढ़ स्वर गूँज गया—'यह तो ऐसी बात है, महाराज, कि प्रत्येक युग में नृपतियों के गुण बदलते रहते हैं। जब अनेकों को मूँडना होता है तो किसी महान नृपति को नापित (नाई) भी बनना पड़ता है। पाटनपति ने अर्बुदनाथ को मूँडा, नडूल को मूँडा, सिन्ध को मूँडेंगे, और चेदि और मालव को भी जब मुँडवाना होगा तो उन्हें भी दृष्टि तो वहीं, उन्हीं की ओर करनी होगी न!'

मानो महाराज भीमदेव के तीर के लक्ष्यवेध को अपने वाक्य में भर रही हो इस प्रकार चौला ने कहा और अपने चारों ओर एक दृष्टि डाली।

विद्वज्जन, कवि-मंडली, वारांगनाएँ, नर्तकियाँ, राजरमणियाँ, आदि सभी चौला के वाक्यों को उसकी अपेक्षा अधिक तीक्ष्ण शर से बींध डालने के लिए तैयार हो गये। भोजराज अपने विनोद वाक्य का ऐसा प्रत्युत्तर सुनकर क्षण-भर के लिए घूर्णायमान रह गये। परन्तु वह रसिक और

वीर थे। उन्होंने चौला के वाक्-बाणों को सहन करते हुए कहा—'एक आश्चर्य होता है—हमारे यहाँ तुम्हारा दामोदर मेहता आया था—जिस देश से ऐसा कुरूप सन्धिविग्रहक आया वहीं से तुम भी आ रही हो यह रहस्य कुछ समझ में नहीं आता।'

'महाराज!' चौला ने प्रत्युत्तर दिया। सारी सभा ने एकाग्रतापूर्वक सुना—

'जन्मस्थानं न खलु विमलं वर्णनीयो न वर्णो
दूरात्पुसा वपुषि रचना पङ्कशङ्का करोति।
यद्यप्येवं सकलसुरभिद्रव्यगर्वापहारी
को जानीते परिमलगुणः कोऽपि कस्तूरिकायाः॥'*

भीमदेव और दामोदर दोनों ही सुनकर झूम उठे। चौला के सुन्दर उत्तर और कटाक्षपूर्ण वाणी से विद्वत्सभा मे पुनः खलबली मच गई।

महाराज भोजराज की सभा में इस प्रकार कटाक्ष-वाणी से विजय-घोष कर रही चौला के गौरव से उत्साहित होकर महाराज भीमदेव बोले—'दामोदर! चौला ने यहाँ की विद्वत्सभा का गर्व भी हरा, अब तो हमे पाटन मे विद्वत्सभा की स्थापना....'

'महाराज!' दामोदर ने भीमदेव के उत्साह पर ठंडा पानी डालते हुए कहा—'मैं और आप दोनों ही यहाँ छद्मवेश में हैं; देखने का आनन्द क्यों खोये दे रहे हैं! देखिये, अवन्तीनाथ धनपाल से कुछ कह रहे हैं।'

'हमारे कवीश्वर धनपाल की वाणी तुमने सुनी है?'

'यह सौभाग्य अब तक तो प्राप्त नहीं हुआ; आज होगा।'

धनपाल इस तरह बोले मानो शब्दों के समुद्र में से बाहर निकल

---

* समस्त सुगन्धित पदार्थों के गर्व को हरनेवाली कस्तूरी को दूर से देखकर कादव की शंका होती है; उसके गुण को विरले ही जानते हैं। यही भावार्थ है।

रहे हों—'महाराज ! ऐसी विद्वत्सभा है, और देश-विदेश की चतुर रमणियाँ यहाँ आई हुई हैं, तो मैं भी एक गूढ़ प्रश्न पूछ ही लूँ, जो मेरे मन को व्यग्र किये है।'

'हाँ, पूछिये न, कवीश्वर !'

'एक बार अवन्ती की विद्वत्सभा में एक वारागना आई। अवन्तीनाथ ने उससे पूछा—"यहाँ कैसे ?" वारागना ने जो प्रत्युत्तर दिया वह अनोखा था। अवस्था अधिक हो जाने के कारण उस प्रत्युत्तर को मैं तो भूल गया हूँ। परन्तु अन्तर्गुहा मे प्रकाश दिखाई दे और उस प्रकाश को आँखों से देखा न जा सके, ऐसी मेरी स्थिति हो रही है। आज उस रसभरी व्यग्रता को मिटाने की मेरी इच्छा हो आई है। मैं इन दोनों नारीरत्नों को सम्बोधित करता हूँ। क्या इनमे से कोई मुझे उस वारागना की मधुर उक्ति याद करायेगी ?'

समस्त सभा सुन रही थी। कइयों के चेहरों पर प्रच्छन्न सन्तोष की मुस्कराहट फैल गई। जिस प्रकार विन्ध्याटवी के गहन-वन मे से वृद्ध केसरी सिंह निकल आता है उसी प्रकार कवि धनपाल अपने गूढ अर्थोंवाले काव्य-शरों को लेकर विद्वत्सभा की सहायता के लिए प्रस्तुत हो गये थे। सभी को यही लग रहा था कि अब प्रतिस्पर्धी को भूमि पर गड़ाई हुई अपनी दृष्टि उठाना भारी पड़ जायेगा। सबकी निगाहें मनोज्ञा और चौला पर जम गईं थीं।

'महाराज !' मनोज्ञा ने सिर नवाकर उत्तर दिया—'धर्मयुद्ध मे तो पदातियों से पदाति और रथारूढ़ों से रथारूढ़ लड़ते हैं। मेरी चुनौती तो अब भी विद्वत्सभा के समक्ष है ही। यदि महाराज की ऐसी ही इच्छा हो तो हमारे वहाँ से इसका प्रत्युत्तर देनेवाले भी आ जायेंगे।'

'महाराज ! आपके कवीश्वर की वाणी यदि अनुत्तरित रही तो पाटन की बहुश्रुतता की विडम्बना होगी।' चौला ने कहा। उसके शब्दोच्चार के माधुर्य से कइयों ने अमृत-स्रोत का अनुभव किया।

'वह बहुश्रुतता तो प्रसिद्ध है। आज तुम उसे और भी प्रसिद्ध करो।' कालिदास ने कटाक्ष किया।

'यह तो ऐसी बात है, कविराज, कि कमलविहारी सारसी काक नाहं !'

कालिदास को उपयुक्त शब्दों के लिए ढूँढ़-खोज करता हुआ छोड़कर चौला धनपाल के प्रश्न की ओर मुड़ी—'महाराज ! अवन्ती की विद्वत्सभा में उस वारांगना ने जो उत्तर दिया वह मेरे उत्तर जितना सरस है या नहीं इसका निर्णय तो विद्वत्सभा ही करेगी।'

'तुम्हारे पास कौन-सा उत्तर है ?'

'आँखों में लगे हुए काजल की कर्णावलम्बी रेखा को देखकर राजकवि ने वारांगना से प्रश्न किया—"यहाँ कैसे ? काजल की रेखा ठेठ कानों तक लम्बी क्यों है ?" '

पंडितजनों में आश्चर्य और क्षोभ व्याप्त हुआ। भीमदेव महाराज आनन्द-मग्न होकर सुनते रहे। दामोदर एकाग्र चित्त हो गया। भोजराज के चेहरे पर मनोरम काव्य-वाणी सुनने की प्रसन्नता फैल गई। कवि पद्मगुप्त विचार-मग्न हो गया। धनपाल स्तब्ध रह गया। कालिदास विषण्ण हो उठा।

'फिर उस वारांगना ने क्या उत्तर दिया ?' भोजराज ने पूछा।

'वारांगना ने उत्तर दिया—"कविराज ! पूछ रहे है इसलिए !" महाराज पाटनपति के रूप और पराक्रम को देखकर चक्षुओं को विस्मय हुआ; इसलिए वे पूरा वृत्तान्त जानने के लिए कान के पास पहुँच गये; और उनसे पूछा—"आज तक तुमने जो सुना है उसी को हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं !" '

विद्वत्सभा के प्रत्येक व्यक्ति को सरस काव्यानन्द की अनुभूति हुई। किन्तु गुजरात की एक नारी का इस प्रकार अवन्ती की भरी सभा में विजय-लाभ विद्वानों के आवेश का कारण भी हुआ। प्रायः सभी विद्वान उत्तेजित हो उठे। सबकी दृष्टि पद्मगुप्त (कवि परिमल का दूसरा नाम)

की ओर मुड़ी। कविराज परिमल स्वप्न में से जाग रहे हों इस प्रकार बोले—'महाराज ! पाटनपति के रूप और पराक्रम को देखकर चक्षुओं को जैसा विस्मय हुआ ठीक वैसा ही एक दूसरा प्रसंग भी है। पाटनपति की कुल-परम्परा से चले आते उस प्रसंग की रमणीकता क्या इन्हें याद है ?'

'कौन-सा प्रसंग है, कविराज ?' चौला ने पूछा।

पद्मगुप्त के चेहरे पर आनन्द की एक रेखा फैल गई।

'ऐसी बात है, महाराज, कि यहाँ पाटनपति के रूप की बात हुई। पराक्रम की कथा कही गई। विद्या-प्रेम का परिचय भी दिया गया, परन्तु उनकी उपासना की—तपश्चर्या की बात नहीं हुई। उनके वंश में तो तपस्वी भी हुए हैं। इस विषय को मैंने अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार काव्य में पिरोया है। अधिक अच्छी तरह तो उनके कविराज ही ग्रथित करेंगे।

'सर्व विद्यासागर महाराज मुंजराज के समय का यह प्रसंग है—

'आहारं न करोति नाम्बु पिबति स्त्रैणं न संसेवते
शेते यत्सिकतासु मुक्तविषयश्चण्डातपं सेवते।
त्वत्पादाब्जजःप्रसादकणिकालाभोन्मुखस्तन्मरौ
मन्ये मालवसिंह गूर्जरपतिस्तीव्रं तपस्तप्यते ॥'*

पद्मगुप्त के वाणी-विलास से सारी सभा झूम उठी। महाराज भोज-

---

*हे मालवसिंह ! तेरे चरणरज का प्रसाद प्राप्त करने के लिए ही गुर्जरराज ऐसा कठिन तप कर रहा है। वह आहार नहीं करता। पानी नहीं पीता। बालू पर सोता है। पत्नी का परित्याग किये है। विषयों से मुक्त होकर प्रखर आतप का सेवन करता है। यह सब तेरी कृपा पाने के लिए ही किया जा रहा है। भावार्थ यह कि मुंज ने मूलराज को पराजित किया था और मूलराज को भागकर वनवास करना पड़ा था।

राज आनन्दमग्न हो गये। वृद्ध धनपाल का सिर प्रसन्नता से डोल उठा। चौला कुछ उत्तर दे उसके पहले पद्मगुप्त ने सोत्साह आगे कहा—'महाराज! गुर्जर नरेश की इस तपस्या मे उनकी साध्वी रानी का सहयोग भी है—

'भग्नानि द्विषतां कुलानि समरे त्वत्खड्गधाराकुले
नाथास्मिन्निति वन्दिवाचि बहुशो देव श्रुताया पुरा।
मुग्धा गूर्जरभूमिपालमहिषी प्रत्याशया पाथसः
कान्तारे चकिता विमुञ्चति मुहु पत्युः कृपाणे दृशौ ॥*

'पाटनपति की कुल-परम्परा की शोभा-वृद्धि करने वाली इस पदावली को गुर्जरदेश के विद्वानों ने कदाचित् सुना नहीं होगा—अब वे विद्वान भले ही इनसे सुनें!'

दामोदर और भीमदेव दोनों ही इसे सुनकर व्यग्र हो गये। पद्मगुप्त ने महाराज मुंज की कीर्तिगाथा के द्वारा पाटनपति के अपयश को इतनी मनोरम पदावली मे ग्रथित कर दिया था कि क्षण-भर के लिए तो उन दोनों को यही लगा कि उस अपयश को मिटाने की शक्ति किसी मे नहीं है। सभाजन भी इस तीक्ष्ण शर-जैसे वार का प्रभाव देखने के लिए शान्त हो गये थे।

चौला अब क्या उत्तर देती है यह सुनने के लिए सभी उत्सुक हो रहे थे।

दूसरे ही क्षण चौला ने गर्व से उत्तर दिया—'महाराज! पाटन के

---

* इस श्लोक का भावार्थ यह है कि गुजरात की रानी बंदीजनों द्वारा कही हुई इस प्रशस्ति को कि 'हे नाथ! युद्ध में तूने दुश्मन कुल को तलवार के पानी में डुबो दिया है' अक्षरशः ग्रहणकर युद्धभूमि में पानी के लिए तृषातुर हो अपने पति की तलवार की ओर सतृष्णा दृष्टि से देख रही है। यह भी मूलराज के ही बारे में है।

विद्वान इस पदावली से परिचित है।'

'अच्छा, ऐसी बात है? तब तो वे सब इसके काव्यानन्द में ही तल्लीन होंगे!' भोजराज ने कहा।

'काव्यानन्द मे तो तल्लीन हैं ही, परन्तु ग्लानि का अनुभव भी कर रहे हैं, महाराज!'

'ग्लानि? ग्लानि क्यों?'

'महाराज! कवि पद्मगुप्त की कविता सुनकर आनन्द हुआ। कविता सुनकर भला कौन है जिसे आनन्द नहीं होता? परन्तु इसमे निरी कविता है, क्रान्तदर्शन नहीं और यही देखकर पाटन के विद्वानों को ग्लानि हुई है।'

'क्रान्तदर्शन?'

'उन्नति और अवनति में कितना घनिष्ट सम्बन्ध है यह उल्लेख इनकी कविता में नहीं है। मालव की उन्नति और अवनति भी अब कहाँ किसी से छिपी हुई है? क्या हाल में ही मालव दंडाधीश को उसका परिचय नड्डूल मे नहीं हुआ? उस प्रसंग पर तो छोटे-से नड्डूल का दर्रा भी महत्वपूर्ण हो गया था। चौदह सौ हाथियों की सर्वविख्यात विभूति अब कथाओं मे ही शेष रह गई है; यह जब सुना तो पाटन के कवि ने खिन्न हृदय होकर गाया—

'यः केसरी खरनखक्रकचोग्रपाणि
निर्दारितेभवरकुम्भसमुद्भवेन।
नव्येन शोणितचयेन निरस्ततृष्णो।
नित्यं बभूव धिगहोद्य तृणेन सोर्थी' ॥*

* भावार्थ यह है कि जो तीक्ष्ण नखों और बलिष्ठ भुजाओंवाला केसरी गजेन्द्रों के शोणित से तृप्त हुआ करता था वही आज तृणांकुरों से सन्तोष कर रहा है।

नड्डूल द्वारा मालवा के पराजित होने को कथा सभी को चुभ गई। क्षण-भर के लिए सारी सभा हतप्रभ हो रही। इसी बीच कालिदास ने प्रत्युत्तर दिया—'अवन्तीनाथ की विजय-पराजय मे पाटन को इतनी दिलचस्पी है ..'

'इसका कारण है. कविराज !'

'क्या ?'

'नीयन्ते रिपुभिः समुन्नतिपदे प्रायः पर मानिनः। महाराज भोजराज के समान शत्रु का होना तो गौरव की बात है। वे जितने भी महान हों उतना अच्छा। पाटनपति तो अपनी सामर्थ्य के अनुसार शत्रु-मित्र रखते ही हैं। मालवराज पाटन के मित्र रहे अथवा शत्रु, किन्तु जिस रूप मे भी रहे महान रहें। हमारी शोभा इसी मे है। मृगारिरिति नाम्नैव लघुत्वं याति केसरी।'

'महाराज !' मनोज्ञा बोली—'इन्होंने कहा है कि हमारी चुनौती सामान्य कोटि की है। यदि इन चाटूक्तियों द्वारा इस बात पर परदा डालने की महाराज की विद्वत्सभा की इच्छा हो तो ठीक है, परन्तु 'सर्वत्र कुनट एव हि नाटकमधिकं विडम्बयति'*। इस गुर्जर नारी के बारे मे भी तो कहीं ऐसा ही नहीं है ?'

'मनोज्ञा ! ऐसा प्रतीत होता है कि तुम जिस देश से आ रही हो, वहाँ कोई विद्वत्सभा मे परिचित नहीं है। यहाँ आई तो हो परन्तु—

'गिरिशिखरगतापि काकपाली
पुलिनगतैर्न समेति राजहंसैः ॥'†

---

* कुनट ही नाटक की विडम्बना करता है। भावार्थ यह कि थोथा चना बाजे घना।

† गिरिशिखर पर बैठी हुई भी काक-पंक्ति राजहंस की तुलना नहीं कर सकती, फिर भले ही राजहंस पुलिन पर ही क्यों न बैठा हो।

चौला के ये शब्द सुनकर मनोज्ञा कुछ कम्पित हुई। महाराज भोजराज ने इसे लक्ष्य किया। अकेले ही अनेकों से सामना करनेवाली यह नारी कौन है—इसे जानने की उनकी जिज्ञासा बहुत बढ़ गई थी। साथ ही उसकी विद्या का और अधिक परिचय प्राप्त करने की इच्छा भी जाग्रत हो आई थी। इसलिए वह बोले—'तुमने इनकी चुनौती तो स्वीकार कर ली है, परन्तु उसका पालन नहीं किया।'

'इसका कारण है, महाराज! मैं तो पाटन की विद्वत्सभा में ही अपनी विद्या का परिचय देती हूँ। और यह पाटन नहीं है।'

'महाराज!' मनोज्ञा बोली—'अल्पश्रुतलव एव प्रायः प्रकटयति वाग्विभवमुच्चैः (अज्ञानी ही वाग् वितण्डा करते हैं)।'

'क्या विद्या के स्वामी भी विद्या को देश और सीमा के बन्धनों में बाँधेंगे? क्या विद्या ने कभी देश-काल का बन्धन जाना है? को विदेशः सविद्यानाम् कः परः प्रियवादिनाम्*। तुमने कहा है कि पाटनपति को शत्रु नहीं, महान शत्रु की वाञ्छा है, हमारी भी यही अभिलाषा है। परन्तु पहले तुम अपनी महानता को तो प्रमाणित करो—सिंहोऽस्तु शत्रुरथवाधिपतिर्मृगाणा—यह सूत्र तो हमें भी मान्य है। परन्तु तुमने तो विद्वानों को अभी तक शंका की छाया में ही रखा हुआ है।'

'यदि महाराज की ऐसी ही इच्छा है तो इस विद्वत्सभा को भी गुजरात का परिचय प्राप्त हो ही जाये। महाराज! जब सरस्वती नदी के जल में आकाश में भ्रमण करते हुए बादलों की छाया पड़ती है, तब मुक्त और स्वतन्त्र विचरण करते हुए पाटन के नर-नारी-वृन्द मेघ-मल्हार की मोहिनी का अनुभव करते हैं। पाटन के महाराज भीमदेव के धनुष की टंकार-जैसी मेघ-मल्हार की तानों का अनुभव भले ही ये कुन्तल रमणियाँ

* विद्यावानों के लिए विदेश नहीं होता और प्रियवादियों के लिए कोई पराया नहीं होता।

भी यहीं कर लें।'

क्षण-भर के लिए शान्ति छा गई। सम्पूर्ण सभा चित्रलिखित-सी स्थिर हो गई। चौला के कण्ठ की मिठास का अनुभव करने के लिए सभी उत्सुक हो गये थे।

—और जब उसके कंठ से निःसृत मेघ-मल्हार की स्वरावली के प्रभाव से शिखर के ऊपर नाचते हुए मयूर की कलंगी का दीपक बुझ गया और गिरिशिखरों के ऊपर बनी छतरियों पर के दीपक एक के बाद एक बुझने लगे, तब पाटन के गौरव से प्रसन्न हुए राजा और मंत्रीश्वर को देखने के लिए चौला ने एक अत्यन्त भाव-भरी दृष्टि उस ओर डाली, जहाँ वे खड़े थे।

हर्षोत्फुल्ल भीमदेव और दामोदर कृतकृत्यता का अनुभव करते हुए चौला की स्वर-सरिता में आप्लावन कर रहे थे।

३१. भोजराज और भीमदेव

अन्धकार होते ही दामोदर ने अपना मुँह भीमदेव के कान के बिल-कुल पास ले जाकर कहा—'महाराज ! अब एक क्षण भी यहाँ रुकना नहीं चाहिये ।'

'परन्तु—चौला, दामोदर !'

'वह तो हमसे पहले ही चल दी होंगी; देवराज उनके साथ है; वह यहाँ की एक-एक शिला से परिचित है । कार्तिक, जयदेव और आयुष बाहर खडे हमारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे । चलिये, महाराज ! अब तो बात करना भी दुस्साहस ही है—रास्ते में मेरा हाथ पकड़े रहियेगा ।'

'तुझे विश्वास है दामोदर, कि चौला ...'

'महाराज, उनकी चिन्ता छोड़िये—वह हमारी अपेक्षा अधिक सुर-क्षित हैं—चलिये ।'

भीमदेव और दामोदर एक दूसरे का हाथ पकडे, जिस रास्ते से आये थे उसी रास्ते से, जल्दी-जल्दी बाहर निकल गये । अँधेरे के कारण वे किसी के द्वारा देखे नहीं जा सकते थे । उनकी ओर किसी का ध्यान जाता उसके पहले ही वे बाहर निकलकर अपनी राह पर हो लिये । थोड़ी दूर जाने पर एक वृक्ष के नीचे उन्हे तीन घुड़सवार खड़े दिखाई दिये ।

'महाराज ! ऐसा लगता है कि वे तीनों हमारी ही प्रतीक्षा में खड़े हैं । अभी तो इस विषय में मौन ही रहना होगा ।' इतना कहकर दामोदर आगे बढ़ा । उसने सांकेतिक शब्द का उच्चारण किया—'रणसेना ।'

'रणसेना—' सामने से प्रत्युत्तर मिला ।

'कार्तिक ! किसी को पता तो नहीं चला न ? क्या देवराज मिला था ? जयदेव ! तेरे क्या समाचार हैं ?' दामोदर ने फुर्ती से पूछा ।

'महाराज ! अभी तो हमें जल्दी ही यहाँ से निकल जाना चाहिये !'

'क्यों ?'

'हमने सुना है कि आज अर्धरात्रि के समय महाराज भोजराज महाकालेश्वर के दर्शन करने के लिए जानेवाले हैं। उनका रास्ता हमारे जाने के मार्ग में ही है, इसलिए सबसे पहले तो हमें यहाँ से निकल जाना चाहिये। घोडे बिलकुल तैयार हैं।'

महाराज भीमदेव और दामोदर जल्दी से घोड़े पर सवार हो गये। कार्तिक सबके आगे हुआ। जयदेव और आयुध उनके पीछे रहे।

चारों ओर घना जंगल था। रास्ता बिलकुल अनजान तो नहीं था, किन्तु फिर भी इतनी सावधानी आवश्यक थी कि अँधेरे के कारण कहीं भटक न जाये। थोड़ी देर तक कोई कुछ नहीं बोला।

'कार्तिक ! तुझे कुछ पता चला है ?' थोड़ी दूर जाने के बाद दामोदर ने धीरे से पूछा।

'हाँ, महाराज, वह भी यहीं है। लगता है कि कुलचन्द्र के साथ मिलकर कोई योजना बनाई जा रही है।'

'परन्तु आबू या नड्डूल से तो किसी के आने की संभावना नहीं है न ?'

'नहीं, महाराज ! वहाँ से तो किसी की आवाजाही नहीं है।'

अचानक भीमदेव महाराज ने घोड़ा रोक दिया।

'क्यों, महाराज ! कोई है क्या ?'

'अरे ! दामोदर ! मुझे एक विचार सूझ आया है !'

'क्या महाराज ?'

'यहाँ तक आये—भोजराज की विद्वत्सभा देखी, पाटन के गौरव की विजय-ध्वनि ठेठ यहाँ की विद्वत्सभा में गूँजी, और हम यों ही छूछे

हाथ लौट जायेंगे ?

'तो करना क्या है, महाराज ? प्रतिक्षण महाराज भोजराज के सैनिकों द्वारा हमारे घिर जाने का अन्देशा है। न मालूम किस समय कौन किधर से आ निकले !'

'परन्तु हम तो इस तरह लौटेंगे नहीं। यों चुपचाप लौट गये तो किसी को क्या मालूम होगा कि हम आये थे।'

'परन्तु प्रभु ! इस समय मालूम होने और न होने की जरूरत ही क्या है ? अभी तो दूर निकल जाना है। प्रत्येक मंजिल पर नये घोड़े तैयार मिलेंगे—हमें जल्दी से निकल जाना चाहिये; इसलिए महाराज आगे बढ़िये।'

'आगे तो बढ़ेंगे नहीं, दामोदर !'

'तब ?' दामोदर घबरा गया।

'अब तो वापस लौटेंगे !'

'परन्तु कहाँ, प्रभु ? जाना कहाँ है महाराज ?'

'चौला के चरणों में समर्पित करने के लिए कोई भी पराक्रम किये बिना यहाँ से लौट जाना संभव नहीं हो सकेगा, दामोदर !'

'महाराज ! दामोदर से जीते-जी जल मरने का प्रायश्चित करवाना है क्या ?'

'तू ही तो कहता था, दामोदर ?'

'क्या कहता था, महाराज ?'

'भोजराज को द्वन्द्व-युद्ध की चुनौती दी जाये.. '

'यह बात तो महाराज, समय और साधन पर अवलम्बित है।'

'समय तो यही है, और साधन—हमारे शस्त्र ये रहे इसी घोड़े पर।'

'परन्तु, महाराज, समय—इसके लिए क्या यह समय उपयुक्त है ?'

'इससे अधिक उपयुक्त समय और कौन-सा होगा ? भोजराज महाकालेश्वर के दर्शनों को जा रहे हैं। चलो, हम भी वहीं दर्शन करने

चलें। चल, कार्तिक! रास्ता दिखला. .'

कार्तिक असमंजस में पड़ गया। दामोदर ने पुनः समझाया—'यह सच है, महाराज, कि मैंने ही आप को द्वन्द्व-युद्ध के बारे में सुझाया था, परन्तु देश, काल और साधन-सामग्री पर विचार करते हुए यह अभी उचित नहीं प्रतीत होता।'

'नहीं, दामोदर! भोजराज से मिलना ही होगा। उन्हे भी तो पता चले कि भीमदेव आया था!'

'सो तो, महाराज! हम उन्हे पता कर देंगे—किसी सुन्दर गाथा के द्वारा।'

'नहीं, ऐसे नहीं। महाकालेश्वर के दर्शन करने चलेंगे और वहीं उनसे मिल भी लेंगे।'

'परन्तु महाराज, उनके साथ सेना होगी '

'कितनी होगी?'

'कम-से-कम हजार आदमी तो होंगे ही!'

'बस हजार? यह संख्या ज्यादा नहीं है। सोमनाथ मे तो तीन हजार थे। चल, कार्तिक! हो आगे।'

दामोदर समझ गया कि चौला की विजय से उत्साहित भीमदेव अब किसी बात को सुनेंगे नहीं। इसलिए उसने कार्तिक से कहा—'कार्तिक! महाराज का अश्व महाकालेश्वर की ओर ले! और आयुष! तू अपने दूसरे मुकाम पर पहुँचकर जितने सैनिक मिल सकें लेकर जल्दी लौट आ। चलिये, महाराज! यह भी एक दुस्साहस ही है! चलो, जयदेव!'

भीमदेव और दामोदर महाकालेश्वर के मन्दिर की ओर चल पड़े।

महाकालेश्वर का यह मन्दिर भोजराज ने उज्जयिनी के मन्दिर के अनुरूप परन्तु उससे छोटा बनवाया था। जब चित्रकोट रहते तो वह अकसर वहाँ दर्शनार्थ जाते थे। आज भी नियमानुसार उधर जानेवाले थे।

थोड़ी देर बाद भीमदेव और दामोदर को अपने पीछे कुछेक घुड़-

सवारों की टापें सुनाई पड़ीं। उनके बुलवाये हुए सवार तो इतनी जल्दी आ नहीं सकते थे; इसलिए कौन आ रहा है यह मालूम करने के लिए सभी चुपचाप समीपवाले पलाश के जंगल मे छिप गये।

थोड़ी ही देर मे टापों की आवाज स्पष्ट हुई। लगता था कि दो-चार घुड़सवारों से अधिक नहीं हैं। महाराज भीमदेव ने तत्काल अपने शस्त्रास्त्र सँभाले।

'महाराज ! दुश्मनों की संख्या कितनी है, यह जाने बिना हमला नहीं करना चाहिये !'

'संख्या का इतना डर ? तू ही तो कहता है कि युद्ध मे संख्या का अधिक महत्व नहीं होता।'

थोड़ी देर बाद सामने के रास्ते पर तीन-चार घुड़सवार निकले। सबके आगे शायद भोजराज थे। पीछेवाले उनके रक्षक मालूम पड़ते थे।

उनके वहाँ से आगे बढ़ते ही सभी बाहर निकल आये। भीमदेव ने सिंह-गर्जना की—'अवन्तीनाथ ! वापस लौट आइये। या तो यहाँ युद्ध कीजिये या फिर पाटन चलिये।'

'अरे !—कौन है यह ?'

'वही, जिन्होंने अर्बुदपति को वश मे किया है।' दामोदर ने कहा।

'वही तो नहीं, जो कंथकोट में जा घुसा था ?' भोजराज बोला।

'हाँ, वही है, आइये-आइये—उस दिन कथकोट था, आज चित्रकोट है !'

'परन्तु भीमदेव तुम यहाँ कैसे ? विमल के चरणों में सिर झुकाने अर्बुद आये हो ? या किसी के डर से भागकर चित्रकोट में शरण लेने आये हो ?'

इस बीच महाराज भीमदेव ने अपना घोड़ा बिलकुल समीप ले लिया था। दामोदर और कार्तिक उनकी बगल में ही थे। भोजराज के

घुड़सवार भी आज्ञा के लिए सन्नद्ध थे ।

'न तो विमल के चरणों मे और न चित्रकोट की शरण में ही; आये हैं केवल इतना-सा आनन्द उठा लेने के लिए—यह लीजिये—सँभालिये। महाराज भीमदेव ने तलवार का जोरदार जनोइया वार किया। भोजराज का घोड़ा फुर्ती से परे खिसक गया। महाराज अपने ही वार की शक्ति से थोड़ा-सा लड़खड़ा गये, तभी उनके ऊपर से होकर भाला सन्नाता हुआ जमीन मे जा धँसा।

'तुम दूर रहना, दामोदर ! यह तो द्वन्द्व-युद्ध है—!'

'अच्छा ! वह बदशक्ल भी साथ है ! तुम भी दूर हट जाओ।' भोज ने अपने रक्षकों से कहा; और वार करने के लिए घोड़े को आगे बढ़ाया ॥

महाराज भीमदेव ने अपने घोड़े को फुर्ती से थोड़ा पीछे हटाया और धनुष की प्रत्यंचा को कान तक खींचकर तीर छोड़ा। तीर सनसनाता रात्रि के अन्धकार को चीरता हुआ ऊपर से निकल गया। भोजराज घोड़े पर नीचे झुक गये थे। भीमदेव ने एक भी क्षण खोये बिना घोड़े को आगे बढ़ाया और भोज की नीचे झुकी हुई गरदन में धनुष की प्रत्यंचा डालकर अपनी ओर खींचा। हाथ से लगाम छूटते ही भोजराज का घोड़ा थोड़ा पीछे हट गया। अँधेरे में एक धमाका सुनाई पड़ा। भोजराज नीचे गिर गये थे। यह देखकर भीमदेव भी तत्काल घोड़े पर से कूद पड़े। उन्होंने अपने हाथ में से खिसकते हुए धनुष को पुनः जल्दी से पकड़ लिया। ठीक उसी समय रास्ते पर मशाल का उजाला फैल गया। समीप की छोटी पगडंडी की राह कोई जंगल में से बाहर निकल आया। 'कौन है, देवराज ?' एक मृदु-मधुरस्वर सुनाई पड़ा। मशालवाला अचकचाकर वहीं खड़ा रह गया। देवराज चौंक उठा।

इतने में तो महाराज भोजराज का धूल में घिसटता हुआ उपवस्त्र उठाने के लिए उनका एक रक्षक आगे आया।

क्या हुआ है यह देखने के लिए दामोदर महाराज भीमदेव के समीप आया। उसने नीचे धूल में घिसटते और धनुष से खिंचते हुए भोजराज को देखा।

तभी महाराज भीमदेव अपनी पीठ पर किसी के मृदु कर स्पर्श से चौंके। उन्होंने सुना—'महाराज ! राजा तो अवध्य होता है। इन्हें जाने दीजिये, छोड़ दीजिये।'

भीमदेव ने जल्दी से पीछे घूमकर देखा तो वहाँ चौला खड़ी थी। धनुष की प्रत्यंचा से गला छूटते ही भोजराज लपककर पास खडे हुए घोडे पर सवार हो गये। किसी के कुछ बोलने के पहले ही उनके रक्षकों ने घोड़े को साथ लिया और दौड़ा दिया। दूसरे क्षण तो भागकर जाते हुए घुड़सवारों की टापों की ध्वनि ही अन्धकार में गूँजती रह गई।

'अरे चौला—तू यहाँ कैसे ?' भीमदेव घोड़ों की टापों की उस आवाज को कुछ सुनते और कुछ न सुनते हुए-से बोल उठे।

'महाराज मेरा स्थान तो आपके पराक्रमी चरणों के सान्निध्य में ही है न ?'

दामोदर तत्काल समीप आकर बोला—'प्रभु ! अब एक भी क्षण गँवाना उचित नहीं। भोजराज तो बचकर भाग गये हैं। और हमारे ऊपर चित्रकोट से सेना आयेगी—देखिये—वे हमारे घुड़सवार आते जान पड़ रहे हैं—चलिये महाराज !'

चौला के हाथ का सहारा लेकर भीमदेव घोड़े पर सवार हुए। सभी ने तत्काल घोड़ों को एड़ लगाई।

'महाराज!' दौड़ते हुए घोडे पर सवार चौला भीमदेव से कह रही थी—'मैं तो पाटन में इस विजयोत्सव के समाचार पहुँचाकर, वहीं महाराज की प्रतीक्षा करूँगी। मेरे साथ देवराज है। महाराज तो चन्द्रावती होकर आनेवाले हैं न, दामोदर ?'

'हाँ, देवी।'

'ठीक है—देवराज, अब अपना रास्ता सँभालो; पाटन की ओर जानेवाला मार्ग पकड़ो। इस बीच महाराज भी चन्द्रावती होकर लौट आयेंगे। भोजराज को तो इस समय सरस्वती-कंठाभरण के साथ अनायास ही प्राप्त धनुर्ज्या-कंठाभरण-पाश की चिन्ताग्नि जला रही होगी!'

३२. पाटन में

चौला देवी पाटन लौट गई। महाराज भीमदेव और दामोदर तो पूर्व निश्चयानुसार चन्द्रावती होकर ही लौटने को थे। पाटन की नगरी में जब अर्बुद, नड्डूल और धारापति के समाचार पहुँचे तो जनता बड़ी हुलसित हुई। नगर में उत्सवों की बाढ़ ही आ गई।

महाराज की बहुत-सी सेना लेकर बालुकराय तो कभी का श्रीमाल-भिन्नमाल के रास्ते सिन्ध की ओर चल दिया था। पाटन से भी बहुत-सी सेना रवाना होनेवाली थी। एक तीसरा दल मकवाणा के कीर्तिगढ़ से हमला करनेवाला था। जूनागढ़ का रा' भी आ रहा था।

महाराज भीमदेव पाटन रुककर तब सिन्ध की ओर प्रस्थान करेंगे और इसी लिए पाटन आ रहे हैं, जब यह समाचार पाटन में पहुँचे तो सवेरे से ही नगर के समस्त रास्तों पर सुगन्धित जल का छिटकाव होने लगा। स्थान-स्थान पर गीत-नृत्य आरम्भ हो गये। मंगल-वाद्य बजने लगे। सारा शहर सजाया जाने लगा। पाटन के नागरिक तो इतने उल्लसित हो रहे थे कि यदि उनका वश चलता तो आज आकाश-गंगा में विचरण करनेवाले गजराजों की सूँड में से कमल लाकर उन्हीं की माला के तोरण बाँधते। नौबतों के निनाद, शंखों की मंगल-ध्वनि, वीरों के धनुषों की टंकार, नारी-वृन्द के गीत, गानेवालियों के मधुर आलाप, हस्ति-सेना और अश्व-सेना की हलचल, नगरपतियों के हुलास और शिशु-समुदाय के वादन से उस दिन पाटन नगरी ऐसी शोभित हो रही थी, मानो इन्द्र का स्वागत करने के लिए इन्द्रधनुर्माला से सजी हुई अमरा-

वती ही हो। पट्टनियों (पाटन-निवासियों) ने प्रत्येक हाट-बाजार के चौराहे पर सोने के कलशों की स्थापना कर तोरण के स्थान पर पुष्पमालाओं से स्पर्धा करनेवाली मौक्तिक मालाएँ लटकाई थीं। आज गुर्जर नारी अत्यधिक गौरव का अनुभव कर रही थी; उसे अपनी हवेली के पास खडे रहकर महाराज की सवारी देखने के आनन्द के आगे स्वर्ग की आकांक्षा भी तुच्छ मालूम पड़ रही थी। जिनके सिर के सब बाल सफेद हो गये थे ऐसे वृद्ध भी जीवन के इस महोत्सव का रसास्वादन करने के लिए स्थान-स्थान पर खड़े थे। उल्लास रूपी समुद्र की उत्ताल तरंगों पर चढ़ी हुई जनता बार-बार जय-ध्वनि करके आकाश को गुँजा रही थी।

इतने में तो एक छोटे पर्वत-जैसा और सूर्य की किरणों में झिलमिलाती सोना-रूपा मुकुटावली से शोभित, महाराज भीमदेव का गजराज जयश्री मन्थर गति से नगर के मुख्य द्वार में प्रवेश करता हुआ दिखाई दिया। उसके पीछे हाथियों की, अश्वों की और पदातियों की पाँतें लगी हुई थीं। सारे शहर ने 'जय सोमनाथ' की घोर गर्जना की जो पाटन के कोट-कंगूरों से टकराकर प्रतिध्वनित होती चली गई। नगरपति की कन्या ने महाराज के गजराज का कुंकुम-अक्षत से स्वागत किया और उसकी सूँड में लंका के बड़े-बड़े सच्चे मोतियों की माला थमा दी। हाथी ने वह माला महाराज के कंठ में पहना दी। इस पर एक बार पुनः जय-ध्वनि से आकाश काँप गया।

महाराज के पीछे ही दामोदर का गजराज आ रहा था। जनता ने उसका भी हर्ष-ध्वनि से स्वागत किया। दोनों हाथ जोड़कर सब को प्रणाम करते हुए मंत्रीश्वर ने नगर-निवासियों के प्रेम को देखा, अनुभव किया। पट्टनियों ने स्थान-स्थान पर स्वर्ण-कमल, सोने के कलश, मौक्तिक मालाएँ और रत्न-खचित मंडप स्थापित किये थे। उनकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया था। केवल दामोदर ही उन्हें देख रहा था और मन-ही-मन सोच रहा था। इस समय उस महामंत्रीश्वर के हृदय में एक बड़ा ही

अटपटा प्रश्न आ बैठा था—'कहीं इतना अधिक वैभव पतन का कारण तो नहीं होगा ?' मालवा की सभा में चौला ने वैभव और पतन के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में जो कुछ कहा था वह इस समय उसे बार-बार याद आने लगा। अपने मन के इस ऊहापोह को मन मे ही दबाने के प्रयत्न में वह कुछ क्षुब्ध भी हो चला था।

अभी वह इस प्रश्न की सागोपाग विवेचना करने भी नहीं पाया था कि वृद्ध चारण श्रीकंठ की बिरुदावली गूँजने लगी और उत्साह का वातावरण मानो नयी चेतना पाकर उल्लास की चरम सीमा पर पहुँच गया। श्रीकंठ बारोट ने अपनी प्रशस्ति मे जंगल-जंगल घूमकर अक्षय पाटन के संस्थापक कुमार वनराज से लेकर दो-दो शत्रुओं के रहते हुए भी निर्भयतापूर्वक विचरण करनेवाले महाराज मूलराज तक का यशोगान किया। इसे सुनकर लोक-समुदाय और भी उमंगित हुआ।

बूढ़े बारोट ने लोगों के हृदयों को आकर्षित कर अपने वश में कर लिया और फिर मधु-मक्खियों के समूह की तरह उन्हें अपनी वाणी का अनुसरण करने के लिए विवश कर दिया। आज तो उस बूढ़े बारोट की शान ही निराली थी। उसके वर्णन में चामुण्डराज आये· अत्यन्त जनप्रिय वाचिनी देवी आई; शस्त्रधारिणी नारियाँ आईं; दुर्लभराज आये; लाट आया; लाटपति आया; पट्टनियों की विजय का उल्लेख हुआ। और यह सब सुनकर लोग मानो विजय की विजया के नशे मे पुनः मस्त हो गये। फिर उसके वर्णन में सोमनाथ आया; गर्जनक आये; यम-जिह्वा-जैसी अपनी कृपाण से सोमनाथ-समुद्र के जल को गर्जनकों के रक्त से रँगनेवाले रणतोंकुरे भीमदेव आये; नड्डूल, नड्डूल-विजय, और अर्बुदपति की शरणागति का उल्लेख हुआ; मालवराज का द्वन्द्व-युद्ध आया; भोजराज गिरा, उठा, दौड़ा और भाग गया; महाराज ने उसे अवध्य मानकर जाने दिया; महाराज का अभिनन्दन करती हुई चौला देवी आई—श्रीकंठ बारोट की वाणी ने—प्रजा की शिरा-शिरा को उत्साह

के समुद्र में खींचती हुई उसकी वाणी ने—इन सब घटनाओं का उल्लेख किया। और लोगों ने हर्षोन्मत्त होकर बार-बार 'महाराज भीमदेव की जय' और 'चौला देवी की जय' के जयकारे लगाये।

दोनों ओर खड़े हुए मानव-समूह के बीच से होकर महाराज का गज-राज मन्थर गति से आगे बढ़ रहा था। अटारियों पर महाराज के दर्शनार्थ खड़ा नारी-समूह ऐसा लग रहा था मानो आसमान के आँगन में तारिकाएँ जगमगा रही हों।

महाराज भीमदेव का गजराज सीधा चौला देवी के निवास-स्थान की ओर बढ़ गया।

सोलंकी कुल में जिसे आज तक किसी ने नहीं किया था वही आज महाराज भीमदेव कर रहे थे। बहुतों ने वारांगना को हृदय से प्यार किया था, गुप्त प्रेम से समादृत किया था, परन्तु वीर योद्धा की स्पष्टता से महाराज ही सर्वप्रथम प्रजा के हृदय को जीतकर अपनी प्रियतमा को राज-रानी के पद पर प्रतिष्ठित करने का साहस कर रहे थे।

महाराज का गजराज चौला के महल की ओर जा रहा था। चौला ने जिस अवसर के विषय मे कहा था वही आज उपस्थित हुआ था। विज-योत्सव में मतवाली जनता महाराज का सत्कार कर रही थी।

महाराज का आगमन देखती हुई चौला अपने महल के झरोखे मे खड़ी थी।

उसने महाराज को आते हुए देखा; उनके पीछे आते हुए दामोदर को देखा; श्रीकंठ बारोट को देखा; अपार लोक-समूह देखा; और हर्षोन्मत्त जनता को भी देखा। वह महाराज का स्वागत करने के लिए सोत्साह नीचे की ओर दौड़ी।

महाराज भीमदेव का गजराज पैर मोड़कर नीचे बैठ गया। महाराज ने अपनी गरदन झुका दी। चौला ने महाराज के गले में मोतियों की माला पहनाई। जनता ने हुलस हुलसकर महाराज और महारानी चौला

देवी की जय-जयकार की ।

अब तक चौला महाराज की प्रियतमा थी। आज विजयोत्सव में बावली जनता ने उसे महारानी के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया था। महाराज और महारानी को लेकर जयश्री राजभवन की ओर चल पड़ा ।

३३. दामोदर ने माँगा

महाराज भीमदेव को बालुकराय और मकवाणा की सेना से मिलने की जल्दी थी, इसलिए पाटन मे थोड़ा समय बिताकर वह रवानगी की तैयारियाँ करने लगे। उनके सिन्ध की ओर के विजय-प्रस्थान के उपलक्ष मे घर-घर मंगलोत्सव हुए। पाटन में पुनः हर्ष की हिलोर आई। रथियों, पदातियों, साँढ़नी-सवारों, हाथियों, गाड़ियों, पालकियों, गधों, बैलों और असंख्य मनुष्यों से निर्मित महाराज की सेना सिन्ध-जैसे भयंकर और विकट रेगिस्तान में जा रही थी। हम्मुक बहुत बलवान था। उसके जलदुर्ग की अनेक किंवदन्तियाँ लोगों मे प्रचलित थीं। ऐसे बलवान शत्रु के विरुद्ध पाटनपति जा रहे हैं, इस विचार मात्र से प्रत्येक पट्टनी का हृदय गर्व से पुलकित हो रहा था। मंगल वाद्य बजने लगे, शंख-ध्वनियाँ होने लगीं, चारणों की बिरुदावली से आकाश गूँजने लगा, नरसिंहे और रणभेरियाँ फूँकी जाने लगीं; धनुष-टंकार से आकाश काँपने लगा, और अनेक युवक तो अपनी प्रियतमाओं का सहवास छोड़ मरुस्थल में जाने के लिए घोड़ों पर उत्साहपूर्वक सवार होकर पाटन की सुन्दरियों के मंगल आशीर्वाद लेते हुए रवाना हो भी गये।

दूसरे दिन सवेरे यत्र-तत्र-सर्वत्र महाराज के सिन्ध-प्रयाण की बातें हो रही थीं; उसी दिन शाम को एक आदमी चुपचाप चौला देवी के राज-मन्दिर के पास आकर मौन खड़ा हो गया।

वह थोड़ी देर तक इसी तरह खड़ा रहा। इतने मे एक दासी ऊपर से नीचे आई—'पधारिए प्रभु ! देवी आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं !'

'महाराज हैं ?' उसने पूछा।

'नहीं प्रभु ! महाराज तो रानीजी के यहाँ गये हैं।'

'चलो, रास्ता दिखाओ।'

दासी एक गुप्त मार्ग से आगे बढ़ी। वह आदमी उसके पीछे-पीछे चलने लगा।

थोड़ी देर बाद वह चौला देवी के राजमहल मे प्रविष्ट हुआ।

वैभव तो उसने अनेक स्थानों पर देखा था, परन्तु इस प्रकार की कलात्मकता उसे कहीं देखने को नहीं मिली थी। इस राजमहल का तो कोना-कोना मानो सजीवन हो रहा था। उस समृद्धि को देखता हुआ वह क्षण-भर वहीं ठिठका खड़ा रह गया।

कहीं मूकवाणी के मौन स्वर दृष्टि से ओझल बने रहकर भी आकर्षक ढंग से मुखर हो उठे थे, तो कहीं तोता-मैना की सरस वाणी सुनाई पड़ रही थी। एक स्थान पर युगों-युगों की तृषातुर रति कामदेव की ओर देख रही थी तो दूसरी जगह भगवान् चन्द्रमौलीश्वर उमा को रिझा रहे थे।

यह सब देखता हुआ वह व्यक्ति वहीं ठिठका खड़ा रहा। उसे इस तरह खडे थोड़ी देर हुई होगी कि इतने मे एक मधुर स्वर उसके कानों में सुनाई पड़ा—'आचार्यजी ! पधारिये ! यहाँ इस आसन पर विराजिये।'

उव्वट आगे बढ़कर आसन पर बैठ गया। उसके सामने प्रणाम करती हुई चौला खड़ी थी।

'आखिर आप आ ही गये न ?' चौला ने कहा।

'तुमसे जब कह दिया था कि आऊँगा तो फिर बिना आये कैसे रहता !'

'कल तो महाराज सिन्ध की ओर प्रयाण कर रहे हैं !'

'तभी तो मैं तुम्हारे पास आया हूँ, देवी, तुमने मुझसे कहा था, इसी लिए—बताओ, महाराज से मेरे बारे में बातें हुई ? कल तो महाराज सिन्ध पधार जायेंगे।'

'महाराज के साथ तो बात हो गई है; किन्तु मंत्रीश्वर दामोदर एक

नयी ही बात कहते हैं।'

'क्या ?'

'आचार्य देव ! जिस पाटन मे मूलराज और वाचिनी देवी-जैसे हो गये हैं, जहाँ वनराज और रूपसुन्दरी हुई, जहाँ विमल मंत्री, दामोदर और महाराज-जैसे आज हैं—ऐसे उस पाटन को यदि समस्त भारतवर्ष का महान केन्द्र बनाना हो तो मंत्रीश्वर का कहना है कि उन्हें और भी महान व्यक्तियों की आवश्यकता होगी। और महान व्यक्तियों के बारे में मंत्रीश्वर का खयाल भी बड़ा ही विचित्र है। उनके लेखे तो जो अपने शरीर को काम में गला दे वही महान है। सिन्ध के बारे में तो यही समझिये कि महाराज ने उसे जीत लिया; परन्तु क्या मालवा उतनी आसानी से जीता जा सकेगा ? मंत्रीश्वर को मालवा के लिए आदमियों की आवश्यकता है।'

तभी एक दासी दौड़ती हुई आई—'देवी ! मंत्रीश्वर आ रहे हैं. . '

'देवी ! मैं तो आपका मंगल आशीर्वाद लेने आया था। अरे ! यह कौन ? आचार्यजी ! आप यहाँ कहाँ से ?' दामोदर ने दासी के पीछे ही प्रवेश किया था, उव्वट को देख, दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हुआ वह वहीं खड़ा हो गया।

'कब—अभी ही आये ?'

'मैंने तुमसे कहा था न, मंत्रीश्वर, कि यदि आचार्यजी को यहाँ बुला लिया जाये—उज्जैन से—तो—यह अपने आनन्दनगर के हैं।' चौला ने कहा—'इसी लिए यह आये हैं।'

'परन्तु एक बात है, देवी ! और वह विचारणीय है !' दामोदर ने कहा।

'कौन-सी ?' उव्वट ने पूछा।

'देवी के चित्रकोट जाने पर आपने जो सहायता दी वह अनमोल थी। उसी पर से देवी ने आपको यहाँ बुलाया है। महाराज के समक्ष भी

बात हो चुकी है। परन्तु मेरी एक धारणा है। वह यह कि पाटन में अभी जो कुछ भी सर्वोत्तम है—वह चाहे युद्ध-क्षेत्र में हो, धर्म में हो, विद्या, बल अथवा सम्पत्ति के क्षेत्र में हो, तात्पर्य यह कि जो भी सर्वोत्तम हो, वह सब इस महान नगरी के चरणों में समर्पित कर दिया जाये और व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को और अपने-आपको गौण बना ले तो निस्सन्देह पाँच, पन्द्रह या पचीस वर्षों में यह नगर इतना महान हो सकता है कि विशाला* या धारा की कोई बिसात न रह जायेगी, और गुजरात एक महान एवं शक्तिशाली देश के रूप में गौरवान्वित हो सकेगा।'

चौला दामोदर की बात सुनती रही। दामोदर ने आगे कहा—'इतना तो हो जायेगा, देवी, कि आचार्य उव्वट को महाराज यहाँ दो-एक गाँव प्रदान कर देंगे और विद्यापति के रूप में उनका आदर भी करेंगे: उनकी कीर्ति को सुनकर अनेक विद्वत्सभाएँ उन्हें निमंत्रित भी करेंगी, परन्तु इतना सब होते हुए भी एक बात नहीं हो पायेगी।'

'सो क्या?' आचार्य उव्वट ने पूछा।

'देव! राष्ट्र का निर्माण भी कड़ी तपस्या चाहता है। मुझको, आपको और हमारे-जैसे सभी को राष्ट्र में केवल विलुप्त हो जाना होता है तभी राष्ट्र महान हो सकता है। आप मालवा मे बैठे हैं, तो किसी दिन यह गरीब दामोदर भी वहाँ आ सकता है।'

'आप जब चाहें, बड़ी प्रसन्नता से आइये, मंत्रीश्वर! मेरे अतिथि को राज-सेवक भी कुछ नहीं कह सकते।'

'नहीं, देव! मेरा अभिप्राय यह नहीं है। महाराज सिन्ध पर आक्रमण करने जा रहे हैं। यह युद्ध बड़ा ही भयंकर और कठिन है। इसमें विजय तो हमारी होगी ही, परन्तु उस विजय का मूल्य चुकाना पडेगा। जब महाराज सिन्ध से लौटेंगे तब अवन्तीनाथ उसी समय हम पर आक्रमण

* उज्जैन

कर देंगे। हमें उस लड़ाई को लड़ना नहीं है। मालवा पाटन को लड़ने के लिए बाध्य करे उसके बदले पाटन ही मालवा को युद्ध के लिए बाध्य करना चाहता है। विजय का मूलमंत्र भी यही है कि मालवा को मुँह-माँगा युद्ध न दिया जाये—जब वह चाहे तब नहीं, बल्कि जब हम चाहें तभी युद्ध हो। और इस काम को करने के लिए वहाँ किसी का रहना आवश्यक है। यदि आप वहाँ रहेंगे तो हमारे संधिविग्रहक को अपने काम में बड़ी मदद मिलेगी। क्या आप पाटन के लिए इतना कठोर और असहनीय परदेश-वास नहीं कर सकेंगे? यहाँ आकर आप महान बनें, उसकी अपेक्षा वहाँ रहकर आप किसी गिनती में न रहें, लघु ही बने रहें, परन्तु वहीं रहें—इतना मैं आपसे पाटन के लिए और पाटन की ओर से माँगता हूँ। कहिये, यह आपसे हो सकेगा?'

'मंत्रीश्वर!' उव्वट कुछ खिन्न होकर बोला—'मालवा में मैंने इतने वर्ष बिताये हैं कि मेरे सिर के बाल सफेद हो गये। आज तक मैंने एक दिन के लिए भी पुत्र, पुत्र-वधू अथवा किसी आप्तजन के साथ स्वदेश में रहने का सुख नहीं जाना। अब मुझे प्रतिक्षण अपनी मातृभूमि याद आती है और उज्जैन की महानगरी सूनी-सूनी लगने लगी है। मैं तो गुजरात लौट आना चाहता हूँ।'

'तब अवश्य लौट आइये। महाराज की आज्ञा से अभी ही आपको एक गाँव मिल जायेगा। वहाँ बस जाइये और एक विद्वत्सभा की स्थापना भी कर लीजिये। प्रभु! पाटन को जिस समय आपकी आवश्यकता है उस समय आपके द्वारा इतने सुखद जीवन की इच्छा करना मुझे जरा भी नहीं खटकता, क्योंकि आप वृद्ध हैं, पूज्य हैं, और बहुत दिनों से विदेश में रहते-रहते थक भी चुके हैं। परन्तु एक बात का मुझे जरूर बुरा लग रहा है और वह यह कि इस नगरी को जिस समय महान व्यक्तियों की आवश्यकता है उस समय यदि महान व्यक्ति इसे नहीं मिले तो एक दिन वह भी आयेगा जब महान दिखलाई देती इस नगरी

के कोट-कंगूरे धूल मे मिल जायेंगे—' दामोदर शोक-संतप्त स्वर में बोला। उव्वट उसके शब्द सुनकर विचार-मग्न हो गया।

'प्रभु ! महाराज इसी ओर आ रहे हैं !' एक दासी ने दौडे आकर कहा।

उव्वट चुपचाप बैठा रहा। चौला उठकर महाराज की अगवानी करने के लिए सामने गई। दामोदर किसी दूसरे विचार मे मग्न हो गया।

भीमदेव कल प्रातःकाल युद्ध के लिए प्रयाण कर रहे थे। आज राजमहल मे सबसे मिलकर वह चौला के यहाँ आये थे। उन्होंने दामोदर को देखा और उससे कुछ कहने जा ही रहे थे कि उव्वट को देखा और दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

'देव !' भीमदेव ने हाथ जोड़कर उव्वट को प्रणाम करते हुए कहा—'मुझे आपसे क्षमा-याचना करनी है। गुजरात के इतने महान विद्वान का मालवा के राज्याश्रय में रहना तो गुजरात के लिए कलंक की बात है। इसी लिए मैंने आपको सन्देशा भिजवाया था। आप पधारे यह बहुत ही अच्छा किया। अब यहीं आइये, यहीं रहिये। हम भी विद्वत्सभा की स्थापना करेंगे। एक गाँव आपकी भेंट कर रहा हूँ, स्वीकार कीजिये. ..'

'महाराज !' उव्वट ने हठात् उत्तर दिया—'मैं अकिंचन ब्राह्मण—गाँव लेकर क्या करूँगा ?'

दामोदर और चौला दोनों ही उव्वट की यह बात सुनकर चौंके। उधर उव्वट ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा—'मैं जब तक अकिंचन हूँ, मेरी मा सरस्वती तभी तक मुझे अपनाये हुए है। मैं तो मालवा में ही रहूँगा, और वहीं रहकर अपनी जन्मभूमि का स्मरण करता रहूँगा। महाराज, मुझे तो अब कंचन का मोह रह नहीं गया। मालवराज पंडित-जनों को इतना अधिक कंचन देते हैं कि अब अकिंचन बने रहने मे ही पंडितों का गौरव है। महाराज सिन्ध जा रहे है, इसलिए केवल आशीर्वाद देने के लिए मैं इस अवसर पर चला आया हूँ। मालवा की शंका

मिटाने के लिए मुझे शीघ्र ही लौटना होगा। आइये, महाराज! अधिक समय तक तो मैं रुक नहीं सकता।'

'अरे! परन्तु मैंने तो आपको गाँव देने के लिए..'

'महाराज! इसके लिए आपको किसी अधिक योग्य व्यक्ति को ढूँढ़ना होगा। मैं अपनी अकिंचनता छोड़ना नहीं चाहता। वही मेरी शक्ति है।' उव्वट ने शान्तिपूर्वक कहा। उसके शब्दों में पहले की खिन्नता का लेश भी नहीं रह गया था।

उव्वट एक ही क्षण में जिस अलौकिक निश्चय पर पहुँच गया था उसे सुनकर दामोदर और चौला मन-ही-मन वाह-वाह कर उठे।

'परन्तु दामोदर से भी पूछा?' महाराज बोले।

'महाराज! पाटन में केवल महान नृपतियों या महान मंत्रीश्वरों का होना ही काफी नहीं है। यहाँ तो महान ब्राह्मण भी होने चाहिये।' दामोदर ने कहा—'यह यहाँ आयें तो पाटन निश्चय ही विद्या से विभूषित होगा। यह तो पाटन की शोभा हैं, महाराज! इनके-जैसों के लिए निर्णय करनेवाले हम कौन होते हैं?'

उव्वट ने आगे बढ़कर भीमदेव को आशीर्वाद देते हुए कहा—'महाराज! आपकी सिन्ध-विजय अन्य अनेक विजयों को आमंत्रित करे।'

भीमदेव भी दोनों हाथ जोड़े उव्वट के समीप आये। उसके पास आकर उन्होंने सिर झुका दिया। उव्वट ने मंत्रोच्चार द्वारा उनके मस्तक पर मांगलिक आशीर्वादों का अभिषेक किया। थोड़ी देर बाद दामोदर और चौला को भी मांगलिक वचन कहता हुआ वह वहाँ से विदा होकर शीघ्रता से चल दिया।

चौला और दामोदर उसे जाते हुए देखते रहे। उसके अदृश्य होते ही महाराज ने दामोदर से कहा—'दामोदर! वह यहाँ नहीं आयेंगे!'

'महाराज! एक ही क्षण में उसने यह दिखला दिया है कि वह पाटन का ही है। वह कहीं भी क्यों न रहे, है एक महान पट्टनी ही। फिर

चाहे वह मालवा ही मे क्यों न रहे ।'

'रा' भी आ रहे हैं, दामोदर !'

'तब तो, महाराज ! हम्मुक-विजय में अब कोई सन्देह ही नहीं, रा' हैं, मकवाणाजी हैं ।'

'परन्तु वह तेरे मकवाणाजी हैं कहाँ ? अभी तक उनका कोई पता ही नहीं । क्या बतलाया जयदेव ने ?'

'जयदेव कह रहा था कि वह सुमरा की खोररी* पर हाथ साफ करने गये हैं ।'

'मकवाणाजी को यह कौन समझाये कि भैया, जिन्दगी को इस तरह व्यर्थ ही दाँव पर नहीं लगाना चाहिये !'

थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद दामोदर ने हठात् कहा—'महाराज, मुझे भी एक निवेदन करना है। कल सवेरे मंगल-प्रस्थान हो रहा है। सिन्ध तो जीता ही जायेगा—महाराज चेदिपति को भी अधीन करेंगे। यह सभी होगा, उसके बाद, महाराज, मेरे मन में भी इस उव्वट की भाँति अकिंचन बनने की अभिलाषा जागी है ।'

'अरे, कहीं पागल तो नहीं हुआ है ! क्या संन्यास लेने का इरादा है ? अभी तो मैं तेरे उपयुक्त किसी नारी-रत्न की तलाश ही कर रहा हूँ ।'

'महाराज ! जब पाटन का कोई शत्रु न रह जाये, तो मुझे सन्धि-विग्रहक का मेरा अति सामान्य पद पुनः दे दीजियेगा । इससे अधिक त्याग करने की सामर्थ्य तो मुझमें नहीं है ।'

'अरे, वाह रे ! पगले !'

महाराज को प्रणाम करके दामोदर विदा हुआ ।

---

* ऊँटों का तबेला

३४. मकवाणा सात सौ साँढ़निया ले आया

दूसरे दिन पाटन से मंगल-प्रस्थान करके महाराज भीमदेव की सेना सिन्ध की ओर चल दी।

सिन्ध का हम्मुक एक शत्रु के नाते महान और अजेय था। उसका जलदुर्ग अभेद्य समझा जाता था। दामोदर ने सेना द्वारा सिन्ध का विस्तृत रेगिस्तान पार करने के लिए सभी आवश्यक प्रबन्ध किये थे। साँढ़नी सवारों के साथ पानी की बड़ी-बड़ी मशकें रखवाई गई थीं। हस्ति-सेना को नदी के किनारे-किनारे ले जाने के आदेश दिये गये थे। पदाति और घुड़सवार भी पानी के सहारे ही आगे बढ़ रहे थे। परन्तु जैसे-जैसे सेना आगे बढ़ती गई और सिन्ध की सीमा दीख पड़ने लगी वैसे-ही-वैसे गर्जनकों से त्राहि-त्राहि करवानेवाली मृग-तृष्णाएँ भी रेगिस्तान में दिखाई देने लगीं। पानी की हिलोरें लेता, हरित-भरित भूमिवाला मृगजल दिखाई पड़ते ही साँढ़नी पर रखा नगाड़ा बजाकर सेना को सचेत कर दिया जाता था, जिसमें कोई उस भ्रान्ति के पीछे भाग-दौड़ करके हिम्मत न हार दे—नगाड़ा बजकर मानो कह देता था कि यहाँ किसी को हरियाली की आशा नहीं रखनी चाहिये, वह केवल दुराशा होगी। जहाँ तक नजर जाती विस्तृत और दुर्गम प्रदेश में, जगह-जगह रेती के बिलकुल निर्जीव, विकराल शुष्क धोरे ही दिखाई देते थे। ऐसे उस प्रदेश में यदि सेना रास्ता भूल जाती तो हजारों-हजार सैनिकों में किसका शव कहाँ पड़ा है इसका पता लगाना भी असम्भव हो जाता। वनस्पति का तो कहीं नाम-निशान भी नहीं था। और हरियालीवाली भूमि आकाश कुसुमवत् थी।

जगह-जगह सिर्फ, बबूल, रामबबूल, थूहर के ठूँठ, करील, कँटीली झाड़ियाँ, गोखरू और भटकटैया ही दिखाई देते थे। कहीं-कहीं मरुस्थल का जलवृक्ष इस रेगिस्तान में आम्रवृक्ष से स्पर्धा करता हुआ प्रतीत होता था। ऐसे विकट प्रदेश में रास्ता ढूँढ़ना भी बड़ा मुश्किल था। इस प्रदेश के जानकार सेना के साथ थे और उन्हीं की मदद से महाराज भीमदेव के सैनिक आगे बढ़ रहे थे। परन्तु ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते गये रेगिस्तान की विकरालता भी बढ़ती गयी। बबूल और रामबबूल का मिलना एकदम बन्द हो गया। उनके बदले मन को लुभानेवाला मृगजल दीखने लगा। लहराता हुआ पानी दिखाई पड़ता; वनस्पति के हरे कुंज दिखते; हाथी, घोड़े और मनुष्यों की चलती हुई कतारें दिखतीं—पर ज्योंही चलते-चलते रुककर आदमी तृष्णा-भरी दृष्टि से इस मनोरम सृष्टि को देखने लगता वह भयंकर अट्टहास करके उसका उपहास करने लगती थी; क्योंकि आदमी के रुकते ही बालू की उड़ती हुई दीवालें उस दृश्य को दृष्टिपथ से ओझल कर देती थीं और चारों ओर बालू ही-बालू रह जाती थी। पाटन की सेना ने अनेकों युद्धक्षेत्र देखे थे, परन्तु यह रणक्षेत्र तो निराला ही था। थककर चूर हुए सैनिकों को मंडक (रोटी), वटक (बडे) या करभक (सत्तू)* तो ठीक, मीठा पानी और पेड़ की छाया भी ढूँढ़े न मिलती थी।

और जिस रेगिस्तान ने गर्जनकों को भी परास्त कर दिया था वह तो अभी आरम्भ ही हो रहा था।

फिर इस विकट रेगिस्तान को पार कर लेने के बाद सेना गढ़ जीत ही लेगी ऐसी भी कोई बात नहीं थी। इसके बाद हम्मुक का वनदुर्ग पड़ता था, फिर उसका कर्दमदुर्ग और उसके पश्चात् जलदुर्ग था। धीरे-धीरे सेनापतियों में एक राय के बदले सन्देह बढ़ने लगे। किसी को लगता कि

* ये तीनों शब्द 'द्वयाश्रय' से लिये गये हैं।

यह दुस्साहस सभी को मार डालेगा। किसी को लगता कि जो इस रणक्षेत्र से लौटकर चला जाये उसे भाग्यवान समझना चाहिये।

महाराज भीमदेव ने जो मार्ग चुना था वह यथासम्भव कम-से-कम विकट था और मार्गदर्शक भी महाराज के समर्थक और उनसे प्रीति करनेवाले थे। परन्तु जैसे-जैसे दिन बीतते गये थकावट, भूख और गर्मी के कारण अनेकों के दिल धड़कने लगे और तरह-तरह की शंकाएँ उपजने लगीं। किसी ने सुनी-सुनाई अफवाह उड़ाई कि हम्मुक जलदुर्ग में रहता है, उसके पास पारस-मणि है, जिसकी सहायता से जल में रास्ता बनाकर वह दुश्मन को हरा देता और फिर अपने जलदुर्ग मे जा बैठता है। किसी ने कहा कि नदी में इतने बड़े-बड़े मगर हैं कि उनके मारे पार करना असम्भव ही है। लेकिन इतना सब होते हुए भी अब सोलंकी सेना किसी तरह लौट नहीं सकती थी। या तो वह आगे बढ़े और हम्मुक को हराकर महान यश की भागी बने या फिर नष्ट हो जाये—इसके सिवा तीसरा कोई रास्ता नहीं था। बार बार महाराज के सेनापतियों की मंत्रणाएँ होने लगीं। मकवाणाजी का अभी तक कोई पता नहीं था। रा' तो अपने सैनिकों सहित महाराज से आ मिला था। परन्तु बालुकराय की सेना से अभी तक भेंट नहीं हो पाई थी। अभी तफवाहें उड़ने लगीं कि हम्मुक अपना जलदुर्ग छोड़कर हजारों सॉढ़नियाँ लिये बढ़ता चला आ रहा है। सारी सेना पर एक तरह की दहशत छा गई। सभी को लगने लगा कि अब मृत्यु समीप आ गई है। मरने का तो किसी को डर नहीं था, परन्तु उस रेगिस्तान में बे-मौत मरने का डर सभी को था।

महाराज भीमदेव की पट्टकुटी में सेनापतिगण परिस्थिति पर विचार करने बैठे।

'सुनो, भाइयो! मुझे आप सभी से एक बात कहनी है—यह रेगिस्तान का रास्ता है। जैसे-जैसे आगे बढ़ते जायेंगे इसकी दुर्गमता भी बढ़ती जायेगी। परन्तु आगे बढ़ेंगे तो मकवाणाजी मिलेंगे, बालुकराय

मिलेंगे और रास्ता भी आसान होता जायेगा। अगर यहीं युद्ध करने के लिए रुक गये तो नाहक ही घिर जाओगे। बाकी तो जैसा महेता कहें. . .' रा' ने सारी बात दामोदर पर छोड़ दी।

'जो होना हो, भले ही हो; पर हम्मुक को घेरे बिना तो छुटकारा है नहीं!' दामोदर ने कहा।

'लेकिन हम्मुक होगा तभी न घेरोगे, या बगैर हुए ही घेर लोगे?' भोगादित्य ने कहा। वह महासंधिविग्रहक होने के नाते अपने-आपको बहुत ही महत्वपूर्ण व्यक्ति समझता था। मंत्री-पद प्राप्त करने की उसकी अभिलाषा थी। दामोदर से उसे ईर्ष्या का कोई खास कारण तो नहीं था; परन्तु यदि दामोदर न रहे तो वह जो बन सकेगा—यानी तब वही मंत्रीश्वर होगा—यह बात कुछ कम आकर्षक न थी। इसी लिए उसने दामोदर के दुस्साहस के बारे में धीमे-धीमे बातें करना शुरू कर भी दिया था।

दामोदर ने कहा—'किसने कहा कि हम्मुक जलदुर्ग में नहीं है?'

'यह तो हमें खुद ही समझना चाहिये! क्या वह पागल हुआ है जो हमें यहाँ हराने का इतना आसान तरीका छोड़कर अपने जलदुर्ग में घुसा बैठा रहेगा, और अपने-आपको घिर जाने देगा?'

'अपने-आपको वह उस दुर्ग में अजेय समझता है, यह तुम जानते हो या नहीं? हमने उसकी बहुत-सी बातें मालूम कर ली हैं। वह सबको थकाकर जलदुर्ग में पैठ जाता है।'

'यही तो मैं भी कह रहा हूँ। वह हमे यहाँ थकाने के लिए आयेगा और फिर अपने जलदुर्ग में जा घुसेगा। तब तुम उसे कहाँ ढूँढ़ोगे?' चंड शर्मा ने कहा।

अपने इस दुस्साहस के बारे में महाराज के मन में शंका का बीजारोपण करने के उद्देश्य से उन दोनों का बोलते देखकर दामोदर क्षण-भर के लिए चुप हो गया। फिर उसने कुछेक दृढ़ स्वर में कहा—'भोगा-

दित्य ! तुम्हारे लिए तो यह पहला ही युद्ध होगा; पर मैं तो जन्म-घुट्टी पीने के दिन से लड़ रहा हूँ । युद्ध में वही विजयी होता है, जो प्रतिपक्षी के भेद मालूम कर लेता है । हमने मालूम कर लिया है कि हम्मुक को अपने जलदुर्ग पर असाधारण रूप से विश्वास है । इस अत्यधिक विश्वास के कारण उसकी सारी बुद्धि कुंठित हो गई है । समझे ? वह तुम्हें रास्ते में नहीं रोकेगा । वह जानता है कि तुम उसके जलदुर्ग से टकराओगे और वहीं नष्ट हो जाओगे । यही उसकी व्यूह रचना है । और वह इसी तरह रहेगी । हमें आगे बढ़ना चाहिये. ..'

'और कहीं बीच में रोके गये ?'

'तो बीच में ही युद्ध करेंगे !'

'परन्तु हमारी सेना तो तीन भागों में बँटी हुई है और वह पूरी सेना लेकर आयेगा !'

'अरे भाई ! यह क्या गोलमाल मचा रखा है । आगे तो बढ़ना ही है, फिर यह वाद-विवाद क्यों ?' रा' ने कुछ उकताकर कहा ।

'आगे जरूर बढ़ना है, परन्तु सब यहाँ इकट्ठा हो जायें उसके बाद ही ।'

'क्यों ?' दामोदर ने पूछा ।

'ताकि हमारा बल अखण्ड रह सके ।'

'देखो, इस बात को गाँठ बाँध लो कि महाराज हम्मुक को हराये बिना लौटेंगे नहीं और न अब किसी दल की प्रतीक्षा ही करेंगे । हम्मुक पर हमला करने का ठीक यही समय है । और जहाँ तक वालुकराय के आने का प्रश्न है सो वह तो बहुत ही धीमी गति से आ पायेंगे ।'

'धीमी गति से आयेंगे ? तब तो यही समझना चाहिये कि हम यहीं फँस गये ।' भोगादित्य ने कहा—'महाराज ! हमारी सेना विभक्त रही तो यह रेगिस्तान हमें निगल जायेगा । मेरी तो यही मान्यता है ।'

'दामोदर ! वालुकराय के धीमी गति से आने का कारण क्या है ?

यदि ऐसा हुआ तो हमें एक-दूसरे से मिलने के पहले ही अलग-अलग रोक दिया जायेगा !'

'महाराज ! चित्रकोट की बात तो आपको याद होगी ही ?'

'कौन-सी ?'

'वही, जिसे महाराज जानते हैं !'

'हाँ, अच्छा ! तो उससे क्या ?'

'दंडनायक ने कुलचद्र को जिस तरह पराजित किया और धंधूकराज को जिस तरह पुनः पाटन की छत्रछाया में ले आये क्या उसका बदला चुकाने के लिए कुलचंद्र व्यग्र नहीं हो रहा होगा ?'

'व्यग्र तो होगा ही; परन्तु उसकी व्यग्रता से हमे मतलब ? हम इस समय न तो आगे बढ़ सकते हैं और न पीछे ही हट सकते हैं। दोनों ही काम असंभव हैं। समझे ?'

'हाँ, मैं भी यही कह रहा हूँ, महाराज !' भोगादित्य ने कहा।

'तब तो, मेहता, यह बड़ा गड़बड़झाला हुआ !' रा' ने कहा।

'गड़बड़झाला कुछ नहीं है, महाराज ! राजनीति के सभी जानकार इस सूत्र को जानते हैं कि अगर घोड़े के बदले में हाथी मिल रहा हो तो हाथी को ले लेना चाहिये और घोड़े को छोड़ देना चाहिये; और यही समझना चाहिये कि घोड़ा तो खोया नहीं, परन्तु हाथी मिल गया। अभी कुलचन्द्र पाटन से लम्बा विग्रह तो नहीं ही करेगा। परन्तु यह भी हो सकता है कि हम सभी पाटन से दूर हों उस समय वह उधर आने के लोभ का संवरण न कर सके; इसी लिए बालुकराय इतना धीमे-धीमे आ रहे हैं। उनकी गति-विधि इस प्रकार है कि न पाटन से अधिक दूर रहें और न हमीं से अधिक फासले पर। यह इसलिए कि आवश्यकता होने पर दोनों ओर तत्काल सहायता पहुँचाई जा सके। मान लीजिये कि कुलचंद्र पाटन की ओर बढ़ ही आया तो क्या बालुकराय के उधर समीप रहने के कारण कोई फर्क नहीं पड़ेगा ? जरूर पड़ेगा और बड़ा फर्क पड़ेगा !'

दामोदर की इस दूरदर्शिता के लिए भीमदेव के मन में उसके प्रति सम्मान द्विगुणित हो गया और उन्होंने एक आदर-भरी दृष्टि उसकी ओर डाली। भोगादित्य ढीला पड़ गया। चंड शर्मा भी चुप हो गया।

'तो फिर तुमने यह क्यों कहा कि वालुकराय भिन्नमाल की ओर से आ रहे हैं? हम तो इसी बात को आधार बनाकर वैसा कह रहे थे!' भोगादित्य ने कहा।

'भोगादित्य! सत्य छिपा रहता है, उसे ढूँढ़ना सीखना चाहिये। यह भी एक व्यूह है! हर एक बात का ढिंढोरा तो पीटा नहीं जा सकता।'

दूसरे दिन सेना आगे बढ़ी। परन्तु मार्ग-दर्शकों के अनवरत प्रयत्न के बाद भी पानीवाला रास्ता ढूँढ़े न मिला। पानी के बिना सभी त्राहि-त्राहि करने लगे। दामोदर को पता चला कि रास्ते में जितने भी कुएँ थे हम्मुक ने उन्हें बालू से मुँदवा दिया था और इसी लिए पानी का असहनीय कष्ट हो रहा था। दामोदर ने उसी समय मार्ग-दर्शकों को बुलाकर मार्ग बदलने का आदेश दिया—हम्मुक को जिस मार्ग से उनके आने का अन्देशा था उसे छोड़कर बिलकुल दूसरा ही मार्ग पकड़ा गया।

उसी रास्ते पर सेना आगे बढ़ी। शाम होने आई। परन्तु गरमी अभी तक शान्त नहीं हुई थी। चारों ओर से 'पानी-पानी' की पुकारें मच रही थीं।

इतने में दूर क्षितिज पर साँढ़नियों का एक बड़ा टुल्लर दिखाई पड़ा। उसे रा' ने देखा। भोगादित्य ने देखा। दामोदर के कानों तक भी बात पहुँची। महाराज भीमदेव ने भी जल्दी-जल्दी दौड़ी आ रही साँढ़नियों के उस टोले को देखा। सभी को विश्वास हो गया कि हम्मुक सेना लेकर चढ़ा आ रहा है। अपना अनुमान गलत होते देख दामोदर कुछ व्यग्र हो गया। रा' ने तत्काल अपने आदमियों की मोर्चाबन्दी कर दी। एक पर्वत की ओट लेकर तीरन्दाज बैठ गये। गोफन चलानेवाले

भी तैयार हो गये। हम्मुक को चारों ओर से घेरने के लिए दामोदर ने सेना को फैलाने और टुकड़ियों में बाँटने की व्यूह-रचना आरम्भ कर दी। तभी किसी ने कहा—'अरे! यह तो मृगतृष्णा है। कोई आ नहीं रहा है। सिर्फ ऊँटों के काफिले की भ्रान्ति हो रही है!'

सब-के-सब और भी ध्यानपूर्वक देखने लगे।

परन्तु थोड़ी देर में तो टुल्लर ज्यादा अच्छी तरह दिखाई पड़ने लगा था।

एक क्षण बीता, तीरन्दाज़ खड़े महाराज की प्रतीक्षा कर रहे थे। वह टोला प्रतिक्षण समीप चला आ रहा था।

जब टुल्लर एक तीर के टप्पे पर रह गया और महाराज अपना तीर छोड़ने जा ही रहे थे कि सबसे आगेवाली साँढ़नी पर उनकी नजर पड़ी।

उसके ऊपर ढाटा बाँधकर बैठे हुए आदमी के हाथ में एक लम्बा भाला था और उस भाले से एक लाल-सुर्ख कपड़ा लटक रहा था। बार-बार उस कपड़े को हिलाकर वह मुँह से कुछ ऐसी आवाज निकाल रहा था, जिसे सुनकर साँढ़नियाँ इस तरह पीछे दौड़ी चली आ रही थीं जिस तरह माँस के टुकड़े पर चीलें झपटती हैं। और उस ढाटाधारी के साथ की साँढनियों पर बैठे आदमी गगनभेदी स्वरों से बिरुदावली गा रहे थे।

दो-चार या दस-बीस नहीं, बल्कि पूरी सात सौ साँढ़नियों का भारी टुल्लर उसके पीछे पागलों की तरह दौड़ा चला आ रहा था। मानो किसी जादूगर ने अभिमंत्रित कर दिया हो इस प्रकार वह टुल्लर लाल-सुर्ख कपडेवाले उस साँढ़िये के पीछे भागा आ रहा था। वह टुल्लर रेगिस्तान में किसी बड़ी सेना के चढ़ आने की तरह दिख रहा था। दामोदर उसकी ओर देखता रहा। जब वह पास आ गया तो दामोदर जोर से चिल्ला उठा—'देखिये, महाराज! कहीं तीर न चला दीजियेगा! यह तो केसर मकवाणाजी हैं!' मारे खुशी के उसकी आवाज फट गई थी।

'हैं!'

तत्काल सारी सेना गगनभेदी स्वर से 'जय सोमनाथ' के नारे लगाने लगी। क्षण-भर के लिए तो उन्हें रेगिस्तान के सभी कष्ट विस्मरण हो गये।

इस बीच केसर मकवाणा की रणबंकी आगे बढ़ आई थी। इस भयंकर रेगिस्तान में उसकी शोभा ही निराली थी। मकवाणा को पास आते देख महाराज बोल उठे—'अरे! मकवाणाजी! आप यहाँ कहाँ से? हमें व्यर्थ डरा मरा!'

'महाराज! मैं तो सुमरा की सॉढ़नियाँ लेता आया हूँ।'

मकवाणा की रणबंकी के रुकते ही सब सॉढ़नियाँ वहीं रुक गईं।

'ले आये! क्या कह रहे हो? यह काम किस तरह पूरा हुआ? यह तो तुम बाघ के मुँह में से दाँत ही उखाड़ लाये!'

'महाराज! उसका जलदुर्ग तो अभेद्य ही है। परन्तु मंत्रीश्वर की आज्ञानुसार पूरे जंगल-के-जंगल कट रहे हैं। इसलिए रास्ता हो जायेगा।'

'परन्तु तुम ये सॉढ़नियाँ कहाँ से—उसके जलदुर्ग से लाये हो?'

'नहीं-नहीं, उसका एक तबेला है—इस ओर जंगल के पास—वहीं से मार लाया हूँ।'

सात सौ सॉढनियों के टुल्लर के बीच खड़ी हुई मकवाणाजी की रण-बंकी को देखकर सेना में मानो नये जीवन का संचार हुआ।

'महाराज!' मकवाणा ने कहा—'अब आगे का रास्ता जाना-पहचाना और अच्छा है। पानी भी मिलेगा। अब तो सिर्फ इतनी ही साव-धानी रखनी है कि जगह-जगह नदी-नालों के किनारे उगे हुए नरकुल के झुरमुटों में से कोई छिपकर वार न कर दे। चलिये, इन सॉढनियों को ठिकाने लगाते हुए चलेंगे। रास्ते में गुर्जर सेना की जय-कथा गूँजती जायेगी। सॉढ़नियाँ भाट-चारणों को बाँटते चलेंगे। और इसी तरह हम्मुक के जलदुर्ग के समीप पहुँच जायेंगे।'

मकवाणा के बताये हुए रास्ते से पानी का प्रबन्ध करके और रात वहीं बिताकर, दूसरे दिन सवेरे सोलंकी सेना आगे बढ़ी।

३५. कुलचन्द्र ने पाटन को जीता और लूटा

इस बात की आशंका तो थी ही कि जब सोलंकी सेना रेगिस्तान में फँसी हो, तो कोई भी गुजरात पर आक्रमण कर, स्थायी रूप से उसे अपने अधिकार में कर सकता था। इस आशंका के निवारण के लिए दामोदर ने दूरदर्शिता से काम लिया था। और इसी लिए बालुकराय भिन्नमाल के रास्ते धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। इतना होते हुए भी एक संभावना की ओर दामोदर का भी ध्यान नहीं जा पाया था। वह तो अपनी इस मान्यता के आधार पर—कि मालवा गुजरात के साथ युद्ध नहीं करेगा, और अभी तो नहीं ही करेगा—सोलंकी सेना को सिन्ध पर चढ़ा ले गया था। परन्तु इधर जैसे ही पाटन की सुरक्षा कमजोर हुई, कुलचन्द्र के मन में एक नये विचार का प्रादुर्भाव हुआ। मालवा और कर्नाटक के बीच सतत चलते हुए युद्ध मे से उसे इस विचार की प्रेरणा मिली थी।

उसने सोचा—'गुजरात पर अभी बाकायदा चढ़ाई न की जा सके, तो न सही, बाद में देख लेंगे; परन्तु पाटन को लूटने में तो कोई हानि है नहीं! तो फिर क्यों न लूटा जाये?'

एक दिन अवसर देख उसने अपने मन की यह बात भोजराज के समक्ष निवेदित की—'महाराज! कर्नाटक और मालवा के युद्ध में दोनों नगरों की लक्ष्मी बार-बार हेरा-फेरी करती रहती है। मालवा और पाटन के पारस्परिक विग्रह में भी यदि ऐसा हो तो कवि परिमल-जैसों को नये यशः-गान लिखने का सुयोग मिल सकेगा।'

भोजराज ने सिर हिलाकर कहा—'यह तो केवल तृण-भोजन है, कुल-

चन्द्र ! जब रौंदना होगा तो गुजरात की वीरता को ही रौंदेंगे। अकेले और अनाथ पाटन पर क्या आक्रमण किया जाये?'

'महाराज! अपमानित होना भी एक तरह की पराजय ही है। उन्होंने हमको अकस्मात् चुनौती दी—यह सच है कि वह हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सके; परन्तु उस समय उन्होंने हमारी प्रतिष्ठा को तो ठेस पहुँचा ही दी—इसलिए हमें भी पाटन की प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाना चाहिये, और उसके लिए यही ठीक समय है!'

'कुलचन्द्र! मुझे दो काम अच्छे नहीं लगते हैं—थोड़ा दान और छोटा युद्ध।'

'छोटा युद्ध तो, महाराज! हम लड़ेंगे। जब महाराज युद्धक्षेत्र में उतरेंगे उस समय तो आकाश धूल से भरेगा।'

'परन्तु ऐसे भगोडे युद्ध का परिणाम क्या होगा?'

'जब विपक्ष में चेदिपति या कुन्तलेश्वर हों, तभी महाराज की गज-सेना के घंटा-नाद से आकाश गूँजना और हयदल की हिनहिनाहट और टापों से जंगल प्रतिध्वनित होना चाहिये, परन्तु यह पाटनपति तो स्वयं ही भगोड़ा है—ऐसों के विरुद्ध तो ऐसा छोटा, भगोड़ा युद्ध ही होना चाहिये। मालवा की चतुरंगिणी सेना को वहाँ ले जाना उसे आवश्यकता से अधिक महत्व देना है, महाराज!'

'कौन जाना चाहता है—तू या सूरादित्य?' भोजराज ने पूछा।

'जाना तो मैं ही चाहता हूँ—यदि महाराज की आज्ञा हो!'

'अच्छी बात है, चले जाना; परन्तु कहीं तू किसी सुन्दरी के प्रेम मे तो नहीं पड़ गया है?'

'यह आप किस बात के आधार पर कह रहे हैं, महाराज?'

'यह तो मालव देश की विशेषता ही है, कुलचन्द्र! यहाँ प्रेम और पराक्रम साथ चलते हैं। आज तक कोई पुरुष मालवा की मुग्धा, रस-मुदिता ललना का प्रेम बिना पराक्रम के प्राप्त नहीं कर सका है। तुझे

भी पराक्रम करके संभवतः किसी रमणी को प्रसन्न करना है। बड़ी खुशी की बात है, पर यह तो बतला कि वह रमणी कौन है ?'

'अरे ! महाराज ! मुझ-जैसे साधु के लिए कैसी तो स्त्री और कैसी प्रेम की बातें !'

'क्यों, प्रियतमा, प्रेम और पराक्रमवाला जीवन क्या तुझे अच्छा नहीं लगता ?'

'अच्छा तो लगता है, परन्तु विधाता ने यदि इन तीनों का संयोग कर दिया तो फिर कविता करने को क्या रह जायेगा ?'

'यदि तेरे पास प्रियतमा और प्रेम रहे तो तीसरा भी अवश्य मिल जायेगा।'

'अथवा यों कहिये, महाराज, कि यदि मेरे पास तीसरा यानी पराक्रम हुआ—तो पहले दोनों भी मिल जायेंगे। अब, महाराज, आज्ञा दीजिये तो मैं प्रस्थान करूँ !'

'परन्तु एक बात विचारणीय है, कुलचन्द्र ! पाटन में सेना तो नहीं है, परन्तु पट्टनी अवश्य हैं !'

'महाराज ! सेना के बिना कभी नगरों की रक्षा होते सुनी है आपने ?'

'मेरे कहने का अभिप्राय दूसरा ही है—तू पाटन को तो जीत लेगा परन्तु क्या पट्टनी भी जीते जा सकेंगे ?'

'अरे ! महाराज ! जब गुजरात के आभूषणों से भूपित नर्तकियाँ महाकालेश्वर के मन्दिर मे नृत्य करेंगी तो उनकी गाथाएँ रचते हुए विद्वत्सभा के कविगण भी गौरव से प्रफुल्लित हो उठेंगे !'

दूसरे दिन कुलचन्द्र ने सेना सन्नद्ध करने का तिंतिबा किये बिना भिन्न-भिन्न मार्गों से सैनिकों को इस तरह चुपचाप पाटन की ओर रवाना किया कि किसी को कानोंकान खबर न हुई। नड्डूल को तो इस बात की जानकारी होने की कोई सम्भावना थी नहीं। परन्तु अर्बुदपति की सजग दृष्टि से बचकर निकल जाना असम्भव ही था। इसलिए कुलचन्द्र ने

वागड में होकर लम्बे रास्ते से पाटन की ओर प्रयाण किया।

एक दिन शाम को जब पाटन के नागरिक दुर्लभ सरोवर में नौका-विहार कर रहे थे, और किनारे पर जलते हुए दीपकों के प्रकाश से सरोवर का स्वच्छ जल ऐसा लग रहा था मानो तारों-भरा नीला आकाश ही धरती पर उतर आया हो, तभी अकस्मात् डुग्गी पीटनेवाले की आवाज सुनाई दी—'मालवी सेना लेकर कुलचन्द्र पाटन पर चढ़ा आ रहा है, इसलिए सभी नगर के परकोटे के अन्दर चले जायें।'

सुनते ही चारों ओर शोर मच गया। रसिक नर-नारियों के झुंड तत्काल उपवन से नगर को लौटने लगे। रास्तों पर पालकियों, घोड़ों हाथियों, सुखपालों और रथों आदि वाहनों की भीड़ लग गई। नगर की ओर जानेवाले मार्ग पर धूल के बादल छा गये। दरवाजे फटाफट बन्द होने लगे और उन पर पहरेदार तैनात हो गये। बूढ़े सैनिकों तक ने अपने हथियार सँभाल लिये। नगर में बचे हुए पट्टनी योद्धाओं को एकत्र करने के लिए शंख-ध्वनि होने लगी। समूचे पाटन शहर में कोलाहल मच गया।

सारी रात नागरिक परकोटे पर पहरा देते रहे। तीरन्दाज और गोफन चलानेवाले परकोटे की बुर्जियों पर तैनात कर दिये गये। नदी के ऊपर के लकड़ी के पुल को उठाकर नौकाओं को कब्जे में करके, और खाइयों में पानी भरकर नगर को जितना हो सकता था सुरक्षित करने का प्रयत्न किया जाने लगा।

किन्तु नगर मे कोई भी बड़ा योद्धा या सेनापति नहीं था। सिन्ध के भयंकर युद्ध के लिए—और अगर उस युद्ध में विजय न हुई तो पाटन का सर्वनाश हो जायेगा इस अनिवार्य परिणाम को रोकने के लिए—जितनी सेना थी वह सब सिन्ध भेज दी गई थी, जो इस समय रेगिस्तान में आगामी महायुद्ध की व्यूह रचना कर रही थी। इसलिए कोटपाल (कोतवाल) ने एक बहुत ही तेज साँढनी-सवार को महाराज के पास खबर

देने के लिए रवाना किया।

सवेरा हो गया पर दुश्मन नहीं आया। सब को यही लगा कि मालवी सेना के आने की बात झूठ है। यह जानकर कि दुश्मन आ नहीं रहा है लोगों का साहस और उत्साह बढ़ा। वह सारा दिन शान्तिपूर्वक बीता। शाम हुई। अभी तक तो मालवी सेना का कहीं पता नहीं था। अचानक चाँपानेरी रास्ते की ओर से एक साँढ़नी-सवार जल्दी-जल्दी आता दिखाई दिया। लोग चिन्तातुर हो गये। चाँपानेरी दरवाजे पर ही लोगों की भीड़ ने उसे घेर लिया। अपनी साँढ़नी को बिठाकर वह फुर्ती से उतरा और जल्दी-जल्दी बोला—'दरवाजे बन्द कर दो। मालवी सेना को लेकर कुलचन्द्र खुद ही आ रहा है। यह लकड़ी का एक पुल बचा है, इसे भी समेट लो!'

'तुमसे किसने कहा?'

'मैं खुद देखकर आ रहा हूँ। अब उसके यहाँ पहुँचने मे कोई देर नहीं। यह समझो कि आ ही पहुँचा।'

'सेना कितनी है?'

'सैकड़ों और हजारों की तादाद मे—हम लोगों पर हावी होने के लिए काफी है।'

'जय सोमनाथ!' लोगों ने हताश होने के बदले उत्साहित होकर गगन-भेदी रण-घोष किया। इस आवाज को सुनते ही सारे नगर में मालवा की सेना के आने की बात फैल गई। नगर में जोर-शोर से तैयारियाँ होने लगीं।

'चलो, सभी तैयार हो जाओ—तुम इधर आओ, कोटपाल—नायक, तुम यहीं रहना। रणमल! तू उस चौकी को सँभालना और देखो, तुम खयाल रखना, गोफन का एक भी वार खाली न जाने पाये ...' इस तरह अनेक प्रकार की आवाजों से पाटन के मुहल्ले गूँजने लगे। कोटपाल ने लोगों को आश्वासन दिया कि डरने की कोई बात नहीं है; हम लोग

कुलचन्द्र के घेरे का सामना कर ले जायेंगे। जगह-जगह युद्ध की बातें होने लगीं।

बहुत-सी सेना एकत्र करके कोटपाल स्वयं चौंपानेरी दरवाजे के पास आ खड़ा हुआ था। थोड़ी देर में परकोटे के बुर्ज के ऊपर से संकेत हुआ। मालवा की गज-सेना ने सरस्वती नदी को ऊपर की ओर से पारकर परकोटे के पास पड़ाव डालना शुरू कर दिया था। पट्टनी सैनिक परकोटे की रक्षा-प्राकार पर चढ़-चढ़कर शत्रु-सेना को देखने लगे।

दुश्मन पर वार करने के लिए कोटपाल ने रक्षा-प्राकार पर तीरन्दाजों, गोफन चलानेवालों और भीलों की भी मोर्चाबन्दी की। खुद उसने भी प्राकार पर चढ़कर मालवी सेना को व्यूह-रचना करते देखा। नीचे आकर उसने और भी कई सैनिकों को ऊपर भेज दिया। और उसने कहा—'हमें पहली ही मार इतनी जबर्दस्त करनी चाहिये जिसमें शत्रु यही समझे कि अन्दर बहुत-सी सेना है!'

ठीक उसी समय 'जय सोमनाथ' और 'जय चौला देवी' की आवाज लगाती हुई लोगों की भीड़ वहाँ आ पहुँची। श्यामवर्ण के ऊँचे घोड़े को घेरे हुए बहुत-से सैनिक भी उसी ओर चले आ रहे थे।

'यह कौन है जो कह रहा है कि हमें दुश्मन पर ऐसी छाप डालनी चाहिये मानो हमारे पास बहुत-सी सेना है!' चौला ने आते ही पूछा।

'यह तो मैं हूँ, देवी, मैंने कहा है।'

'कोटपाल! यह कुलचन्द्र जमाने-भर का घुटा हुआ सेनापति है। इतना तो वह भी समझता ही है कि यदि तुम्हारे पास बहुत-सी सेना होती तो तुम क्या इस तरह परकोटे के अन्दर रहते? तब क्या बाहर निकलकर ही युद्ध न करते? इतना समझ लो कि वह हमें घेरकर ही नहीं पड़ा रहेगा। अन्दर आकर युद्ध करेगा। और फिर वह समय व्यर्थ भी न जाने देगा।'

'और उपाय ही क्या है? उसकी सेना संख्या में अधिक है। हम

संख्या में कम हैं। महाराज आयें या मदद पहुँचे तब तक किसी तरह टिके रहने का प्रश्न है !'

'तुम्हारे पास इतना अन्न भी नहीं है कि तुम उसके सहारे अधिक समय तक टिके रह सको।' चौला बोली—'इसलिए अब तुम्हें अपनी व्यूह-रचना बदलनी होगी। तुम उसे पराजित तो नहीं कर सकते, परन्तु यदि इतना भी कर सको कि उससे हार न मानो तो वह भी तुम्हारी जीत होगी। इसलिए वही करो, जिसमें हारना न पड़े। कुछ ऐसा ही उपाय करो।'

'एक साँढ़नी-सवार तो भेजा है।'

'कहाँ ? कहाँ भेजा है ?' चौला ने अधीर होकर पूछा।

'महाराज को खबर देने के लिए !'

'अरे ! किस बात की खबर देने ?' चौला ने पूछा—'तुम इतना भी नहीं समझते कि यह समाचार मिलने पर महाराज वहाँ का युद्ध हार जायेंगे, और आकर यहाँ का युद्ध तो जीतने से रहे ! तुमने साँढ़नी-सवार कब भेजा ? किसी से पूछा भी था या नहीं ?

'जी नहीं, पूछा तो नहीं, परन्तु सोचा कि लाओ, खबर तो भेज ही दूँ ! कल ही रवाना किया है !'

चौला ने थोड़ी देर विचार किया और तब जन्मजात रानी के गौरव से नगर-निवासियों और सैनिकों से पूछा—'बताओ पट्टनियो ! अब क्या करना चाहते हो ? पाटन का गौरव बचाना चाहते हो, या पाटन की लक्ष्मी ?'

कोलाहल सुनकर कई व्यापारियों के साथ नगरसेठ इसी ओर चले आ रहे थे। किसी के उत्तर देने के पहले ही उन्होंने कहा—'देवी ! पाटन में तो हमेशा से ही गौरव-हीन लक्ष्मी को राख का ढेर समझा जाता रहा है। लक्ष्मी की हमें कोई कमी नहीं, क्योंकि गुजरात के नाविक समुद्र-यात्रा करना जानते हैं, इसलिए बचाना तो गुजरात का गौरव ही है।

देखियेगा, कहीं ऐसा न हो कि महाराज तो वहाँ विकट संग्राम करते रहें, और इधर गुजरात का गौरव शत्रुओं के पाँवों-तले रौंद दिया जाये।

'अगर गौरव की रक्षा करनी हो, तो धनंजय श्रेष्ठी, पट्टनियों के लिए सिर्फ एक ही रास्ता है !' चौला उसका उत्तर सुनकर मुस्कराती हुई बोली।

'तो देवी उसे बतलायें।'

'उपाय यह है कि सब दरवाजे खोल दिये जायें। शत्रु भले ही अन्दर घुस आये। सुना कोटपाल !'

'अरे ! देवी ! तब तो पाटन का एक-एक घर दो कौड़ी का रह जायेगा। दुश्मन सब-कुछ लूटकर ले जायेगा।' कोटपाल ने कहा।

'तुम युद्ध करोगे तब भी यही हाल होंगे। आज नहीं तो कल लूटे ही जाओगे। अभी तो तुम्हारे सामने बचाव का कोई रास्ता है नहीं।'

'परन्तु पाँच-पचीस दुश्मन तो खेत रहेंगे !'

'और तुम्हारा गौरव पद-दलित होगा, उसका भी कुछ खयाल है ? तुम पट्टनियों को यह दिखला देना चाहिये कि वह जो कुछ लूटकर ले जा रहा है, सो तुम्हारे लेखे कुछ नहीं के बराबर है। और जो लुटने से बच गया है—पाटन का गौरव—वही तुम्हारे लिए अत्यधिक मूल्यवान है। तुम रास्ते पर गहने, जर, जवाहरात आदि फेंक दो, और इस तरह अपना काम करते रहो मानो शहर में कोई दुश्मन आया ही न हो। वह लूट-पाट-कर तत्काल भाग जाये तभी महाराज सिन्ध का युद्ध जीत सकेंगे। यहाँ दौड़े आये तो सिन्ध मे हारेंगे—और यहाँ जीतने के लिए कुछ है ही नहीं। अभी तो केवल यह समझकर कि सिन्ध की महान विजय के लिए तुमने उनके सामने कुछ टुकड़े फेंके हैं, फेंक-फाँक दो। और जरा यह भी बताओ कि तुममें से कोई विश्वासघाती का काम भी कर सकेगा ? बोलो, है कोई तैयार ?'

एक पन्द्रह-सोलह वर्ष का स्वरूपवान किशोर सामने आया। चौला

ने जब उसे देखा तो उसकी किशोर वय देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ।

'तुझसे काम हो सकेगा ?' चौला ने पूछा—'काम जरा मुश्किल है।'

उस युवक ने साभिमान उत्तर दिया—'मेरे पिताजी ने गर्जनकों को सिन्ध के रेगिस्तान में भटकाने के लिए छद्मवेश धारणकर खुशी-खुशी प्राण निछावर किये थे। मैं उसी कुल-परम्परा का उत्तराधिकारी हूँ।'

चौला प्रशंसापूर्वक उस गोरे हृष्टपुट किशोर की ओर कुछ क्षण देखती रही, फिर बोली—'तुझे और कुछ नहीं करना है। सिर्फ यही दिखावा करना है कि मानो तू मालवा का हो। मालवी भाषा तुझे आती है ?'

उस तरुण ने अपना उच्चारण बदलकर वह भाषा कुछ इस तरह बोलकर सुनाई जिससे सुननेवालों को यही लगा कि वह गुजराती हो ही नहीं सकता।

'बस-बस, काम बन गया। अब तुझे यह दिखलाना है कि तू मानो मालवा का ही रहनेवाला है। इस चढ़ाई के कारण लोग नाराज हुए हैं। लोगों की नाराजगी स्वाभाविक ही है। और इसी लिए उन्होंने तुझे निकाल दिया है। लोगों का विश्वास है कि बालुकराय आ रहे हैं—और उनके साथ बड़ी सेना है। तू इस बात को फैला देना। समझ गया न ? इससे दुश्मन यही समझेगा कि कुलचन्द्र को भीतर और बाहर से दो सेनाओं के बीच चक्की के पाटों मे फँसे दाने की तरह पीस डालने की योजना है। याद रहेगा न ? लोगों ने नाराज होकर तुझे बाहर निकाल दिया है। भूलना मत! बस इतना ही रूप तुझे भरना है। यह तुझसे हो तो सकेगा न ? हाँ, तेरा नाम क्या है ?'

उस किशोर ने दोनों हाथ जोड़कर चौला को प्रणाम करते हुए कहा—'मेरा कोई नाम नहीं है, देवी! परन्तु मैं काम पूरा कर दूँगा। आप निश्चिन्त रहिये।' और इतना कहकर कोई कुछ कह पाये उसके पहले ही वह दरवाजे की छोटी खिड़की की राह बाहर के अँधेरे में अदृश्य हो गया।

३६. परन्तु पट्टनी अपराजित ही रहे

दूसरे दिन सवेरे पाटन के चाँपानेरी दरवाजे को खुला देखकर कुलचन्द्र को अतीव आश्चर्य हुआ।

उसे शंका होने लगी कि कहीं कोई धोखा तो नहीं है! नगर का कारबार इस तरह प्रारम्भ हो गया था मानो कोई बात ही न हो। नागरिक निडरतापूर्वक परकोटे के बाहर निकलने ही नहीं लगे थे, सरस्वती के किनारे घूमने और नौका-विहार भी करने लगे थे; उनके व्यवहार से ऐसा लग रहा था मानो मालवी सेना का अस्तित्व ही भूल गये हों।

कुलचन्द्र ने भी पाटन में प्रवेश करने की तैयारियाँ प्रारम्भ कीं। अपने साथ जाने के लिए उसने केवल गज-सैनिकों को ही तैयार किया। शेष सैनिकों को नगर के बाहर छोड़कर वह पाटन के अन्दर जाने के लिए चल पड़ा।

चाँपानेरी दरवाजे में से होकर उसने नगर में प्रवेश किया।

किसी ने उसे नगर में प्रवेश करने से रोका नहीं। अन्दर जाने के साथ ही उसने ताड़ लिया कि शहर की रक्षा करने के लिए आवश्यक सेना नहीं है। किसी भी बड़े सेनापति से उसकी मुठभेड़ नहीं हुई। पहरेदार, रक्षक और कुछेक सैनिक यहाँ-वहाँ घूमते दिखाई दिये, परन्तु उनमें से भी किसी ने उसका सामना नहीं किया।

कुलचन्द्र पाटन के वैभव और सम्पत्ति को देखता हुआ आगे बढ़ा। उसने प्रत्येक स्थान पर लोगों को अपने-अपने काम में निमग्न देखा। किसी ने उसका आदर-सत्कार नहीं किया। किसी ने उसकी ओर देखने

की इच्छा तक प्रदर्शित नहीं की। किसी को उसकी दहशत भी नहीं लगी। न कोई उससे भयभीत होकर भागा। विशाल हाथियों के घंटानाद से बाजारों और चौराहों को गुंजाता हुआ वह मालव सेनापति आगे बढ़ता चला गया।

राजमहल के घटिकागृह के पास लोगों की भीड़ जमा थी।

कुलचन्द्र ने वहाँ नगरपति, कोटपाल और मध्यम दर्जे के कुछेक उपसेनानायकों को खड़े देखा।

वहाँ अपने हाथी पर खड़े होकर उसने शंख बजाया।

उसकी शंख-ध्वनि के प्रत्युत्तर में दूसरे कई शंख बजने लगे।

कुलचन्द्र ने कोटपाल को अपनी ओर आने का संकेत किया। कोटपाल आगे आया।

'मुझे पहचानते हो?' कुलचन्द्र ने कोटपाल से पूछा।

'हाँ, मालवा के सेनापति हो!'

'यहाँ आजकल नगर-रक्षक कौन है?'

'पूरा नगर ही।'

'परन्तु कोई सेनापति तो होगा? मैं उसे युद्ध के लिए ललकारता हूँ। यदि युद्ध न करना चाहो तो जयपत्र दो। कौन है सेनापति?'

एक सेनानायक ने आगे बढ़कर कहा—'क्या चाहते हो?'

'लगता है कि नगर में कोई युद्ध नहीं करेगा। और जो नगर युद्ध नहीं करते उन्हे सताना मैं, कुलचन्द्र, अपनी शान के खिलाफ समझता हूँ। तुम जयपत्र दे दो, हम लौट जायें।'

'खाली जयपत्र लेकर क्या करोगे?' नगरपति धनंजय आगे बढ़ आया था, उसने बड़ी शान से कहा—'जब यहाँ तक आये हो, इतना परिश्रम किया है, तो लंका के कुछ मोती भी लेते जाओ। इनकी आब देखकर एक बार तो महाराज अवन्तीनाथ भी मोहित हो जायेंगे। हमारे यहाँ तो इनका कोई टोटा नहीं है। समुद्र के स्वामी पट्टनी जब चाहेंगे अपने लिए

और ले आयेंगे। तुम्हारे वहाँ पहाड़ों में तो इनका मिलना दूभर ही है। लो ..' नगरपति एक दास के सिर पर रखे सोने के घड़े में से मोतियों की मालाएँ निकाल-निकालकर कुलचन्द्र के सामने रखने लगा।

'खाली मोती मेरे किस काम के!'

'तो कुछ पुखराज, हीरे, माणिक आदि रत्न भी ले जाओ। हम पट्टनियों के लिए तो ये विरल पदार्थ नहीं हैं। तुम्हारे पर्वतों में अवश्य दुर्लभ होंगे। तुम्हारे यहाँ अकिंचन विद्वान् होते हैं; मुक्ता, माणिक आदि रत्न तो हमारे यहाँ होते हैं; लो।'

इतना कहकर नगरपति ने हीरा, माणिक, पुखराज आदि निकालना शुरू किया।

'इतने काफी नहीं हैं।'

'मालवराज की तृष्णा तो बड़ी जबरदस्त मालूम पड़ती है!' नगरपति ने विनोद किया।

'यह तो मालवराज के लिए दो दिन का दान हुआ। जबकि साल में दिन होते हैं तीन सौ और साठ!'

'अच्छा तो सोने के कुछ द्रम्म भी ले जाओ! द्रम्म, भाई, द्रम्म! उनके बिना तुम्हारी भूख मिटने की नहीं!' भीड़ में रानी उदयमती का कोई आदमी था, उसने कहा।

'मैं इस तरह नहीं लिया करता!' कुलचन्द्र ने कहा।

'तब? हमने देने की अपनी रीति बतला दी। तुम लेने की अपनी रीति बताओ!' नगरपति ने कहा।

'कल मेरी सेना नगर में प्रवेश करेगी। इधर-उधर से द्रम्म, मोती, हीरा, माणिक लेगी। जयपत्र तुम्हें देना होगा। उसके बाद हमारी सेना राजमहल के घटिकागृह के पास आकर विजय शंख फूँकती हुई लौट जायेगी। तुमने युद्ध नहीं किया इसलिए नगर बच गया है। इसकी समृद्धि हम लिये जा रहे हैं और रिक्तता तुम्हारे लिए छोड़े जा रहे हैं!'

यह सुनकर नगरसेठ इतने जोर से हँसा कि राजमहल का विशाल प्रागण उसके मुक्त कहकहों से भर गया। उस हँसी के बाद मानो पाटन का वह महान नगरपति अपनी उदारता से सब कुछ दिये दे रहा हो इस तरह बोला—'ओ-हो-हो-हो! आप इसके लिए परेशान क्यों होते हो? सारे नगर की समृद्धि तुम ले जाओ इससे अधिक अच्छा और क्या होगा! यदि ऐसा होगा तभी न पट्टनी नयी सम्पत्ति लायेंगे! आज तक तो भृगु-कच्छ मे ऐसा कोई जहाज आया नहीं है जिसमें बिना मौक्तिक मालाओं-वाला पट्टनी बैठा हो! आप कुछ खाली करा देंगे तभी न नया बसायेंगे प्रभु! ले जाओ—ले, जाओ—' नगर सेठ ने हाथ से सारा शहर दिख-लाते हुए कहा—'देखो, नगर में स्वर्ण-कलशों की कोई गिनती है! ले जाओ, अभी पाटन दे रहा है इसलिए लेने मे कोताही मत करना!'

मालवी सेनापति के अन्तर मे नगरसेठ की वाणी का यह अजेय स्वर शल्य की नोक की तरह जा चुभा।

'नगरसेठ! यहाँ हमारे मुकाबले का कोई है नहीं, इसलिए तुम्हारी बात का क्या जवाब दें? फिर भी इतना तो कहेंगे ही कि यदि यह सब तलवार की नोक पर लिया होता तो और भी अच्छा लगता!' यह कहकर उसने राजमहल के घटिकागृह की ओर एक दृष्टि डाली। और धीरे से उसका हाथी लौट गया।

यह विजय इतनी सस्ती और आसान थी कि कुलचन्द्र के मन से विजय की सारी खुशी हवा हो गई थी। वह रात के समय अकेला अपनी छावनी में से सरस्वती के किनारे घूमने के लिए गया। उसे आश्चर्य हो रहा था कि कल तो वह पाटन को लूटेगा और इस बात को जानते हुए भी लोग अभी इस तरह विनोद, प्रमोद और आनन्द में मग्न हो रहे हैं। नगर में गाये जाते मंगल गीतों को उसने सुना। जगह-जगह से रास और गरबे के गीतों की कड़ियाँ हवा पर चढ़कर आती हुई सुनाई दे रही थीं। मन्दिरों में घण्टे बज रहे थे। दीपमालिकाओं से हवेलियाँ, झरोखे, छज्जे

और गवाक्ष जगमगा रहे थे। कहीं-कहीं कोई शौकीन मिजाज चन्द्रशाला मे बैठे वारागना का नृत्य देख रहे थे।

इस सारे दृश्य को देखता हुआ कुलचन्द्र सरस्वती के किनारे-किनारे घूम रहा था। उसे पाटन के वैभव पर ईर्ष्या हो रही थी। नगरपति की वे बातें—मानो समृद्धि की कोई परवाह ही न हो—उसे रह-रहकर याद आ रही थीं। तभी उसने नदी में किसी के गिरने की आवाज सुनी।

'कौन होगा?' उसके मन में एकाएक सवाल पैदा हुआ। तभी उसे शहर के परकोटे की तरफ छप-छप की आवाज के साथ तैरकर जाती हुई किसी की छायाकृति दिखाई दी। उसे किसी गुप्तचर का सन्देह हुआ। उसने तत्काल किनारे पर लगी हुई एक डोंगी अपने कब्जे में की और दोनों हाथ से पानी काटते हुए डोंगी उस तैरनेवाले के पीछे लगा दी।

थोड़ी देर में डोंगी तैरनेवाले के पास पहुँच गई। उसने नीचे झुककर हाथ से तैरनेवाले को रोका।

'कौन, है रे तू?'

'छोड़ दे! मुझे छोड़ दे..!'

'पर तू है कौन?'

'कोई नहीं!'

'अच्छा!'

इसी बीच आवाज सुनकर नदी के किनारे कतिपय मालवी योद्धाओं के आने का आभास कुलचन्द्र को हुआ। उसने पुकारा। मालवी योद्धा तत्काल पानी में कूद पड़े और तैरने लगे। वे समझ गये थे कि कोई षड्-यन्त्र है।

वह तैरनेवाला भागने की जी तोड़ कोशिश कर रहा था। उन्होंने उसे पकड़ लिया और खींचकर पुनः किनारे पर ले आये।

जब वे समीप पहुँचे तो कुलचन्द्र ने कहा—'इसे पकड़ो।'

छावनी में पहुँचने के बाद कुलचन्द्र ने उस आदमी को अपनी पट्ट-

कुटी में बुलवाया। आने पर उसने देखा कि एक हृष्ट-पुष्ट, गोरा-चिट्टा किशोर सामने खड़ा ठण्ड से काँप रहा है। उसके कपडे अभी तक गीले थे।

'क्यों रे, कौन है तू?' उस लड़के ने कोई जवाब नहीं दिया। 'गुप्तचर तो नहीं है? कहाँ से आया है? इधर कहाँ जा रहा था? तेरा नाम क्या है?'

उसने किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया।

'अरे! मेरुमल्ल! यहाँ आओ—' कुलचन्द्र ने एक सैनिक को बुलाया—'यह काँप रहा है। इसके कपडे बदलवाओ और तब इसे यहाँ लाओ!'

थोड़ी देर बाद वह युवक पुनः लाया गया, परन्तु इस बार भी किसी प्रश्न का उत्तर देने के बदले गूँगे की तरह चुपचाप खड़ा रहा। कुलचन्द्र हठात् उठकर खड़ा हो गया और आगे बढ़ा। उस युवक को सरकंडे की पतली नली-जैसी किसी वस्तु को मुँह मे डालकर चबाने का प्रयत्न करते हुए उसने पकड़ लिया था—'अबे, तू कौन है?' उसने उसके कन्धे पकड़कर बड़े जोर से झकझोर डाला।

दीपक के पास जाकर, उस नली में से निकाली हुई भूर्जपत्रिका पढ़ने के साथ ही कुलचन्द्र की मुख-मुद्रा परिवर्तित हो गई।

'मेरुमल्ल!' उसने जोर से पुकारा। मेरुमल्ल बाहर से दौड़ता हुआ आया। 'इस युवक को मोटी मजबूत रस्सियों से बाँधकर रात-भर तुम्हारे पास रखो। सवेरे इसका निर्णय किया जायेगा। सब सेनानायक कहाँ हैं? बुलाओ उन्हें।'

मेरुमल्ल उस युवक को लेकर चला गया। थोड़ी देर बाद सेनानायक आये। कुलचन्द्र ने उनके सामने उस भूर्जपत्रिका को रखते हुए कहा—'अच्छा ही हुआ कि सन्देशवाहक पकड़ा गया। हम यहाँ पड़े हैं, ऐसे मे बाहर के किसी आदमी का पाटन मे जाना अपने विनाश को न्योता देने के समान है। इस पत्रिका मे वालुकराय का सन्देशा है कि वह भिन्न-

माल लौट गया है और पाटन की रक्षा के लिए आ रहा है !'

'हैं, आ रहा है !'

'और नहीं तो क्या ? यह रहा उसका सन्देशा। इसी लिए तो उसने पाटन को एक सप्ताह तक टिकाये रखने की बात लिखी है। अब हमें कल सवेरे ही पाटन को लूटकर यहाँ से चल देना चाहिये।'

दूसरे दिन सवेरे अभी पाटन के नर-नारी जागने भी नहीं पाये थे कि घोड़े, हाथी, साँढ़नियाँ आदि चाँपानेरी दरवाजे मे से अन्दर घुसने लगे। घर-घर कोलाहल मच गया। मालवी सैनिक पाटन शहर के अन्दर दाखिल हो गये थे। किन्तु थोड़ी ही देर बाद नगरपति की ओर से ढिंढोरा हुआ और सर्वत्र शान्ति स्थापित हो गई।

लोग पुनः इस तरह प्रातःकालीन कार्यों मे प्रवृत्त हो गये मानो कुछ हुआ ही न हो। कुलचन्द्र के सैनिक घर-घर घूम-घूमकर द्रव्य, मोती, हीरे, माणिक, आभूषण आदि जो कुछ मिले जल्दी-जल्दी लेने लगे। थोड़ी देर में तो द्रव्य का बड़ा-सा ढेर लग गया। गलियों, चौक, चौराहों और बाजारों में घूमती-घामती सेना राजमहल के घटिकागृह के पास आ पहुँची। मानो कुछ न हो इस तरह राजमहल के चौकीदार चुपचाप खड़े थे। कुलचन्द्र ने वहाँ अपनी गज-सेना की मोर्चाबन्दी की और उनके जय-नाद की प्रतिध्वनि से पूरा राजमहल गूँज उठा। फिर उसने अपने हाथी पर खड़े होकर शंख-ध्वनि द्वारा मालवा की विजय की घोषणा की। उसके सैनिकों ने उस गगनभेदी घोषणा के प्रत्युत्तर मे जोरों का प्रतिघोष किया। थोड़ी देर बाद धीरे-धीरे चलते हुए कोटपाल और नगरपति वहाँ आये। उन्होंने एक जयपत्र कुलचन्द्र के हाथ मे रख दिया। इसी बीच शेष मालवी सैनिक भी चारों ओर से वहाँ आ गये थे। विजय-प्रयाण करती हुई सेना को देखने के लिए कुलचन्द्र का हाथी राजमहल के पास एक ओर हटकर खड़ा हो गया।

विजय कूच करती हुई मालवी सेना पुनः चाँपानेरी दरवाजे की ओर मुड़ी

'भेरुमल्ल ! वह सन्देशवाहक—गोरा तरुण—कहाँ है ?'

'यह रहा, प्रभु !'

'उसे यहाँ ला !'

मेरुमल्ल उस तरुण को ले आया।

'देख लड़के ! तूने सन्देशा तो लगभग पहुँचा ही दिया था। तू बहादुर है। परन्तु अभी तो तेरे मुँह से मा का दूध भी नहीं छूटने पाया है; जा, तुझे छोड़ दिया—अब तू मुक्त है !'

'अब तो, महाराज, मुक्त करने के बदले मुझे तीर से बेध ही दीजिये। क्योंकि सेनापति बालुकराय के मन की तो मन ही में रह गई !'

'क्या बात थी—बालुकराय के मन की कौन-सी बात मन में रह गई ?'

'अब क्या बतलाऊँ, महाराज ?'

'अरे, बता तो सही !'

'बालुकराय तो, प्रभु ! आपका पीछा करके ठेठ उज्जैन के राजमहल के पास कौड़ियाँ गड़वाते !'

'कौड़ियाँ गड़वाते, अच्छा ?' कुलचन्द्र ने कहा—'भेरुमल्ल, जा तो, कौड़ियाँ ला,—ला कौड़ियाँ—'

'कौड़ियाँ तो प्रभु, यहाँ राजमहल में जितनी चाहिये उतनी मिल जायेंगी. .' नगरपति ने मधुर स्वर से कहा—'परन्तु कौड़ियों की ऐसी क्या जरूरत पड़ गई ?'

'पहले लाओ तो; जरूरत बाद में बतायेंगे।'

थोड़ी देर बाद कौड़ियाँ आ गईं। कुलचन्द्र ने सैनिकों को आज्ञा दी और घटिकागृह की नींव में ही गड्ढा खोदा गया। कुलचन्द्र ने उसमें कौड़ियाँ गड़वा दीं।

उसका हाथी भी चलने लगा। सबने एक दूसरे से पारस्परिक नमस्कार किये। 'नगरसेठ ! अगली बार आऊँगा तब चाँपानेरी द्वार बन्द हुआ —तो उसे तोड़कर भीतर प्रवेश करूँगा। तो चलूँ, जय महाकालेश्वर !'

उसने नगरपति की ओर देखकर विनोदपूर्वक कहा।

'आना, जरूर आना—पाटन को दरवाजे बन्द करने पड़ें ? अब भला कौन इतने समीप आ सकेगा कि पाटन को दरवाजे बन्द करना पड़ें !' नगरपति ने कहा—'अच्छा, जय सोमनाथ ! फिर कभी इस ओर आना —यहाँ द्रम्म की कमी नहीं है। परन्तु सॉढ़नियों पर माल बराबर सहेजकर लाद तो लिया है न ?'

'हाँ, हाँ ! कुलचन्द्र ने विनोदपूर्वक उत्तर दिया—'पुनः ये ही इधर आयेंगी;—इसलिए अभी से इन्हें सिखा-पढ़ाकर होशियार किये देते हैं।'

शंख-ध्वनि के साथ-साथ कुलचन्द्र का हाथी भी पाटन के चाँपानेरी दरवाजे की ओर चल दिया। नगरपति और कोटपाल भी विदा करने के लिए साथ गये।

जब वे सब चले गये और आँख से ओझल हो गये तो वह रूपवान युवक पागलों की तरह कूदने, नाचने और गाने लगा। कुलचन्द्र और नगरपति की बातचीत चौला ऊपर झरोखे में से सुन रही थी। जब कुलचन्द्र चला गया तब वह राजमहल से बाहर आई। वह उस गड़हे के पास गई जहाँ कौड़ियाँ गाड़ी गई थीं। ठीक से देखकर वह लौटी।

'अरे, तू यों नाचता-कूदता क्यों है ?' उस युवक को देखकर वह रुक गई—'तूने स्वाग तो बराबर भरा है।'

युवक हाथ जोड़कर बोला—'देवी ! आपने जो कहा था ठीक वैसा ही हुआ। मैंने मालवा के आदमी के बदले बालुकराय के सन्देशवाहक का स्वाग किया और वह अधिक सफल हुआ। मैं पकड़ा गया, छूटा भी और सेनापति कुलचन्द्र मालवा की लक्ष्मी यहाँ आये ऐसे शकुन भी करता गया। आपने जैसा कहा था वैसा ही हुआ ! देवी ! मुझे नाचने दीजिये —नाचने का मेरा मन हो रहा है।'

तभी चौकीदार दौड़ता हुआ आया।

'क्या बात है ?'

'कुलचन्द्र ने छावनी उठा दी है और सभी जल्दी-जल्दी चले जा रहे हैं!'

वह किशोर और भी अधिक प्रसन्न होकर कहकहे लगाने लगा।

'तेरा नाम क्या है?' चौला ने उस लड़के से पूछा।

उस लड़के ने गाना, नाचना और हँसना-खिलखिलाना बन्द कर दिया और बोला—'मेरा नाम? मुझ गरीब का नाम ही क्या? मैं तो सोमनाथ के रक्षक का लड़का हूँ। और यही मेरा नाम है!'

'परन्तु कुछ नाम तो होगा ही! तू अपना नाम बतला। तुझे एक काम और सौंपना है। तुझे किस नाम से पुकारा जाये?'

'अरे, देवी! मेरा क्या तो नाम—और क्या ठाम? मैं तो सोमनाथ के रक्षक का लड़का हूँ। आपको जो काम सौंपना हो, वह मुझे सौंप दीजिये।'

'अच्छा तो सुन, तुझे साँढ़नी चलाना आता है?'

'देकर देखिये।'

'महाराज को सन्देशा देने के लिए ठेठ सिन्ध जाना है। बता, कहाँ?'

'सिन्ध।'

'यहाँ से कोटपाल ने जिस सन्देशवाहक को भेजा है उसे रोककर वापस भेज देना, और तू वहाँ महाराज से रणक्षेत्र में मिलना।'

'क्या सन्देशा देना है?'

'वह मैं तुझे बतला दूँगी। दो पहर रात बीतने पर तू मेरे पास आना। साँढ़नी तैयार करके ही आना, समझा? तेरा नाम?'

'मेरा नाम, देवी, सोमनाथ के रक्षक का लड़का। मुझ अकिंचन को दूसरे नाम से मतलब भी क्या है?'

चौला को प्रणाम करके वह किशोर तेजी से दौड़ता हुआ आँखों से ओझल हो गया। चौला उसे जाते हुए देखती रही। लड़के को जाते हुए देखकर उसके मन में कई विचार निमिष-मात्र में आये और चले गये।

उस लड़के के छोटे निर्दोष लाल ओठों में से निकले हुए मधुर शब्द—'मैं तो सोमनाथ के रक्षक का लड़का हूँ !' उसे पुनः-पुनः याद आते रहे। राजमहल की ओर लौटते समय स्थिर और चुप खड़े पहरेदारों की आँखों में से आँसू बहते देखकर उसने पूछा—'अरे ! तुम्हें क्या हो गया है, जो इस तरह आँसू ढार रहे हो ?'

'देवी ! पाटन के राजमहल के आगे दुश्मनों की शंख-ध्वनि होते ही टुकड़े-टुकड़े हो जाने का हमारा सौभाग्य आज हमसे छिन गया है। हमारे सिर पर सदा के लिए यह कलंक लग गया है कि ये लोग वहाँ खड़े थे और दुश्मन अपनी विजय का शंख फूँक गया।'

चौला मूर्तिवत् सुनती रही। फिर उसने धीमे मधुर स्वर से कहा—'परन्तु क्या तुम्हें इस बात का भी पता है ?'

'किस बात का देवी ?'

'मालव-सेनापति ऐसे शकुन करके गया है, जिसके कारण मालवा की राज्य-लक्ष्मी यहाँ आयेगी। वह राजमहल के पास कौड़ियाँ गाड़कर गया है। इसलिए अब तुम्हें मालवा जाना होगा—और युद्ध तो वहीं, मालवभूमि पर ही शोभास्पद हो सकता है।'

३७. हम्मुक की पराजय

चौला का भेजा हुआ सन्देशा लेकर सोमनाथ के रक्षक का लड़का थोड़े दिनों के बाद एक शाम को जब सिन्ध मे हम्मुककोट के पास पहुँचा तो रेगिस्तान में फैली हुई सोलंकी छावनी की पट्टकुटियों मे दीये जल चुके थे। मुलतानी (उत्तरी) पवन के झोंकों के कारण सारे मैदान में असहनीय ठंड हो रही थी। जगह-जगह अलाव जलाकर, और हवा के सीधे झपट्टों को रोकने के लिए ओट खड़ी करके सोलंकी सैनिक आपस में इस भयंकर रेगिस्तानी युद्ध की चर्चा कर रहे थे। कई दिनों से महाराज की सेना हम्मुककोट पर घेरा डाले पड़ी थी। परन्तु अभी तक कोट के अन्दर अनाज या पानी समाप्त होने के कोई चिन्ह दिखाई नहीं दे रहे थे। सिन्धु नदी की अनेक शाखाओं, उपशाखाओं और उसमे से निकाली हुई नहरों के द्वारा सुमरा ने ऐसे चक्करदार अगम्य जलदुर्ग का निर्माण किया था कि गज-सेना या नौका-सेना* कोई भी उसका भेदन नहीं कर सकती थी। हम्मुक इस बात को जानता था कि यदि जलदुर्ग टिका रह गया तो सोलकियों को अपने-आप ही घेरा उठाकर लौटना होगा। लौटते हुए शत्रुओं के पीछे अपने साँढ़नी सवारों और नदी-मार्ग से गज-सैनिकों को भेजकर इतना हैरान-परेशान कर देने की उसकी योजना थी कि फिर वे

---

*मोहम्मद हबीब द्वारा रचित 'सुल्तान महमूद आफ गजनी' पुस्तक के अनुसार सुल्तान से १४०० नौकाएँ तैयार करवाकर महमूद गजनी ने जाटों के नौकादल को परास्त किया था।

कभी भूलकर भी इस रेगिस्तान की ओर आने की हिम्मत न कर सकें। उसका वनदुर्ग तो सोलंकी सेना ने बहुत पहले ही पार कर लिया था। हजारों विशालकाय और ऊँचे-ऊँचे वृक्षों को गिराकर, घनी झाड़ियों को काटकर बबूल और रामबबूल और नागफनी के पूरे के पूरे जंगलों को साफ करके सोलंकियों ने जंगल में रास्ता बना लिया था। चारों ओर घेरा डालकर वे पड़े रहे; और गधे, बैल, हाथी, गाड़ियाँ, अश्वतर (खच्चर) और असंख्य मनुष्य मिट्टी, बालू, पेड़-पौधे जो कुछ भी हाथ में आया और मिल गया उसे लाकर सुमरा के कर्दमदुर्ग की भयानक खाइयों में डालने लगे। पैर रखते ही या जरा सा औसान चूकते ही हाथी-के-हाथी धँस जायें ऐसी पोली दलदलवाली गहरी खाइयाँ चारों ओर फैली हुई थीं। इस दलदल पर जगह-जगह बालू की मोटी पर्त बिछाकर रेगिस्तान का भ्रम पैदा करने की ऐन्द्रजालिक रचना भी सुमरा की ओर से की गई थी। भूले-चूके भी उसे रेगिस्तान समझकर यदि कोई पाँव रख दे तो पाँव के रखे जाते ही वह दलदल उसे समूचा निगल जाता, और पुनः इस प्रकार शान्त और स्थिर होकर चुपचाप दूसरे शिकार का रास्ता देखने लगता मानो कुछ हुआ ही न हो। ऐसे उस अत्यन्त भयानक कर्दमदुर्ग को पाटकर उसके ऊपर रास्ता बनाने के लिए सोलंकी सेना ने दिन-रात एक कर दिया।

थोड़े ही दिनो में सोलंकियों ने कर्दमदुर्ग को पाटकर उसके ऊपर इतना पुख्ता रास्ता बना दिया कि समूची सेना निश्चिन्त और निर्विघ्न उस पर चल सकती थी। और जब इस रास्ते पर होकर महाराज भीमदेव की सेना ने प्रयाण किया तो जलदुर्ग में अपने-आपको सुरक्षित समझने-वाला हम्मुक भी काँप उठा। जीवन में पहली बार उसे अपनी सुरक्षा के विषय में शका होने लगी। कर्दमदुर्ग पार करके सोलंकी सेना जब इस ओर आई और चारों ओर फैले हुए बालू के मैदान में अपना पड़ाव डाल दिया तो दूर क्षितिज तक फैला हुआ, किसी महासमुद्र जैसा, असंख्य

पहाड़ों से घिरा हुआ और अगाध जल से भरा हुआ सुमरा का जलदुर्ग सोलकियों को दिखाई पड़ा। कई चौड़े नालों और बड़ी नदी की शाखा-प्रशाखाओं को मोड़कर सुमरा ने एक विशाल जलाशय तैयार किया था। यह जलदुर्ग सुमरा के नगर की चारों ओर से रक्षा करता था। सिन्ध के भयंकर साँप इसके किनारों पर पड़े हुए थे। मगरों के झुंड वहाँ लोटते रहते थे!* मनुष्य तैरकर, नौका से अथवा हाथी की सहायता से भी पार करते हुए डरें ऐसे विकराल जलदुर्ग को देखकर क्षण-भर के लिए सारी सेना विचार-मग्न हो गई। उसी शाम युद्धमंत्रियों की मंत्रणा शुरू हुई।

'बोलो, भाइयो, अब क्या करना है?' रा' ने युद्ध-सभा में चर्चा शुरू करते हुए कहा—'सुमरा समझता है कि उसके इस जलदुर्ग को भेदन करना मुश्किल है। उसकी कीचड़-काँदों की छोटी-छोटी खाइयों को तो मकवाणाजी के पिता भी पार कर गये थे। अपनी सेना में उनके द्वारा सिखलाये हुए कई घोड़े अब भी मौजूद हैं। वे इन खाइयों को इस तरह कूदकर पार कर जाते थे मानो पंख लगे हों। तभी तो बाद में उसने इन खाइयों को और चौड़ा करवा दिया। अब तो महाराज ने उस दलदल पर रास्ता भी बना दिया है। आगे क्या करने का विचार है, मेहता?'

'जो रास्ता बन गया है उसे आगे बढ़ाया जाये।' दामोदर ने कहा।

'परन्तु यह तो समुद्र है!'

'समुद्र है तो उसे पी जाना होगा!' दामोदर ने कहा।

इतने में सिंहनाद ने प्रवेश किया। उसके चेहरे से लग रहा था कि वह जरूर कोई अशुभ समाचार लाया है।

'महाराज! पाटन से एक साँढ़नी-सवार आया है!'

'कहाँ है? किसने भेजा है!'

'बाहर खड़ा है। पाटन के कोटपाल ने भेजा है!'

---

* द्वयाश्रय

कोटपाल का भेजा हुआ सन्देशवाहक वहाँ आकर महाराज को प्रणाम करके खड़ा हो गया। सोमनाथ के रक्षक का लड़का उसे रास्ते मे मिलकर वापस पाटन लौटा दे ऐसी व्यवस्था तो हुई थी, परन्तु उन दोनों की भेंट ही नहीं होने पाई, और इसी लिए कोटपाल का सन्देश-वाहक यहाँ तक आ पहुँचा था।

उसे देखकर महाराज ने जल्दी से पूछा—'क्यों रे, कहाँ से—पाटन से आ रहा है? किसने भेजा है? पाटन के क्या समाचार हैं?'

'महाराज! समाचार बहुत बुरे तो नहीं हैं!'

'क्यों क्या हुआ? क्या भोजराज आ रहे हैं?' दामोदर ने जल्दी से पूछा।

'जी नहीं, भोजराज तो नहीं आ रहे, परन्तु उनका सेनापति कुलचन्द्र आया है!'

'आया है कि आनेवाला है?' दामोदर ने व्यग्र होकर पूछा।

'आ ही गया है, प्रभु! यही तो वह कह रहा है? क्या आपने नहीं सुना?' भोगादित्य ने स्पष्टीकरण किया और ऐसा करते हुए चंड शर्मा की ओर एक अर्थपूर्ण दृष्टि डाली।

'जरूर आया होगा। वहाँ रक्षा करने के लिए तो कोई है नहीं, इस-लिए आया ही चाहे।' चंड शर्मा ने धीरे से कहा।

'आकर क्या किया?' महाराज ने पूछा।

'परकोटे के बाहर उसकी सेना पड़ी है। नगर को चारों ओर से घेर लिया है। वह पाटन को उजाड़ने का प्रयत्न करेगा—इसलिए महाराज से मदद माँगने के लिए कोटपाल ने मुझे भेजा है...'

'मेरी मदद? और यहाँ से? यहाँ से अब कैसे पहुँचा जा सकता है? दामोदर! यह तो गजब ही हो गया। वहाँ दंडनायक को खबर क्यों नहीं की? उनसे मदद माँगनी चाहिये थी।'

'दंडनायक के पास भी आदमी भेजा है, महाराज!'

'दंडनायक भला वहाँ से हिल सकते हैं? उनकी अनुपस्थिति में अर्बुद-

पति का भरोसा ही क्या ? न जाने क्या कर बैठें, महाराज !' भोगादित्य ने दूर की कौड़ी लाने का प्रयत्न किया, ताकि महाराज को इस दुस्साहस के बारे में और जानकारी हो सके।

'महाराज ! कुलचन्द्र भले ही पाटन आये; परन्तु वह वहाँ रुक नहीं सकता। अभी मालवा लम्बा युद्ध करने के लिए तैयार नहीं है !'

'परन्तु वह जो पाटन को घेरे पड़ा है सो ? वह तो हमने बहुत बड़ी भूल की, दामोदर ! सिन्ध तो जब जीता जायेगा तब की बात, परन्तु मालवा तो उसके पहले ही गुजरात को हड़प कर जायेगा।'

'महाराज ! यह तो गीता के उस श्लोक की ही तरह हुआ कि "यो ध्रुवाणि परित्यज्य"....भोगादित्य ने धीरे से कहा—'इस हिसाब से तो सिन्ध हमें महँगा ही पड़ेगा।'

'जल्दबाजी तो बहुत हुई है परन्तु अब यहाँ से हिला नहीं जा सकता, वहाँ पहुँचा नहीं जा सकता और पाटन को बचाया नहीं जा सकता। हमारी स्थिति तो एक पहेली की तरह हो गई है ! अब तो मेहता ही कोई रास्ता बतायें।' चंड शर्मा ने विनयपूर्वक कहा और दामोदर की ओर देखने लगा।

'देखिये, महाराज ! कुछ भी नहीं होगा।' दामोदर ने निश्चयात्मक स्वर से कहा—'सिन्ध को जीतना है, चेदि पर आक्रमण करना है; और पाटन को बचानेवाले तो वहाँ बैठे ही हैं। जिससे पाटन के गौरव को क्षति पहुँचे ऐसा कदम कोई भी नहीं उठायेगा !'

'कौन बचायेगा, प्रभु ? बालुकराय ? या दंडनायक ? इन दोनों में से किसी के भी वहाँ पहुँचने जैसी स्थिति है ? फिर कौन बचायेगा ?' भोगादित्य ने पूछा।

'बचायेंगी—देवी चौला—और खुद पाटन के निवासी ! तुम भोगादित्य ! पट्टनियों को पूरी तरह से जानते नहीं हो। पाटन का तो एक छोटा दुधमुँहा बच्चा भी इस बात को जानता है कि पाटन का गौरव अविच-

लित रहना चाहिये। मैं पुनः कहता हूँ कि पट्टनी पाटन को बचायेंगे; और देवी चौला देवी बचायेंगी....'

'बचायेंगी नहीं, प्रभु, पाटन को तो पूरी आन-बान से देवी ने बचा ही लिया है!' सोमनाथ के रक्षक का लड़का ठीक अवसर पर आ पहुँचा था, उसने प्रवेश करते हुए दामोदर के अधूरे वाक्य को पूरा किया।

'लीजिये, सुन लीजिये, यह कोई और आया है—नया सन्देशा लेकर।' दामोदर आनन्दित हो उठा था।

'यह कौन बोल रहा है?' महाराज ने उस ओर देखा। वहाँ खड़ा एक रूपवान किशोर महाराज को प्रणाम कर रहा था।

'महाराज! यह तो मैं हूँ, चौलादेवी का सन्देशा लाया हूँ!'

'कहाँ है?'

'मेरी जिह्वा पर। यह रही देवी की मुद्रा!' उसने रत्न-जटित स्वर्ण मुद्रा महाराज के हाथ में रख दी।

'क्या कहलवाया है देवी ने?'

'महाराज! पाटन के नगरपति ने कुलचन्द्र से गौरवपूर्वक कहा कि आज पाटन देने के लिए प्रस्तुत है, तब देखना, लेने में आगा-पीछा मत करना। हम पट्टनी तो समुद्र-यात्रा की एक ही खेप में सारी समृद्धि पुनः ले आयेंगे। इसलिए तुम्हें आज जो अवसर मिला है सो जितना लिया जा सके ले जाना।'

दामोदर और भीमदेव यह सुनकर रोमाञ्चित हो गये।

'परन्तु नगरी तो लूट ही गया न?' भोगादित्य ने पूछा।

'नगरी लूट गया, लूट गया, क्या लिये बैठे हो, भोगादित्य! यह तो इस वीरकथा का अभी पहला अध्याय ही हुआ। पूरा तो सुन लो।' दामोदर उमंगित हो उठा था। उसे विश्वास हो गया था कि पट्टनियों ने रिपु-दल को अवश्य ही किसी अजेय तत्व का दर्शन कराया होगा।

'देवी ने कहलवाया है, महाराज, कि पट्टनियों ने युद्ध नहीं किया;

और कुलचन्द्र को बिना युद्ध का जयपत्र लेकर रह जाना पड़ा। पट्टनियों ने शहर को लुट जाने दिया—और दोनों हाथों से मोती दे-देकर उसे पाटन की समृद्धि से अभिभूत कर दिया। अन्त में मालवा की राज्य-लक्ष्मी गुजरात को मिले ऐसे शकुन करके वह चला गया!'

'गया? चला गया?'

'हाँ, महाराज! वह तो दूसरे ही दिन रवाना हो गया! लम्बा युद्ध उसके अनुकूल नहीं था। दंडनायक और बालुकराय का डर भी था।'

'परन्तु मालवा की राज्य-लक्ष्मी गुजरात को मिले ऐसे कौन-से शकुन करता गया?' महाराज ने पूछा।

'महाराज! उसने राजमहल के घटिकागृह के पास कौड़ियाँ गड़वाई!'

'ऐं! सच? महाराज! तब तो मालवा की राज्य-लक्ष्मी निश्चय ही गुजरात का वरण करेगी!' दामोदर बोला—'आ-हा! यह तो तूने ऐसे समाचार दिये कि जिससे गई हुई समस्त समृद्धि की कमी पूरी हो जायेगी।'

'असल में तो कोटपाल के इस सन्देशवाहक को मुझे लौटा देना था। परन्तु मुझे थोड़ी देर हो गई। महाराज! देवी ने कहलवाया है कि पाटन अविजित रहा है ऐसा मानकर ही महाराज सिन्ध-विजय करें—यहाँ कोई नहीं आया ऐसा समझकर ही महाराज वहाँ युद्ध करें!'

सोमनाथ के रक्षक के लड़के के सन्देश ने सभी को नये सिरे से प्रोत्साहित किया।

'तेरा नाम क्या है, लड़के?' महाराज ने पूछा—'तू बहुत जल्दी सन्देशा लाया। और शुभ समाचार भी लाया। तेरा नाम क्या है?'

'महाराज! मुझ अकिंचन ब्राह्मण का नाम ही क्या?'

'ब्रह्मदेव हो?'

'हाँ, महाराज!'

'नाम?'

'नाम तो, महाराज, मेरा कुछ भी नहीं है। सोमनाथ के रक्षक का लड़का—यही मेरा नाम है!'

'अच्छा—जिन रक्षकों ने गर्जनकों को जल-हीन मरुस्थल में भटका-कर प्रतिशोध किया—और स्वयं भी प्राणार्पण किये वही रक्षक?' दामोदर ने पूछा—'तू उनका लड़का है?'

'हाँ, महाराज! मैं उन्हीं का उत्तराधिकारी हूँ।'

'अच्छा? ऐसी बात है!'

सभी प्रशंसापूर्वक उस किशोर की ओर देखने लगे।

महाराज को मन-ही-मन धूर्जटि, भुवाग और धिज्जट की याद हो आई। कितनी दिव्य और पावन कथा है वह! और उनकी याद दिलाने-वाला यह किशोर! कितना सच्चा और वास्तविक उत्तराधिकारी है!

२८. हम्मुक की पराजय

युद्ध-परिषद ने अपना काम अत्यधिक उल्लास से पूरा किया। दूसरा दिन होते ही हजारों आदमी दूने उत्साह से नया रास्ता बनाने के काम में लग गये। अब सुमरा के जलदुर्ग को भी पाटकर उसके ऊपर पुल बनाने के लिए बालू, पत्थर, पेड़ और मिट्टी के ढेर लगाये जाने लगे। पुनः रात-दिन लगातार काम शुरू हो गया। कोई कल्पना भी न कर सके इतनी जल्दी-जल्दी पानी पर पुल बनने लगा।

हम्मुक भी डर तो गया ही था, इसलिए उसने विभिन्न युक्तियों से सेतुबन्ध के काम को रोकने और किये काम को नष्ट करने के प्रयत्न प्रारम्भ किये। उसने कई नौकाएँ तैयार करवाईं। प्रत्येक नौका में बीस आदमियों के लिए जगह थी। और प्रत्येक नौका के आगे और दोनों बाजुओं की ओर लोहे का एक-एक तेज और नुकीला फला लगा हुआ था, जिसके कारण कोई दूसरी नौका उसके सामने या आस-पास आ नहीं सकती थी। इन नौकाओं में बैठकर तीरन्दाजों ने काम करनेवालों पर तीर बरसाना आरम्भ किया।

इस पर दामोदर ने आडावला में इकट्ठा किये हुए अनगिनत मटकों को काम में लाने का आदेश दिया।

कई दिनों से मटकों में बन्द साँपों को उसने उन नौकाओं की ओर छुड़वा दिया। फुँफकारते हुए साँप पानी में तैरने लगे और नौकाओं का सहारा देख उन्हीं की ओर लपके। साँपों के भय के मारे नौकाओं में भगदड़ मच गई। दो-एक नावें तो उलट ही गईं। दामोदर ने तत्काल

कुशल मजनीकों (पत्थर फेंकनेवाले) द्वारा लौटती हुई नौकाओं पर पत्थर बरसाना शुरू किया। इस तरह काम निर्विघ्न होता चला गया।

ज्यों-ज्यों पुल तैयार होता गया उसके रक्षणार्थ दोनों ओर गज-सेना रहने लगी। साथ ही दिन-रात के अखण्ड पहरे की व्यवस्था भी की गई। काम में कोई तोड़-फोड़, विश्वासघात या धोखाधड़ी न करने पाये इसके लिए सैनिक मुस्तैदी से सारा-सारा दिन देख-रेख रखने लगे।

दामोदर, महाराज, मकवाणाजी, रा', भोगादित्य आदि स्वयं भी सेतुबन्ध के काम का निरीक्षण करते थे।

अन्त में पुल तैयार हो गया। महाराज की समस्त सेना—पदाति, रथ, अश्व-सेना, गज-सेना, ऊँट-सवार—उस पर से पार हो गई। न तो एक जोड़ हिला और न कहीं कोई कमजोरी ही मालूम पड़ी।

सेतु के कारण जल का प्रवाह दोनों ओर रुक गया, और रुका पानी चारों ओर फैलने लगा*। दामोदर ने इस फैलते हुए पानी में बहुत-सी मिट्टी छुड़वा कर चिकना कीचड़ करवा दिया। इस तरह जो जल पहले चारों दिशाओं से हम्मुक की रक्षा करता था, आज वही उसका भक्षण करने के लिए तैयार हो गया। परकोटे में से भागने का अब केवल एक ही मार्ग बचा था—वही सेतुमार्ग जिसे महाराज भीमदेव ने तैयार करवाया था। बाकी चारों ओर पानी था और दामोदर द्वारा तैयार करवाया हुआ कीचड़। घोड़े, पैदल और हाथी जो भी उसमें चलते धँस जाते।

सालंकी सेना ने परकोटे के सामने पड़ाव डाल दिया। फिर दोनों ओर से एक दूसरे पर तीर, गोफन से पत्थर, अग्नि-गोले, राख, हरताल और मिर्च की बुकनी फेंकी जाने लगी। और इस तरह घमासान लड़ाई शुरू हो गई।

मकवाणाजी और रा' प्राणों का मोह छोड़कर सीढ़ियाँ लगाने के लिए परकोटे के पास जाने का प्रयत्न करने लगे। आगे बढ़ने पर उन्हें

*द्व्याश्रय सर्ग ८ः ९६

पता चला कि परकोटे के ठीक पास, प्राचीर से लगे हुए कई गहरे कुएँ हैं। इन कुओं को पाटे बिना परकोटे की दीवालों को छूना सम्भव नहीं था। इसलिए रातोंरात, बालू, मिट्टी और पत्थर लाये गये और कुएँ पाटने का काम आरम्भ हुआ। अब परिस्थिति यह थी कि एक ओर तो भयंकर युद्ध चल रहा था और दूसरी ओर आदमी रात-दिन काम करते थे। सारी रात काम चलता रहा। दूसरे दिन से तो हालत यहाँ तक पहुँच गई कि साँझ होने के बाद भी वैर से प्रेरित दोनों सेनाएँ मशाल जलाकर लड़ती रहतीं। अन्धकार के कारण घमासान बढ़ जाता और कान से सुनाई न दें ऐसे तुमुल शब्दों से रणक्षेत्र गूँजने लगता।

ऐसी ही एक भयानक रात मे केसर मकवाणा थोडे-से सैनिकों के साथ अपने घोडे पर सवार परकोटे की ओर बढ़ा। कई दिनों से चल रहे युद्ध के कारण वह ऊब गया था। उसने निश्चय कर लिया था कि आज कितना ही जोखम क्यों न सहना पड़े परकोटे पर चढकर, दरबानों को मारकर दरवाजा खोल ही देगा; जिससे प्रभात होते ही दोनों सेनाओं की सीधी भिड़न्त हो सके और साँझ होने के पहले युद्ध का निपटारा हो जाये।

परकोटे से रस्सी की सीढ़ियाँ लटकाने के लिए उसने समीप के जल-मार्ग से कई विकराल भीलों और बाघरियों को रवाना किया था। मगर तक उन बाघरियों से डरते और उनके शरीर की गंध पाते ही दूर भाग जाते थे। तिस पर इन बाघरियों ने आवल (एक वनस्पति) और ढाक की टहनियाँ अपने हाथों मे ले रखी थीं, जिससे उनके शरीर की गन्ध और भी बढ़ गई थी। ऊपर से तीरों की बौछार हो रही थी। हम्मुक-दल को भ्रम में डालने और यह विश्वास कराने के लिए कि सोलंकी सेना का कोई भी हिस्सा परकोटे के पास नहीं पहुँच सका है, काफी दूरी पर अलाव और मशालें जलाने तथा हाथियों की घंटियों की आवाज करने की व्यवस्था की गई थी। मजनीकों की गोफन का पथराव भी दूर से ही हो रहा था। कई कुशल मजनीक इतनी सावधानी से पत्थर चला रहे थे कि पहले, दूसरे

और तीसरे वार में तो परकोटे की दीवार पर का तीरन्दाज नीचे गिर ही जाता था।

इस तरह जिस समय गोफनियों और तीरन्दाजों की पारस्परिक होड़ हो रही थी वाघरियों द्वारा फेंकी हुई कमन्द को रेशमी डोरी के सहारे मकवाणाजी और उनके साथी परकोटे पर चढ़ गये और रक्षा-प्राकार पर एक जगह सन्नाटा पाकर वहीं से अन्दर की ओर कूद पड़े।

अन्दर पहुँचते ही संख्यातीत शत्रुओं के साथ अल्पसंख्यक सोलंकियों के जौहर की अग्नि-परीक्षा होने लगी।

ठीक उसी समय परकोटे के मुख्य द्वार पर बाहर से जोर-शोर के साथ हमला होने लगा।

और देखते ही-देखते अधिकाधिक सैनिक परकोटे पर चढ़कर अन्दर की ओर कूदने लगे।

संकट प्रतिक्षण बढ़ता जा रहा था। हम्मुक को इसकी सूचना दी गई। अब वह राजमहल में से बाहर निकला। उसी समय उधर बाहर के गज-सैनिकों के दबाव और टक्करों के कारण दरवाजे की चूलें तक हिल उठीं। और इधर मकवाणाजी ने लाज रख ली। साक्षात् काल-जिह्वा-जैसी उसकी तलवार ने अनेकों दुश्मनों को मौत के घाट उतार दिया। वह झपटकर आगे बढ़ा, दरवाजे के मुख्य चौकीदार को मार गिराया और शीघ्रता से द्वार की अर्गलाएँ खोल दीं। पानी के रेले की तरह धड़धड़ाती हुई सोलंकी सेना अन्दर घुस आई। सबके आगे-आगे महाराज भीमदेव थे। उनके धनुष-बाण ने आज सोमनाथी रंग धारण किया था। अपने अचूक निशाने से अनेक सैनिकों को धूल चटाते और सैकड़ों योद्धाओं से रक्षित होते हुए भी, सिर्फ अपनी ही तलवार से रक्षित, वह आगे बढ़ते जा रहे थे। सवेरा होने में थोड़ी ही देर थी। पौ फट चुकी थी। महाराज ने कुछ फासले पर हम्मुक को हाथी पर चढ़े घूमते देखा। उनका जयश्री भी आगे बढ़ा। सिंहनाद ने अपने हाथी को सीधे हम्मुक पर ही हुंकारा था।

परन्तु जलदुर्ग के योद्धा भी गाफिल नहीं थे। अपने स्वामी पर आते संकट को उन्होंने देखा, परखा और सैकड़ों की संख्या में हम्मुक के हाथी को घेरकर अपने बीच में कर लिया। अब दोनों नरपतियों के गजराज एक-दूसरे के बिलकुल आमने-सामने आ गये थे। हुँकार, चीख-पुकार, गर्जन-तर्जन, शंख-ध्वनि, शहनाई, ढोल, दमामे, और मृदंग-भेरी की आवाज चारों ओर से सुनाई पड़ने लगी थी।

रणक्षेत्र के उस दृश्य को देखकर कायरों का दिल दहल उठा। दोनों दल एक-दूसरे से गुँथ गये। धनुष की अपेक्षा तलवारें ही अधिक काम में आने लगीं। शोणित की फुहारें उड़ने लगीं। लाशों-पर लाशें गिरने लगीं। घायलों और मुर्दों के ऊपर होकर घुड़सवार आगे बढ़ने लगे। तभी महाराज भीमदेव ने अपने हाथी पर खडे होकर बड़े जोर से शंख बजाया। उस शंख-ध्वनि को सुनकर सबके कलेजे थर्रा गये और क्षण-भर के लिए युद्धक्षेत्र में नीरवता छा गई।

'सुमरा! आदमियों को क्यों कटवाये दे रहा है! आ, हमीं दोनों लड़ लें!' महाराज भीमदेव ने उच्च स्वर से हम्मुक से कहा।

'अरे, जानता हूँ तुझे, जैसा लड़ा था सोमनाथ और कथकोट में। सुमरा भगोड़ों के साथ द्वन्द्व-युद्ध नहीं करता!'

इसके उत्तर में महाराज भीमदेव ने धनुष की प्रत्यंचा को कान तक खींचकर ऐसा सनसनाता हुआ तीर मारा कि अगर महावत ने सुमरा के हाथी को जरा-सा झुका न दिया होता तो उसका शिरस्त्राण ही उड़ता चला जाता। तीर को व्यर्थ जाते देख सिंहनाद ने जल्दी से हाथी को आगे बढ़ाया। सूँड से सूँड और गजदन्त से गजदन्त भिड़ाते हुए दोनों गजराज बड़े जोर के धक्कों के साथ आपस मे टकराये। उसी समय पक्षी के उड़ने की तरह महाराज भीमदेव उछले और सुमरा के हाथी के हौदे में जा कूदे। एक ही झटके में उन्होंने हम्मुक को नीचे ढकेल दिया। परन्तु चारों खाने चित गिरने के बजाय हम्मुक गेंद की तरह उछलकर

धरती पर सीधा खड़ा हो गया। उसने भीमदेव पर पूरी शक्ति से गदा फेंकी। दोनों सेनाओं ने तुमुल और भयंकर रण-निनाद किया। मकवाणाजी, रा, दामोदर और भोगादित्य आदि महाराज के रक्षणार्थ और उन पर झपटते हुए हजारों-हजार सैनिकों को रोकने के लिए आगे बढ़े।

भीमदेव ने हम्मुक का वार चुकाया, शीघ्रता से हाथी के पीछे की ओर से उतरे और तलवार खींचकर हम्मुक पर झपटे। हम्मुक की तलवार से उनकी तलवार खटाक-से जा टकराई। एक कदम पीछे हटकर महाराज पुनः हम्मुक पर झपटे और झटके से उसकी तलवार उड़ा दी। हम्मुक तीक्ष्ण खंजर निकालकर जोर से महाराज पर लपका। उसी समय कोई बीच में उछलकर आ गया। महाराज पर खंजर से वार करता हुआ हम्मुक मारे जोश के नीचे झुक गया था। महाराज पर का वार तो खाली गया, परन्तु बीच में उछलकर उस वार को अपने पर रोकनेवाला युवक खून से सराबोर होकर महाराज के पैरों के पास ही गिर पड़ा था। सिर्फ एक नजर उधर डालकर, हम्मुक के टुकड़े उड़ा देने के लिए महाराज ने तलवार उठाई, तलवार हवा में लहराकर अभी उसके ऊपर गिरने भी नहीं पाई थी कि किसी ने बिजली की तरह लपककर हम्मुक को पीछे से बाँहों में जकड़ लिया और जमींदोस्त कर दिया। 'महाराज ! इसे छोड़ दीजिये !'

हम्मुक के टुकड़े उड़ाने के लिए उठाई हुई महाराज की तलवार क्षण-भर के लिए उठी ही रह गई; उन्होंने कहा—'मकवाणाजी ! परे हट जाइये—इसे तो मार ही डालने दीजिये।'

'महाराज ! एक यही तो मेरा बलवान शत्रु है। यह भी न रहा तो मैं किससे लड़ूँगा ? इसे छोड़ दीजिये महाराज !' मकवाणाजी ने कहा।

उधर हम्मुक मकवाणाजी की पकड़ से छूटने का प्रयत्न कर रहा था। अब महाराज ने एक क्षण भी गँवाना उचित न समझा। झपटकर उन्होंने हम्मुक को पकड़ लिया और कहा—'छोड़ दो, मकवाणाजी !'

मकवाणा ने हम्मुक को छोड़ दिया, महाराज भीमदेव ने उसे इतना कस कर पकड़ा कि वह हिल भी नहीं सका।

हम्मुक के पकड़े जाते ही उसकी सेना भागने लगी, और सोलंकी सेना विजय-ध्वनि करती हुई उसका पीछा करने लगी। महाराज ने तत्काल हम्मुक के हाथों में लोहे की हथकड़ी डाल दी। साथ ही दूसरे सैनिकों ने रस्सियों से उसके पाँव जकड़ दिये।

हम्मुक को बाँधकर महाराज दो कदम पीछे हटे। उनके पैरों में गीला-गीला कुछ लगा। उन्होंने उस किशोर को वहाँ पडे देखा। वह स्वयं भी तत्काल वहीं बैठ गये।

'अरे! तेरे चोट लगी है क्या? मकवाणाजी! सिंहनाद! जरा इसे देखो तो—और पानी लाओ—'

वह किशोर अन्तिम साँसें ले रहा था। उसके मुँह पर एक अनुपम मुस्कराहट खेल रही थी। पानी आते ही महाराज भीमदेव ने स्वयं अपने हाथों से उसके मुँह में थोड़ा-सा पानी डाला और अत्यन्त स्नेहपूर्वक उससे पूछा—'लड़के! ज्यादा चोट लगी है क्या? तेरा नाम? तेरा नाम क्या है?'

'महाराज! मैं तो सोमनाथ के रक्षक का उत्तराधिकारी हूँ!' इतना कहते-कहते उसके मुँह पर एक ऐसे अलौकिक आनन्द की ज्योति प्रस्फुटित हुई कि महाराज, मकवाणाजी और दूसरे सभी देखते ही रह गये। दूसरे ही क्षण उसका सिर एक ओर को लुढ़क गया।

स्वेच्छा से मृत्यु का वरण करने का दिव्य आनन्द एक मोहक मुस्कराहट के रूप में उसके चेहरे को स्वर्गीय आभा प्रदान कर रहा था। उस दृश्य को देखकर सभी की आँखों में आँसू भर आये।

३९. चेदिराज की ओर

हम्मुक ने महाराज भीमदेव को बहुत-से हाथी दिये। उसको पराजित कर और उसके बंदीगृह में पड़ी हुई अनेक नारियों को मुक्त करके महाराज वहाँ से लौटे।

अब महाराज भीमदेव की सेना ने चेदि देश की ओर प्रयाण किया।

उस जमाने में चेदि देश का अत्यधिक महत्व था। मालवा की ही भाँति वह भी ज्ञान, पराक्रम और वैभव का केन्द्र माना जाता था। कलचुरि* के गांगेयदेव ने 'विक्रमादित्य' की पदवी धारण की थी। और देखा जाये तो वह एक तरह से विक्रमादित्य था भी। अपना अन्तकाल समीप आया देख वह रहने के लिए प्रयाग चला गया था।

उसका पुत्र कर्णदेव इन दिनों सिंहासनासीन था। वह दृढ़ निश्चयी और विजयी सेनापति था।

शुभ नक्षत्र में उसे जन्म देने के लिए, उसकी मा देहमती ने अत्यधिक कष्ट-साध्य होते हुए भी प्रसव-काल को रोके रखा था। उसकी पत्नी आवल्ल देवी हूण जाति की महिला थी। हूणों के स्वभावानुसार वह भी युद्ध और विजयों से प्रसन्न होती थी। इन दिनों वह मध्यदेश में एक विशाल नगर का निर्माण कर रहा था।

जब यह सुना कि गुर्जरराज भीमदेव आ रहा है तो चेदिराज भी युद्ध करने के लिए प्रेरित हुआ।

---

*चेदि देश—आजकल का बुन्देलखंड। त्रिपुरी तो प्रसिद्ध है ही।

लम्बा प्रवास कर के जब सोलंकी सेना त्रिपुरी नगरी के पास पहुँची तो दामोदर ने महाराज भीमदेव से कहा—'महाराज! चेदिपति मालव-राज का शत्रु है। मालवा के महाराज मुंज ने कर्णदेव के प्रपितामह* को पराजित किया था। भोजराज ने इसके पिता को खदेड़ा था। शत्रु का शत्रु हमारा मित्र होता है—राजनीति के इस सूत्र को मानकर यदि हम पहले इसे भेद-नीति के द्वारा वश में करने का प्रयत्न करें तो कैसा रहे?'

'परन्तु इसने गुजरात की निन्दा जो की है? फिर इससे युद्ध करने ही के लिए तो हम इतनी दूर चलकर आये हैं!'

'युद्ध अनेक प्रकार के होते हैं, महाराज! जिस समय जैसा युद्ध करना हो उस समय वैसा ही युद्ध करनेवाले की हमेशा जीत होती है। हमारी सेना बहुत लम्बा प्रवास कर चुकी है। पाटन मे हमारी प्रतीक्षा हो रही है। दो वर्षों का लम्बा समय सिन्ध के युद्ध में बीत चुका है। कर्णदेव को भी हमारे ही समान मालवा को जीतने की आकांक्षा है। भविष्य में किये जानेवाले किसी महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम का यदि आज यहाँ बीजारोपण कर दिया जाये तो उसे भी एक प्रकार की विजय ही समझना चाहिये। क्योंकि महाराज, विजय भी अनेक प्रकार की होती है। और जो तलवार चलाये बिना जीतता है, वही तो सबसे बड़ा सेनापति होता है। सिन्ध में महाराज ने तलवार की सहायता से विजय प्राप्त की। क्या यहाँ बिना तलवार चलाये ही विजय नहीं प्राप्त कर सकते?'

'दामोदर! जैसा कि अपने गुप्तचर ने बतलाया, कर्णदेव हमसे ईर्ष्या करता है। इसलिए जब आ ही गये हैं तो यहाँ भी युद्ध करके ही क्यों न विजय-लाभ किया जाये?'

'मैं तो इसलिए कह रहा हूँ, महाराज, कि पाटन को सबसे अधिक

---

*युवराज द्वितीय—मालवपति मुंज ने उसे हराकर उसके सेनापति का वध किया था।

अन्देशा मालवा से है, और चेदिराज ठहरा मालवा का परम्परागत शत्रु। इसे निर्बल करने की अपेक्षा मालवा के विरुद्ध उभाड़ना चाहिये, जिससे दोनों निर्बल हो जायें और हमारा काम बने। यदि महाराज की आज्ञा हो तो मैं स्वयं ही जाकर कर्णदेव से मिलूँ!'

'किस लिए?'

'यह जानने के लिए कि सन्धि या विग्रह में उसे क्या पसन्द है!'

'तू पाटन का महामंत्रीश्वर है, दामोदर! पाटन के महामंत्रीश्वर संधि या विग्रह के लिए नहीं जाया करते। यह काम तो सामान्य कोटि के संधिविग्रहक करते हैं।'

'पाटन से रवाना होने के पहले मैंने जो कुछ कहा था उसे आप भूले न होंगे, महाराज! पद की प्राप्ति के बाद उसका परित्याग करने में जो आनन्द है—अब मेरा हृदय उसी आनन्द के लिए तड़प रहा है।'

'सो किस लिए दामोदर! तुझे हुआ क्या है?'

'कुछ हुआ-हवाया नहीं है, महाराज! परन्तु मालवा की पराजय को मूर्त रूप देने के लिए किसी को वहाँ जाकर रहना होगा। इस काम के लिए यदि महाराज मुझे भेजें तो मैं यहीं से उस काम को अंगीकार करना चाहूँगा। मैं ही महाराज का सामान्य संधिविग्रहक बनूँगा।'

'यह तो चौला से पूछना होगा। इन दो वर्षों के लम्बे समय में उसने तेरे लिए कहीं कोई योग्य स्त्री ढूँढ़ रखी हो, तो?' भीमदेव ने विनोद किया।

'अच्छा ही है; परन्तु क्या महाराज मुझे चेदिराज से मिलने की आज्ञा प्रदान करते हैं?'

'भले ही जा। परन्तु देखना, कहीं वह तुझे बना न दे। वह भी कोई मामूली हस्ती नहीं है। गागेयदेव-जैसे का बेटा है वह!'

थोड़ी देर के बाद महाराज की छावनी में से दामोदर एक सामान्य संधिविग्रहक के भेष मे कर्णदेव से मिलने के लिए रवाना हुआ।

कर्णदेव की महत्वाकांक्षा के बारे में दामोदर ने सुन रखा था। अवन्तीनाथ की स्पर्द्धा में वह कर्णावती नगरी का ऐसा सर्वाङ्ग सुन्दर निर्माण कर रहा था जिसे देखकर एक बार तो धारा नगरी भी पानी भरने लगे। उसके यहाँ भी विद्वत्सभा थी। वह भी अपने माडलिकों और सामन्तों के साथ इन्द्रसभा-जैसी राज-सभा करता था। दामोदर उसकी महत्वाकांक्षा को उभारकर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देना चाहता था कि वह स्वयं होकर पाटन से मैत्री का प्रस्ताव करे और तब पाटन उसके उस प्रस्ताव को स्वीकार कर अपना मित्र बना ले।

नगर के बाहर के एक उद्यान में आकर वह रुका। वहाँ उसने एक माली और मालिन को फूल चुनते हुए देखा। दोनों ने एक मनोरंजक होड़ बद रखी थी। होड यह थी कि देखें, दोनों में कौन अधिक फूल चुनता है।

दामोदर कान लगाकर उनकी बातें सुनने लगा।

'हमारे राजा के साथ जब महारानी फूल चुनने आती हैं तो बाजी मार ले जाती हैं, इसलिए तू कहीं इस भ्रम में मत रहना कि मुझे हरा देगी।'

'परन्तु देखो, मेरी डलिया तो भर गई है।'

'अच्छा, बता, अभी तक कितनी डलिया भर चुकी?'

'यह एक पूरी। अच्छी तरह आँखें खोलकर देख लो।' मालिन ने झटककर जवाब दिया।

माली ने जमीन पर पड़े हुए एक कपडे को उठाते हुए कहा—'जरा इधर देख, ये तीन डलिया तो पहले ही हो चुकीं और अब यह चौथी हो रही है!'

'ओ-हो-हो! तब तो मैं जरूर हारी; परन्तु हारी कैसे, तुमसे छली गई हूँ!'

'दुनिया में कोई भी राजी-खुशी से नहीं हारता; जो छला जाता है

वही हारता है ! हमारे महाराज गांगेयदेव को भी मालवपति ने इसी प्रकार हराया था। तभी तो महारानीजी बार-बार महाराज को सतर्क करती रहती हैं कि, महाराज, जो छला जाता है वही हारता है।'

दामोदर ने बात-चीत सुनी और महारानी के बारे मे मन-ही-मन एक धारणा बना ली।

इसी बीच कई दास-दासी दौड़ते हुए आये। उन्हें देखकर मालिन ने कहा—'अरे, यह तो स्वयं महारानीजी इस ओर चली आ रही हैं !'

'कौन ? महारानीजी ? स्वयं आवल्ल देवी ?'

'हाँ, हाँ, दिखता नहीं है क्या ? जाओ, तुम जाकर उस कुएँ के थाले के अन्दर बैठ जाओ !'

माली दौड़कर कुएँ के थाले के अन्दर जा बैठा। दामोदर एक वृक्ष के नीचे बैठा आराम कर रहा था, उसने वहीं से आगन्तुकों को देखने के लिए नजर उठाई।

कृष्णवर्ण के एक सुन्दर, चंचल अश्व पर सवार आवल्ल देवी को आते हुए उसने देखा। उसके पीछे-पीछे घोडे पर सवार शस्त्र धारण किये हुए महिला अंग-रक्षकों का दल चला आ रहा था।

उसके दीप्तिमान आयत लोचन, सुन्दर, सीधी उठी, और नासापुटों की ओर किंचित् मुड़ी हुई, गर्वोन्नत नासिका, प्राकृत स्मित से मंडित मुख-मंडल और सबसे अधिक उसका नाति-गौर सहज श्याम लुभावना रंग दामोदर की आँखों में रम रहा।

४०. आवल्ल देवी

दामोदर देखते ही समझ गया कि यह सहज श्यामांगी, प्रतिभाशालिनी हूण नारी विजय और युद्ध में प्रसन्न होनेवाली है। कर्णदेव की माता ने वीर-प्रसू बनने के लिए मृत्यु का सहर्ष आलिंगन किया था। यह नारी भी उसे उसी जैसी, वीरता को जीवन का ध्येय माननेवाली प्रतीत हुई। दामोदर ने अनुभव किया कि कर्णदेव की सभा में उसके आगमन का सन्देशा पहुँचाने का ही नहीं, अपितु आने के हेतु की भूमिका तैयार करने का काम भी यदि यह नारी कर सके तो अभीष्ट परिणाम होकर ही रहेगा। वह मन-ही-मन ऐसी योजना गढ़ने लगा जिससे स्वयं होकर बोलने के बदले वही उससे कुछ पूछने के लिए आकर्षित हो।

शिष्टाचार और मर्यादा को बनाये रख कर भी यदि नारी को आकृष्ट करना हो तो रंग सबसे बड़ा आकर्षण होता है। दामोदर ने घोड़े की काठी के झोले में से पाटाम्बर का एक टुकड़ा निकालकर इस तरह पेड़ की शाखा से लटका दिया, मानो धूप रोकने के लिए टाँगा हो। और तब उस पर अपना धनुष भी लटका दिया। धूप में उस कपड़े का रंग अप्सरा के उत्तरीय की भाँति चमक उठा।

रानी का ध्यान तत्काल उस ओर आकर्षित हुआ। पाटन का भारत-प्रसिद्ध पाटाम्बर वहाँ टँगा हुआ देखकर रानी ने अपने साथवाली शस्त्र-धारिणी नारी से पूछा—'क्या यहाँ कोई व्यापारी उतरा है ? कौन है ? गुर्जर राष्ट्र का मालूम होता है !'

'कहाँ, किधर है, देवी ! कैसे कह रही हैं कि गुर्जर राष्ट्र का रहने-

वाला है ?'

'वह उधर देख, वहाँ बहुमूल्य पाटाम्बर लटक रहा है। जाकर देख तो सही कि कौन है—यदि गुर्जर राष्ट्र का श्रेष्ठी हो तो बुलाती लाना !'

वह स्त्री दामोदर की ओर गई। दामोदर ने उसे आते देखा। मानो अपने घोड़े में ही मग्न हो इस तरह वह घोड़े के ही सामने घूम-फिरकर उसी पर हाथ फेरता रहा।

'श्रेष्ठी ! कहाँ के हैं ?' उस शस्त्रधारिणी नारी ने पूछा।

'क्यों ?' दामोदर ने पूछा।

'हमारी महारानीजी ने पुछवाया है।'

'मैं श्रेष्ठी नहीं हूँ। मैं तो महाराज भीमदेव के पास से आ रहा हूँ !'

'अच्छा !' और वह तत्काल महारानी के पास लौट गई।

यह सुनकर आवल्ल देवी को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह यह तो जानती थी कि सोलंकी सेना आ रही है। लेकिन वह इतनी निकट आ गई है और उसका एक आदमी यहाँ उद्यान में भी आ पहुँचा है, यह मालूम करके उस आगन्तुक का अभिप्राय जानने के हेतु से उससे मिलने के लिए वह उत्सुक हो गई। उसने अपना घोड़ा दामोदर की ओर बढ़ाया।

दूर से देखी हुई रानी को निकट से देखकर दामोदर चकित रह गया। आवल्ल देवी इतनी तेजस्वी लग रही थी, मानो बिजली की रेखा ही हो। उसकी वह तेजस्विता उसकी देह की आभा से और भी आलोकित हो रही थी। उसके दैहिक आकर्षण का मुख्य उपादान उसका सहज श्यामल रंग ही था। यदि वह गौर वर्ण होती तो इतनी तेजस्वी या सुन्दर कदापि न लगती। उसकी समग्र शरीर-रचना के अनुरूप ही उसका वह रंग था। जिस कुटुम्ब को गांगेयदेव का पराक्रम उत्तराधिकार में मिला हो उसी कुटुम्ब में ऐसी श्यामांगी, शक्तिशालिनी और तेजस्वी नारी हो तो वहाँ की राजनीति में युद्ध का पक्ष कितना प्रबल होगा इसे दामोदर अविलम्ब समझ गया। उसे देखते ही दामोदर के मन ने कहा कि यह हूण नारी

महाविजय से कम पर लेश-मात्र भी सन्तुष्ट नहीं हो सकती।

'पाटन से आ रहे हो?' उसने आते-ही-आते मधुर स्वर से पूछा।

'नहीं, देवी! हूँ तो पाटन का ही, परन्तु पाटन से नहीं आ रहा हूँ। महाराज भीमदेव हम्मुक को पराजित करके सिन्ध से यहाँ आ रहे हैं उन्हीं के साथ हूँ।' दामोदर ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया।

'सेनानायक हो?'

'नहीं, संधिविग्रहक हूँ।'

'क्या संधि-याचना करने आये हो?'

'सन्धि-याचना करने नहीं, विग्रह का कारण जानने।'

'यानी?'

'हमने सुना है कि त्रिकलिंगाधिपति की सोमनाथ-भक्ति प्रसिद्ध है। गांगेयदेव के प्रपितामह* द्वारा अर्पित की हुई कालिनाग की रत्न-जटित स्वर्ण मूर्ति अब भी सोमनाथ मे शोभा पा रही है। उनके द्वारा अर्पित की हुई चन्दन की सुगन्धित धूप आज भी चन्द्र-मौलीश्वर की सेवा में धरी जाती है। चेदिपति की यह सोमनाथ-भक्ति और सोमनाथ के रक्षक चौलुक्य-राज के प्रति उनकी मैत्री अविचल है, या वह युद्ध करना चाहते हैं,—मैं यही जानने के लिए आया हूँ!'

'चेदिनाथ तो मैत्री निबाहना भी जानते हैं और दुश्मन का किस प्रकार संहार करना चाहिये इसे भी जानते हैं!'

'यही जानते होते तो मैं क्या करने आता? क्या हमारे महाराज भीमदेव को मालवा के विरुद्ध प्रचंड गज-सेना तैयार नहीं करना है, जो वह यहाँ समय गंवाने आते? चेदिनाथ शत्रु को मारना नहीं जानते यह तो मानी हुई बात है, परन्तु उन्हें मैत्री निबाहना भी नहीं ही आता है।

---

*लक्ष्मण देव—उसने सोमनाथ की यात्राकर वहाँ भक्तिपूर्वक उपर्युक्त वस्तु भेंट की थी।

और इसी लिए मैं आया हूँ ।'

'क्यों ? यह काहे पर से कहते हो ? संधिविग्रहक की भाषा तो बड़ी ही विनम्र होती है—राजनीति तो यही बताती है ।'

'जब युद्ध करना हो तभी संधिविग्रहक की भाषा विनम्र, बल्कि अत्यन्त विनम्र होती है; और सामनेवाले को जाग्रत करना हो तब जरा कठोर । मैं तो चेदिपति को जाग्रत करने के लिए आया हूँ !'

'परन्तु तुमने जो यह कहा कि चेदिनाथ को शत्रु या मित्र कुछ भी बनना नहीं आता सो किस आधार पर ?'

'देवी ! जरा अपने प्रतापी श्वसुर को याद कीजिये—मालवराज ने उन्हे खदेड़ा । इसके बाद उनके पितामह को याद कीजिये—मुंजराज ने उन्हें हराकर त्रिपुरी नगरी को मटियामेट कर दिया । आज जिस महान नगरी का निर्माण कर्णदेव कर रहे हैं वह तो मालवपति भोजराज के ही लिए होगी न ? मालवा को जीतना तो अभी आकाश-कुसुमवत् ही है, और उसके पहले ही चौलुक्य चूड़ामणि भीमदेव की निन्दा करने की वृत्ति चेदिनाथ का भूषण बन गई ? एक शत्रु का संहार तो किया ही नहीं, और उसके पहले ही हम्मुक-विजेता को शत्रु बनाने की सलाह चेदिनाथ को किसने दी—क्या आपने ?'

'तुम पाटन के संधिविग्रहक हो ? तुम्हारा नाम ?'

'मुझे महाराज भीमदेव, स्नेहपूर्वक "दामोदर मेहता" कहकर पुकारते हैं !'

'अरे, तुम्हीं दामोदर मेहता हो ? तुम्हारा नाम तो हमारी राज्यसभा में भी प्रसिद्ध है ।' आवल्ल देवी ने और भी मधुर स्वर में कहा । दामोदर को वह मधुरता कुछ भयंकर लगी । अत्यन्त रूपवती नारी को कृत्रिम मधुरता का सहारा लेते देख चतुर दामोदर थोड़ा-सा काँप उठा । अभी वह कारणों की मीमांसा करने भी नहीं पाया था कि आवल्ल देवी बोली—

'एक ही मालवराज महाराज भीमदेव और चेदिनाथ दोनों का समान

रूप से शत्रु हो तो राजनीति के अनुसार क्या यह विषय दोनों की मैत्री का कारण नहीं हो सकता, दामोदरजी ?'

'मैं भी यही कहता हूँ, देवी ! महाराज भीमदेव से अमैत्री की बात चेदिपति को कहाँ से सूझ गई ?'

'परन्तु वह तो महाराज भीमदेव की यशोगाथाएँ सुनकर प्रसन्न होते हैं !'

'यह तो आप कह रही हैं, महारानीजी ! हमारे सन्देशवाहक तो दूसरी ही तरह के समाचार देते हैं !'

'नहीं-नहीं, वह सब गलत है। मालवराज को हराने की तुम्हारी इच्छा का महाराज समर्थन करते हैं। पाटनपति के लिए उनके हृदय में सम्मान है।'

'देवी ! मालवराज की शक्ति का जितना परिचय चेदिपति को है पाटनपति को उससे कहीं अधिक है। यदि चेदि अकेला रहा तो मालवपति उन्हें खदेड़ देगा। चेदिपति अभी पाटन के साथ युद्ध करें तो मालवराज को मुँह-माँगी मुराद मिल जायेगी। आपकी राजनीति की स्पष्ट जानकारी प्राप्त करने के ही लिए मैं यहाँ आया हूँ। देवी यदि चाहें तो मैत्री हो सकती है। वैसे पाटन युद्ध के लिए भी तैयार है !'

'परन्तु इस युद्ध का कारण क्या है ?'

'दोनों राजाओं के मन का सन्देह।'

'तुम इसे दूर कर दो।'

'पाटनपति के सन्देह का निवारण मैं कर दूँगा; चेदिपति के सन्देह का निवारण महारानी करें।'

आवल्ल देवी सोचती रही—'यदि ऐसा हो जाये तो तुम....'

'तब मैं मालवा को पराजित करने के कार्य में पाटन को सहयोग के लिए प्रेरित करूँगा।'

'तुम महाराज से कब मिलना चाहते हो ?'

आज ही शाम को विद्वत्सभा में। कल तो मुझे पाटनपति को सन्धि या विग्रह में से कोई एक मार्ग सुझाना है।'

'दामोदरजी, यदि मैं तुम्हारी पूरी बात मान लूँ तो क्या तुम मालवा के युद्ध में चेदिराज की सहायता करोगे?'

'सहायता करने की भली कही। मैं तो यहाँ से इस बात को पक्का करके ही जाऊँगा। विश्वास दिलाता हूँ कि जब समय आयेगा तब पाटन और चेदि एक दूसरे के साथ ही रहेंगे!'

'तो मैं भी महाराज को इसके लिए राजी करती हूँ!'

'ठीक है, मैं शाम को विद्वत्सभा में आ ही रहा हूँ। महारानीजी! आप भी वहाँ रहेंगी न?'

'हाँ, जरूर रहूँगी। परन्तु अब तो आप राज्य के अतिथि हुए। अब आपको यहाँ नहीं रहने दिया जा सकता।'

'नहीं, महारानीजी! मैं तो हमेशा से वृक्ष का ही अतिथि रहा हूँ!' आवल्ल देवी के आग्रह को अस्वीकार कर दामोदर उद्यान में ही रहा। शाम को वह महाराज कर्णदेव की विद्वत्सभा में गया। राजप्रतिहार के द्वारा उसने अपने आगमन का सन्देशा भेजा। कर्णदेव ने उसका आदर-सत्कार किया।

'गुर्जर राष्ट्र से क्यों आये हो? क्या महाराज भीमदेव पर कोई विपत्ति पड़ी है?'

'कभी कोई महापुरुष विपत्ति के बिना रहा भी है, जो महाराज भीमदेव पर विपत्ति न पड़े। एक विपत्ति तो यही सिन्ध के हम्मुक की थी। उससे महाराज किस प्रकार निवृत्त हुए यह तो उन हाथियों से मालूम हो जायेगा जो उसने महाराज की सेना को समर्पित किये हैं।'

'तो अब मालवराज की होगी?'

'महाराज, मैंने सुना था कि सज्जन पुरुष अपना हृदय सात चरणों में खोलते हैं; परन्तु आपने तो एक ही चरण में खोल दिया! आपके

हृदय में जो चिन्ता थी उसे आपने कह दिया।'

दामोदर के वाक्चातुर्य से कर्णदेव को जहाँ आनन्द हुआ वहीं कुछ क्षोभ भी हुआ। क्षोभ इसलिए कि जहाँ महामंत्रीश्वर के पद पर इतना चतुर पुरुष बैठा हो वहाँ स्वयं होकर मैत्री सम्बन्ध जोड़ने और मालवराज को समान रूप से शत्रु समझने का सन्धि-वाक्य कहने पर भी उस विग्रह के अन्त में यश और लक्ष्मी तो उसी (पाटन) के हिस्से आयेगी। वह अभी सोच ही रहा था कि बगल में बैठी हुई आवल्ल देवी ने कहा—'महाराज! जब दो शत्रु हों तो पहले छोटे शत्रु को मित्र बनाकर बड़े को मारना और फिर दूसरे की खबर लेना चाहिये। माना कि यह चतुर है, परन्तु युद्ध का निर्णय तो शस्त्रों से ही होता है।'

कर्णदेव ने कहा—'परन्तु, देवी, जो मैंने सुना वह यदि सच है तो इसने बिना शस्त्रों के ही युद्ध किये और उनमें विजय भी प्राप्त की है। इसके बारे में तुम्हारी क्या राय है?'

'परन्तु उनमें कोई हैहय नहीं होगा।' आवल्ल देवी ने कहा—'हैहय वंश की एक कुमारी* दक्षिण गई तो क्या वहाँ उसने मुंजराज को पराजित नहीं किया? बाद की बात बाद में देखी जायेगी, महाराज!'

रानी के शब्दों ने कर्णदेव के मैत्री-संकल्प को दृढ़ कर दिया।

उसने दामोदर से कहा—'हमने जो हृदय खोला है सो तुम्हारा हृदय जानने के ही लिए! बोलो, तुम कितनी सेना साथ लाये हो?'

'महाराज! मैं तो केवल दस हजार घुड़सवारों के साथ आया हूँ। उनका पड़ाव अभी पीछे ही है। आगे तो मैं ही अकेला आया हूँ!'

'तुम्हारे अकेले आने मे क्या कोई नवीनता नहीं है?'

'महाराज! जहाँ के व्याघ्र मासप्रिय होते हुए भी हिरनों को खिलाते

---

*बोधादेवी—उसका पुत्र तैलप देव

हों, उस देश में* आते हुए मुझे किसका डर और किससे अविश्वास होता ? मैं तो आपके यश की रेखा द्वारा ही सुरक्षित था ?'

आवल्ल देवी ने धीमे स्वर से कर्ण से कहा—'देव ! इसकी जिह्वा भी इसका एक शस्त्र ही है !'

'हाँ, देवी, बात तो ऐसी ही है।' कर्ण ने भी धीरे से प्रत्युत्तर दिया।

'महाराज भीमदेव यहाँ आ रहे हों और हम उनका सत्कार न करें तो हमारे डाहलदेश× की कीर्ति कलंकित होगी। क्या महाराज भीमदेव का तुम हमारी ओर से इतना सत्कार नहीं करोगे ?'

'आज्ञा कीजिये, महाराज, क्या करना होगा ?' दामोदर ने प्रणाम करके कहा।

'एक तो महाराज के लिए हमारे शुभ्र चिह्नोंवाले गजराज को स्वीकार करो। कुल्लपद्म-जैसे सुन्दर अश्वों को भी लेते जाओ। मालवराज के यहाँ से प्राप्त की हुई एक स्वर्ण-मंडपिका भी महाराज को हमारी ओर से भेंट करो। महाराज को हमारा मैत्री-सन्देश देना। यह तो तुमसे छिपा नहीं है कि तुम्हारे साथ हमारा मैत्री-सम्बन्ध कइयों को अच्छा नहीं लगता है; ऐसे ही लोग झूठी खबरें फैलाते हैं कि हम तुम्हारी निन्दा करते हैं, हमें यही कहना है कि ऐसी बातों पर तुम्हारे-जैसे विद्वान पुरुष को कदापि विश्वास नहीं करना चाहिये। यदि यह लोकाचार बाधक न होता कि हैहय कुल का कोई भी राजा विजय-प्रस्थान के अतिरिक्त रेवा नदी का उल्लंघन नहीं कर सकता, तो हम स्वयं ही महाराज से मिलकर उनके सत्संग से विद्या-विनोद का लाभ उठाते। अब तो किसी रणक्षेत्र मे ही उनकी धनुर्विद्या का परिचय हमें प्राप्त होगा !'

'महाराज का अभिप्राय किसी समान शत्रु के विरुद्ध संयुक्त रणक्षेत्र

* द्व्याश्रय, सर्ग ६

× चेदिदेश का दूसरा नाम।

से है, दामोदरजी !' आवल्ल देवी ने कहा।

'महाराज ! कलियुग मे भी कोई कर्णावतार हो सकता है इसे आपने सिद्ध कर दिखाया।'

थोड़ी देर बाद दामोदर बिदा हुआ; और कर्णदेव की दी हुई भेंट लेकर भीमदेव की छावनी मे लौट आया। इधर जिस समय वह महाराज भीमदेव के समक्ष भेंट मे प्राप्त वस्तुएँ रखकर त्रिपुरी नगरी की बाते कर रहा था, उधर आवल्ल देवी कर्णदेव से कह रही थी—'महाराज ! जिस समय हैहय मालवराज को युद्ध में पादाक्रान्त करेंगे उस समय तो चौलुक्य उनके साथ रहेंगे; परन्तु बाद में चौलुक्यों को पददलित करने के लिए भी महाराज ने उनके किसी शत्रु को अनुकूल किया है ?'

'कौन—उनका इतना बलवान शत्रु कौन है ?'

'हम्मुक तो हार ही गया।'

'तब ?'

'क्या नड्डूल या आबू मे से कोई काम नहीं आ सकता, महाराज ?' और यह कहते हुए आवल्ल देवी के रूप की माधुरी और भी बढ़ गई।

उस समय दामोदर वहाँ नहीं था। नहीं तो अत्यन्त रूपवती नारी को कृत्रिम मधुरता धारण करते देख जिस प्रकार वह पहले काँप उठा था उसी प्रकार अब भी काँप जाता।

भीमदेव से मिलकर मालवा को ले लेने—और बाद में भीमदेव को भी समाप्त कर देने के लिए आवल्ल देवी कर्णदेव को अधिकाधिक प्रोत्साहित करती हुई कह रही थी—'महाराज ! यह तो इसी तरह होता आया है। यदि दो शत्रु हों तो एक को मिलाना और दूसरे को मारना चाहिये। और पहले जिसे मिलाया हो बाद में उसको भी समाप्त कर देना चाहिये। राजनीति का यही शाश्वत सिद्धान्त है; हैहय इसकी साधना और विजयश्री का वरण करते आये हैं।'

४१. पृथ्वी का केन्द्र पाटन

पाटन-निवासियों को महाविजय का महोत्सव मनाये अभी थोड़े ही दिन बीते थे कि एक शाम को एक साँढ़नी-सवार मालवा के समाचार लेकर आ पहुँचा। वह सीधा महामंत्रीश्वर दामोदर के यहाँ गया। दामोदर ने उसे देखते ही पूछा—'क्यों देवराज? कहाँ से—अवन्ती से आ रहा है?'

'हाँ, महाराज!'

'क्या समाचार हैं?'

'आपके कथनानुसार मैं सिन्ध पर आपके आक्रमण के पश्चात् वहीं पहुँच गया था। इन दिनों मालवा में कुलचन्द्र का प्रभाव बहुत बढ़ गया है। अब कुलचन्द्र पाटन को जीतने के लिए लालायित हो उठा है। पाटन की लूट से उसकी क्षुधा बढ़ गई है। यह समझ लीजिये कि पाटन पर मालवराज का आक्रमण अब महीनों की नहीं, केवल दिनों की बात रह गई है।'

'कर्नाटक के क्या हाल हैं—लड़ेगा या नहीं?'

'लड़ेगा; परन्तु कुलचन्द्र पहले गुजरात को पराजित करना चाहता है। महाराज भोजराज ने उसे एक वारागना भेंट देकर और भी प्रोत्साहित किया है।'

'यह वारांगना कौन है?'

'और तो कौन होगी, प्रभु, पाटन की वही जन्मजात शत्रु प्रताप देवी है!'

'अच्छा ! ये तो पाटन के लिए अच्छे समाचार नहीं हैं। इन दिनों नड्डूलवाली वह जैन साध्वी कहाँ है ?'

'अभी तो वह भी उज्जैन ही है। मुझे पंडितराज उव्वट ने कहा है कि पाटन को सचेत कर दो; मालवा उसे पददलित करने की तैयारी कर रहा है !'

दामोदर विचारमग्न हो गया। सिन्ध के महान युद्ध के पश्चात् जिस बात को वह रोकना चाहता था वही सामने आ रही थी। कुलचन्द्र की लूट के पश्चात् प्रजा को सम्पन्न करने और व्यापार तथा कृषि का विस्तार करने के लिए वह एक तालाब और बनवाने का विचार कर रहा था। उसने दंडनायक विमल के यहाँ से शिल्पी गणधर को भी बुलवा लिया था। महारानी उदयमती की इच्छा पाटन में एक अत्यन्त सुन्दर बावली बनवाने की थी। तभी देवराज सिर पर मँडराते हुए युद्ध के समाचार लेकर आया। दामोदर ने चेदिपति को मालवा के युद्ध के लिए राजी तो कर लिया था; परन्तु अभी उसके लिए समय परिपक्व नहीं हुआ था—विचार-विमर्ष हो रहा था। इसलिए जब यह सुना कि मालवा तैयारी कर रहा है तो दामोदर को चिन्ता हुई।

'एक बात है, महाराज !' देवराज ने कहा—'मुंज की विधवा रानी—कुसुमवती—चाहती है कि कर्नाटक से पहले लड़ाई हो।'

'यह कुसुमवती उव्वट से यज्ञ-यागादि का काम तो अब भी करवाती रहती है न ?'

'हाँ, प्रभु !'

'तब तो बात बन गई। देख, पाटन मेरे लिए पृथ्वी का केन्द्र है। मैं चाहे जहाँ और चाहे जिस दशा मे रहूँ, मेरी निगाह हमेशा पाटन पर लगी रहेगी। परन्तु अब मुझे पाटन छोड़ना होगा। मैंने दंडनायक से कहा भी था कि मैं पाटन की महत्ता को कभी कम नहीं होने दूँगा। अब आज समय आ गया है कि किसी को मालवा में रहकर वहाँ की राजनीति बद-

लनी चाहिये। तभी पाटन की महत्ता अक्षुण्ण रह सकती है।'

'महाराज....!' बाहर से आवाज आई।

'कौन है, रे आयुष ?'

'प्रभु! ये तो शिल्पी गणधर हैं—!'

'अच्छा, आ गये? शिल्पीजी! आओ, आओ! कब आये ?' हमारे दंडनायक क्या कर रहे हैं ?'

'दंडनायक के कृतित्व को देखने के लिए तो सारा संसार उमड़ पड़ा है, प्रभु!'

'अच्छा, ऐसी बात है ?'

'हाँ, प्रभु!'

'मैंने तुम्हें दो-एक कामों के लिए बुलवाया है। एक तो महारानीजी को ऐसी बावली बनवाना है जैसी समस्त भारतवर्ष में न हो; दूसरे महाराज को सोमनाथ के मन्दिर में कुछ ऐसा निर्माण करवाना है जैसा समग्र आर्यावर्त में कहीं भी न हो और देवराज!....'

मंत्रीश्वर का वाक्य अधूरा ही रह गया। स्वयं महाराज का निजी दूत सिंहनाद चला आ रहा था। अतिशय महत्त्वपूर्ण समाचार होते तभी सिंहनाद इस तरह आता था।

दामोदर ने सिंहनाद का सन्देशा सुना।

'सिंहनाद, तेरा यही तो कहना है कि मालवराज ने भेजी है?' दामोदर ने अधीर होकर पूछा।

'हाँ, प्रभु! आई तो है मालवराज की विद्वत्सभा से ही। अभी महाराज के समक्ष उसी पर विचार हो रहा है। सभी आपको याद कर रहे हैं!'

'मालवराज की ये गाथाएँ कब बन्द होंगी?'

'महाराज! मालवराज जिन गाथाओं को भेज रहे हैं उन्हें युद्ध का श्रीगणेश ही समझियेगा!' देवराज के कहा।

'क्या हम जानते नहीं कि उनकी यही रीति है ! अच्छी बात है देख लिया जाये उसे भी। चलो, सिंहनाद ! आयुष ! मेरी पालकी—'

दामोदर मंत्रणा-सभा में जाने के लिए जल्दी से तैयार हो गया। उसने जाते-जाते गणधर से कहा—'गणधरजी ! तुम दो घड़ी रुकना —महारानीजी और महाराज दोनो तुमसे कुछ कहना चाहते हैं ! मैं अभी लौटकर आता हूँ।'

'जी, प्रभु !'

जब दामोदर महाराज के पास पहुँचा तो वहाँ भोगादित्य, चड शर्मा, बालुकराय, रा', मकवाणाजी, जाहिल्ल आदि सभी बैठे थे। जो सन्देश-वाहक मालवराज की गाथा लेकर आया था वह वहीं दरवाजे के बाहर खड़ा था। दामोदर ने प्रणाम करके बैठते ही कहा—'महाराज ! मुझे सिंहनाद ने बतला दिया है। मालुम पड़ता है कि मालवा का मन डोलायमान हो रहा है।'

'प्रभु ! उसे आपकी महान विजय के बारे में मालूम है। सिन्ध में साधन और सेना की दृष्टि से जो नष्ट हुआ है उसकी आप पुनः पूर्ति कर सकें उसके पहले ही मालवा वार करेगा। एक वार तो कुलचन्द्र कर ही गया है।' भोगादित्य ने कहा।

'वार तो ठीक है, कुलचन्द्र की लूट भी ठीक है, परन्तु प्रजा के पास खाने के लिए अनाज नहीं है—और ऐसे में यदि युद्ध सिर पर आ पड़ा तो हमें भी खारापाट आबाद करना होगा !' जाहिल्ल ने कहा—'इस समय राजकोष में द्रम्म का नाम भी नहीं है !'

'तो चले आना मेरे खारापाट में,' मकवाणाजी बोले—'हजारों बीघा में गेहूँ बो देंगे।'

'महाराज ! मालवराज की गाथा कहाँ है ?'

महाराज ने दामोदर के हाथ में एक भूर्ज-पत्रिका रख दी। दामोदर ने गाथा को पढ़ा—

हेलनिद्दलियगइन्दकुम्भपयडियपयावपसरस्स ।
सीहस्स मएण समं न विग्गहो नेव सन्धाणं ॥*

दामोदर गाथा पढ़कर विचारमग्न हो गया—'महाराज ! मालवराज का दृष्टिकोण बिलकुल स्पष्ट है ।'

'क्या लगता है, दामोदर ? युद्ध करेगा या केवल गीदड़-भभकियाँ हैं ?'

'युद्ध करेगा, महाराज ?'

'बड़ी खुशी से; अभी मकवाणाजी, रा' आदि यहीं हैं । विमल को भी सन्देशा भेज दो ।'

'दंडनायक को तो अब इस दुनिया से कोई लगाव रह नहीं गया; उनके पास तो, महाराज, अलौकिक सृष्टि निर्मित हो गई है । परन्तु एक बात ध्यान देने जैसी है । हम मालवा पर विजय पा सकते हैं—लेकिन तभी जब कि मालवा हमारे चाहने पर युद्ध करे ।'

'यह क्योंकर संभव होगा, दामोदर ?'

'यह भी हो जायेगा, महाराज ! अभी तो इस गाथा का प्रत्युत्तर भेज दिया जाये ।'

'उत्तर कौन देगा ?'

'एक साधु पुरुष है, महाराज ! सरस्वती के वह वरद पुत्र हैं ।'

'कौन है वह ?'

'जैन आचार्य हैं । उन्हीं से प्रत्युत्तर दिलवायेंगे । अभी तो इस गाथा को लानेवाले मालवराज के दूत के ठहरने आदि का प्रबन्ध किया जाये । प्रत्युत्तर बाद में देंगे ।'

मालवराज का दूत जब अपने ठहरने के स्थान पर चला गया तो वालुकराय ने कहा—'मेहता ! इस गाथा का प्रत्युत्तर तो तुम भेज दोगे

*जिसने मदोन्मत्त गजेन्द्र के गण्डस्थल को अनायास ही विदीर्ण कर दिया उस सिंह का हरिणों से विग्रह क्या और सन्धि कैसी ?

परन्तु जब उसकी सेना आ खड़ी होगी तब क्या भेजोगे ?'

महाराज ने दामोदर की ओर देखा—'यदि उसने हमारी परिस्थिति को भाँप लिया है तो आये बिना रहेगा नहीं, दामोदर !'

'हाँ, यह भी विचारणीय है !' चंड शर्मा ने कहा।

'यह तो भाई, तुम्हारे बडे राज्य का बड़ा झमेला ठहरा !' रा' ने कहा।

'तेरा क्या विचार है, दामोदर ? मालवा आयेगा ? और यदि आया तो उससे युद्ध करना ही होगा। उस समय तो फिर समय की पसन्दगी का कोई सवाल रह ही नहीं जाता।' महाराज ने कहा।

क्षण-भर तक दामोदर सबकी ओर देखता रहा। फिर अत्यन्त शान्त और दृढ़ स्वर से बोला—'महाराज, मैंने दंडनायक को वचन दिया है कि यदि मेरे कारण पाटन छोटा हो रहा हो तो मैं अपने अस्तित्व को ही मिटा डालूँगा। मेरी क्षुद्र कल्पना के अनुसार पाटन पृथ्वी का केन्द्र है, और केन्द्र ही बना रहेगा। बालुकराय, भोगादित्य, तुम सब यहाँ का काम संभालना; मालवा को इधर न आने देने का दायित्व मैं अपने ऊपर लेता हूँ। इसी लिए मैं महाराज के चरणों में राजमुद्रा लौटाना चाहता हूँ।'

'अरे, अरे, मेहता ! यह क्या कर रहे हो ?' रा' ने कहा।

'महाराज, मैंने किसी प्रकार के आवेश में आकर यह निश्चय नहीं किया। यह तो मेरा संकल्प था ही। मालवा की इधर की गतिविधि को देखकर ही इस संकल्प को तत्काल कार्यान्वित करने की आवश्यकता पड़ गई। पाटन की महानता को बनाये रखने के लिए यह आवश्यक हो गया है कि महाराज मुझे एक सामान्य संधिविग्रहक के रूप में मालवा भेजें, और मैं अपने पद का परित्याग करूँ। मुझे अधिकार की आकांक्षा कभी भी नहीं थी। मैंने पाटन के भले के लिए ही दंडनायक को अर्बुदगिरि भेजा था; आज स्वयं अपने-आपको भी पाटन के ही लिए बाहर भेज रहा हूँ।'

'और यहाँ जो तुमने किया है, मेहता, वह किसे सौंपे जा रहे हो ? तुमने और महाराज ने जो किया है, उसी के बारे में कह रही हूँ।' पीछे से एक आवाज सुनाई दी।

'कौन-सा काम, महारानीजी ?'

'चौलादेवी को पटरानी के पद पर प्रतिष्ठित करने का। तीन ही दिन बाद तो कुमारों का जन्म-दिन है; राज-मंगल देने के लिए प्रजा जुटेगी। उस समय के लिए तुमने यह विचार किया है या नहीं कि प्रजा के सामने महाराज अपने उत्तराधिकारी के रूप में किसे प्रस्तुत करेंगे ? चौला की सन्तान को या मेरे पुत्र को ? तुमने इस सम्बन्ध मे क्या निर्णय किया है ? जब तक इसका निर्णय नहीं हो जाता, तुम किसी तरह नहीं जा सकते।'

रानी उदयमती वहाँ आकर खड़ी हो गई थी। उसके तीक्ष्ण स्वर ने क्षण-भर के लिए समस्त मन्त्रि-मंडल को अवाक् कर दिया था। रा' ने सिर हिलाकर कहा—'बात तो ठीक ही है, क्यों मकवाणाजी ?'

मकवाणाजी ने महाराज की ओर देखा। कोई जवाब नहीं दिया।

'महारानीजी !' दामोदर ने कहा—'आपके लिए यह प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण होगा; हमारे मन तो यह कुछ भी नहीं है।'

'तुम्हारे मन भले ही न हो; मेरे लिए तो यही सबसे अधिक महत्व-पूर्ण प्रश्न है। इसका निर्णय होने के बाद ही तुम मालवा जा सकोगे—समझे मंत्रीश्वर ? महामंत्रीश्वर के पद का त्याग करने के पहले तुम्हें इस प्रश्न का निराकरण करना ही होगा।'

'निराकरण तो हो चुका है, देवी !' महाराज भीमदेव ने कहा।

'क्या हुआ है, महाराज ?' रानी ने अधीर होकर पूछा।

'श्रीकंठ बारोट ने कहा है, भस्माकदेव ने कहा है, सोम शर्मा ने जन्म-पत्री बनाई है—देवी का पुत्र पहले जन्मा है, इसलिए वही राज्य का उत्तराधिकारी होगा !'

'और मेरा पुत्र ?' उदयमती ने शीघ्रता से पूछा।

'वह राजपुत्र के रूप में रहेगा।'

'तब तो आपको कुछ भी मालूम नहीं है! महाराज, मेरा ही पुत्र राजा होगा।'

'पाटन के अतिरिक्त दूसरे किसी स्थान का—पाटन का नहीं!' महाराज भीमदेव ने दृढ़तापूर्वक कहा—'पाटन तो पृथ्वी का केन्द्र है; यहाँ तो जो न्याय्य होगा, वही होगा! दामोदर! अब हम उस गाथा के प्रत्युत्तर के विषय में थोड़ा-बहुत विचार करें—चलो, कुछ विद्वानों को ही बुलाया जाये।'

महाराज भीमदेव इतना कहकर तत्काल उठ खड़े हुए और उनके साथ ही समस्त मंत्रि-मंडल भी खड़ा हो गया।

विद्वानों की सभा मे महाराज के समक्ष गाथाएँ तो अनेक आईं, परन्तु एक भी ऐसी नहीं थी जिसे सुनकर दुश्मन का माथा ठनकता। महाराज ने सिर हिलाकर कहा—'इनमें तो एक भी उपयुक्त नहीं है!'

विद्वत्सभा बिना किसी निश्चय के ही भंग हुई। दामोदर ने महाराज से कहा—'महाराज! उन जैन आचार्य—गोविन्दाचार्य को बुलवाइये।'

'दामोदर! सिन्ध से लौटने के बाद हमने नगर-चर्चा नहीं की है, इसलिए हमीं को उस ओर जाना चाहिये।'

जब दामोदर और भीमदेव गोविन्दाचार्य के चैत्य में पहुँचे तो वहाँ नृत्य हो रहा था।

एक ओर अँधेरे में स्तम्भ के सहारे दोनों खड़े हो गये।

नर्तकी रूपवती थी, और उसका नृत्य भी उत्कृष्ट था। मोहिनी-नृत्य पूरा करके वह थोड़ी देर विश्रान्ति के लिए स्तम्भ के सहारे खड़ी हो गई। इतनी लावण्यवती स्त्री के स्पर्श से भी स्तम्भ को पुलकित न होते देख किसी ने कहा—'आचार्यदेव! क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि जिसके नेत्रों के कटाक्ष-मात्र से पुरुष सुध-बुध गँवा बैठते हैं, उसके आलिंगन तक से स्तम्भ को कुछ नहीं होता।'

'इसके सम्बन्ध में सूराचार्य तुम्हें अधिक विस्तारपूर्वक बतलायेंगे।' गोविन्दाचार्य ने कहा।

क्षण-भर के लिए मौन छा गया। थोड़ी देर बाद सूराचार्य बोले—'इसका कारण है—कोमल और आभरण-भरित नवयौवना मृगाक्षी के बाहु-स्पर्श से भी यह कम्पित नहीं होता इसलिए सचमुच ही यह पत्थर में से निर्मित हुआ है, यह सत्य है!'

दामोदर ने भीमदेव से कहा—'महाराज! सुना न आपने? हमारी गाथा का प्रत्युत्तर यहीं से मिलेगा!'

दूसरे दिन सवेरे महाराज ने गोविन्दाचार्य को बुलाकर वह गाथा दिखलाई।

गोविन्दाचार्य ने प्रत्युत्तर दिया और समस्त विद्वन्मंडली झूम उठी—

अन्धयसुआण कालो भीमो पुहवीइ निम्मिओ विहिणा।
जेण सयं पि न गणिअं का गणणा तुज्झ इक्कस्स॥*

उधर मालव-दूत गाथा लेकर विदा हुआ और इधर दामोदर ने घर जाकर कार्तिक स्वामी को बुलाकर कहा—'कार्तिक स्वामी! अन्ततोगत्वा हम दोनों जिस तरह सिद्धपुर मे मिले थे उसी तरह पुनः मालवा में महाकालेश्वर के मन्दिर मे मिलें ऐसा ही विधि-विधान मालूम पड़ रहा है। तुम तैयार रहना। हमें अवन्ती जाना है!'

कार्तिक स्वामी प्रणाम करके चला गया। दामोदर वहीं अकेला और अशान्त बैठा रहा। जब वह मध्यान्ह सन्ध्या करने के लिए खड़ा हुआ तब उसके मन में विचार-मन्थन हो रहा था—'महारानी गणधर की बावली के निर्माण में समय बितायेंगी इसलिए शायद आगे चलकर विसंवाद कम हो, परन्तु कुमारों का यह मंगल-दर्शन-दिवस कैसा बीतेगा?

*अन्धक-पुत्र के काल-रूपी भीम को विधाता ने सिरजा है। जिसने सौ शत्रुओं की भी परवाह न की उसे तुझ एक की क्या चिन्ता?

४२. दामोदर का पद-त्याग

तीन दिन बाद दोनों कुमारों के जन्म-दिवस का दरबार था। महाराज सिन्ध मे थे, इसलिए अब तक राज्य-सभा को मंगल-विधि के अनुसार कुमारों का दर्शन नहीं कराया जा सका था। आज पहली ही बार कुमार दरबार में लाये जा रहे थे।

आज मंगल-विधि होने के कारण पाटन के नर-नारी भी समूह-के-समूह राजचौक में कुमारों का दर्शन करने के लिए एकत्र हो गये थे। मुसाहिब, मंत्री, सामंत, माडलिक, मंडलेश्वर, नगरपति आदि सभी आकर दरबार मे यथा-स्थान बैठे हुए थे। दामोदर अत्यधिक चिन्तित था। उधर एक ओर तो क्षण-प्रतिक्षण मालवा के समाचार आ रहे थे। दो क्षण पहले ही जो अन्तिम सन्देशा आया उसमें कहा गया था कि—'मालवा की गजसेना तैयार हो रही है!' और गोविन्दाचार्य की गाथा भेजने के बाद तो दामोदर अवन्तीनाथ के राजदरबार मे पहुँचने के लिए प्रतिक्षण लालायित हो रहा था। उसे विश्वास था कि वह अकेला और निःशस्त्र ही मालवी-सेना के आगमन को रोक सकेगा।

और इधर रानी उदयमती अभी से अपने पुत्र को राज्य के उत्तराधिकारी के रूप में स्वीकार किये जाने का आग्रह कर रही थी। दामोदर ने उसे समझाया था कि समय आने पर जो उचित होगा, किया जायेगा; परन्तु यह सुनकर तो रानी का आग्रह और भी बढ़ गया था।

और फिर इस प्रश्न के कारण पाटन की राजनीति में एक प्रकार का विसंवाद उत्पन्न होकर, पुनः निर्बलता का बीजारोपण होने लगा था।

इसी लिए दामोदर को जितनी उत्सुकता मालवा जाने की थी उतनी ही उत्सुकता इस बात की भी थी कि रानी उदयमती, रा' या दूसरे मंत्रीश्वर इस प्रश्न का असमय ऊहापोह कर कहीं गृह-नीति में तनाव न पैदा कर दें। उसने रानी से साफ-साफ कह दिया था कि अभी तो महाराज के आदेशानुसार कुमारों को जन्म-क्रम के अनुसार ही राज्य-सभा के समक्ष मंगल-दर्शनार्थ लाया जायेगा। इस पर रानी ने भी साफ-साफ कह दिया था कि अधिकार का क्रम पहले आयेगा और जन्म का क्रम बाद में। ज्यों-ज्यों मुहूर्त का समय समीप आता गया, लोगों की दर्शन करने की उत्सुकता भी बढ़ती गई और परिणाम के लिए दामोदर की चिन्ता भी। मंत्रीश्वर, सामन्त, माडलिक सभी अन्तःपुर से कुमारों के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

सोम शर्मा अन्तःपुर और मन्त्रणा-सभा के द्वार के पास खड़ा था।

दामोदर प्रतिक्षण महारानी और चौलादेवी के आने की प्रतीक्षा कर रहा था।

महाराज भीमदेव आये—प्रजा-जनों ने हर्ष-ध्वनि से उनका स्वागत किया, फिर तत्काल ही शान्ति छा गई। सभी पाटन के भावी राजकुमारों का स्वागत करने के लिए आतुर हो रहे थे।

तभी मंगल-घोष के रूप में शंख-ध्वनि हुई। बाजे बजने लगे। श्रीकंठ बारोट की वाणी सुनाई पड़ी। जय-जयकार से आकाश गूँज उठा। जन-समुदाय में उच्च स्वर से कोलाहल हो रहा। सभी आगे बढ़ने के लिए धक्का-मुक्की करने लगे। उधर अन्तःपुर के द्वार में से चौला देवी आती हुई दिखाई दी।

दामोदर ने एक दृष्टि सभा की ओर डाली। रा' और कई सामन्तों तथा क्षत्रियों के चेहरे कुछ तमतमा उठे थे। तब उसने प्रजा-जनों की ओर देखा। चौला देवी की जय-जयकार करने की उत्सुक आकांक्षा उन शत-सहस्र चेहरों पर उभर रही थी। दामोदर ने अपना एक हाथ उठा-

कर उनको रोका। दृढ़तापूर्वक चलती हुई चौला आगे बढ़ी; महाराज भीमदेव के पास आकर वह खड़ी हो गई। उसने कुमार को सभा के सामने रखा—सभा ने प्रणाम किया और लोगों ने हर्ष-विभोर होकर 'चौला देवी की जय' का गगनभेदी उद्‌घोष किया।

थोड़ी देर बाद शान्ति हुई और चौला की आवाज सुनाई पड़ी—

'राजमंत्रियो! महाराज के और आपके चरणों में मैं आपके भावी राजकुमार को रख रही हूँ। महारानी उदयमती के इस कुमार का नामकरण सोम शर्मा ने कुन्ती-पुत्र कर्ण के नाम पर कर्णदेव किया है!'

दामोदर का सिर इस तरह नीचे झुक गया मानो विचारों का भारी बोझ आ पड़ा हो।

लोगों के आश्चर्य की सीमा नहीं रही। 'महारानी उदयमती का कुमार?' 'दूसरा कुमार कहाँ है?' 'यह किसका कुमार है?' 'कर्णदेव ही नाम बतलाया है न?' इस तरह के अटपटे प्रश्न अन्दर-ही-अन्दर होने लगे। महाराज भीमदेव ने दामोदर की ओर देखा। दामोदर उठकर महाराज के पास गया।

'दामोदर! जन्मजात अधिकार को छीनने के किसी के हक को मैं स्वीकार नहीं करता। इस तरह कैसे हुआ? यह किसने—तूने किया है?'

'महाराज! मुझे तो कुछ भी मालूम नहीं। प्रतीत होता है कि स्वयं देवी ने ही यह किया है।'

महाराज ने एक नजर चौला की ओर डाली—'चौला, जन्म के कारण राज्य पर जिसका अधिकार है, उसके प्रति इस तरह का अन्याय करनेवाले हम कौन होते हैं?'

'महाराज!' चौला ने अत्यन्त शान्ति से कहा—'मेरा कुमार भी यह रहा—उसे महारानीजी स्वयं लेकर आ रही हैं!'

महारानी उदयमती चौला के कुमार को लेकर आ रही थी।

चौला ने महाराज से आगे कहा—'और महाराज! आज की शुभ

घड़ी में जब कि एक महानुभाव ने पाटन के हित के लिए स्वयं होकर वैभव और सुख का परित्यागकर महामंत्री-पद-जैसे पद से संन्यास लेना अंगीकार किया है—मेरा आशय आपके इन मंत्रीश्वर दामोदर से है—तब मैं यदि आपके चरणों में एक ऐसे ही भावी राज-पद-त्यागी को धरूँ तो उसमें अनुचित ही क्या है ? मैं इसके अधिकार का अपहरण नहीं कर रही, महाराज ! आवश्यक होने पर पाटन के लिए अपने व्यक्तित्व को बिलकुल गौण करके निज को रंच-मात्र भी महत्व न देनेवाले "सोमनाथ के रक्षक के लड़के" जैसे तरुण निकल ही आते हैं। यह कुमार भी उसी मंगलमय विरासत का उत्तराधिकारी हो, मेरी तो इतनी ही कामना और अभिलाषा है !' फिर चौला ने उदयमती की ओर मुड़कर दूसरे कुमार को दिखलाते हुए कहा—'मंत्रीश्वरो ! यह रहा पाटन का द्वितीय राजकुमार; इसका नामकरण हुआ है—क्षेमराज !'

सभी ने हर्षोत्फुल्ल होकर कुमार का चेहरा देखा और उसे प्रणाम किया।

'चौला !' जब शान्ति हुई तो महाराज ने कहा—'यह राज्य के उत्तराधिकार का प्रश्न है, इसमे इस प्रकार परिवर्तन करने का अधिकार किसी को नहीं है !'

'महाराज राज्य के उत्तराधिकार में हस्तक्षेप करने अथवा अनभिज्ञ कुमार के प्रति अन्याय करने की बात भूले से भी मेरे मन में नहीं है। नारी होने के नाते मेरा जो अधिकार है उसी का यत्किंचित् विचार मैंने किया है। अपनी क्षुद्र बुद्धि के अनुसार इसी को मैं अपने नारीत्व का महान अधिकार समझती हूँ और तदनुरूप ही मैंने आचरण किया है; क्योंकि वही नारी नारी है जो अपनी सन्तान का परिचय श्रद्धापूर्वक दे सके—आत्मनिष्ठापूर्वक कह सके। जिस दिन नारी अपने इस अधिकार को खो देगी, उस दिन उसके पास फिर कोई अधिकार शेष नहीं रह जायेगा; और न केवल इतना ही, अपितु उस दिन तो फिर इस विश्व की सारी व्यवस्था ही विशृंख-

लित हो जायेगी । मैं तो अपने नारीत्व की श्रद्धा और विश्वास के आधार पर ही यह बात कह रही हूँ ।'

दामोदर चौला देवी का कथन सुन रहा था । अवसर की विकटता और महत्व के अनुरूप ही वे शब्द थे । इसलिए उसने अपनी योजना को तत्काल ही कार्यान्वित करने का निश्चय किया । चौला देवी अपनी बात कहकर चुप हो गई, किसी की समझ में आया और किसी की समझ में नहीं भी आया; परन्तु यह सब सुनकर दामोदर धीरे-धीरे महाराज के और अधिक समीप आ गया । उसने महाराज को प्रणाम किया, चौलादेवी को प्रणाम किया, दोनों कुमारों को सिर झुकाकर वन्दना की, और तब सभाजनों की ओर देखकर बोला—'मंत्रीजनो ! मैं कल मालवा जाने के लिए आपसे विदा माँगता हूँ । मेरे जाने की बात को लेकर कोई झूठी अफवाह न फैलाये, इसलिए आपको यह बताये दे रहा हूँ कि एक संधि-विग्रहक की हैसियत से मुझे मालवा भेजने की मेरी प्रार्थना को महाराज ने स्वीकार कर लिया है ।'

'मैंने स्वीकार नहीं किया है, दामोदर !' भीमदेव महाराज ने कहा —'अभी तो चौला से पूछना है ।'

'महाराज, पाटन को जब जिस वस्तु की आवश्यकता हो उस समय वह वस्तु यदि मिलती रही तो पाटन पृथ्वी का शृंगार बना रहेगा ।' चौला ने कहा—'इस समय पाटन को जिसकी जितनी आवश्यकता हो उसका उतना ही हिस्सा निस्संकोच माँग लेना, मेहता !'

'इस समय पाटन को जिसकी आवश्यकता है उसे मैं आपके चरणों में रख रहा हूँ, महाराज ! और वह है मंत्रीश्वर के पद की मेरी यह राजमुद्रा ।'

भीमदेव के पाँवों में राजमुद्रा रखकर दामोदर एक ओर खड़ा हो गया ।

महाराज भीमदेव दामोदर से कुछ कहते उसके पहले ही चौला बोली

—'महान नगरियाँ दो तरह से शोभायमान होती हैं, महाराज! शिल्प की महान कृतियों से और महत्वपूर्ण प्रसंगों से। यहाँ एक ओर गणधर महारानीजी के लिए एक महान शिल्प कृति का सृजन कर रहा है, और दूसरी ओर मेहता अपने जीवन के इस एक और अद्वितीय महान प्रसंग का सृजन कर रहे हैं। महाराज! उन्होंने मुझसे भी कहा है, आपको भी विज्ञापित कर चुके हैं कि मालवा और पाटन के लिए उन्हें वहाँ जाना ही होगा।'

'महाराज! मेरे योग्य महत्वपूर्ण कार्य इस समय मालवा में मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। अभी मालवा इस ओर न आये—नहीं ही आये, इतना मैं कर सकूँगा। महाराज की आज्ञा हो तो मैं कल ही रवाना हो जाना चाहता हूँ।' दामोदर ने हाथ जोड़कर निवेदन किया।

महाराज भीमदेव चुप रहे, कुछ न बोले। उनके इस मौन में यदि सम्मति थी, तो 'दामोदर जा रहा है', इस बात को लेकर गहरी उद्विग्नता भी थी।

* * *

दूसरे दिन सवेरे पाटन के चाँपानेरी दरवाजे से निकलकर दो घुड़सवार मालवा की ओर चले जा रहे थे।

—: * :—